गांधी शताब्दी स्मारक ग्रन्थ

युग पुरुष

सम्पादक
ताराचन्द वर्मा

चिन्मय प्रकाशन

सम्पादकीय

प्रेरणा के सूत्र

चिन्मय प्रकाशन जयपुर ने डा०जाकिर हुसैन, जवाहरलाल नेहरू, लालवहादुर शास्त्री व इन्दिरागांधी पर राष्ट्रीय महत्त्व के ग्रन्थ प्रकाशित किए हैं। इन ग्रन्थों के माध्यम से राष्ट्रीय नेताओं के जीवन एवं विचारों को सुव्यवस्थित ढंग से पाठकों तक पहुँचाना अभिप्रेत रहा है। प्रसन्नता का विषय है कि हिन्दी के प्रबुद्ध पाठकों ने इन ग्रन्थों को अपनाकर हमें प्रोत्साहित किया है।

गांधी शताब्दी वर्ष में हमारे पाठकों ने अनेक वार इस विषय में जानकारी चाही कि इन ग्रन्थों की परम्परा में हम गांधीजी पर ग्रन्थ कव तक प्रकाशित कर रहे हैं। पाठकों के पत्र वार वार मिलते रहे और इन्हीं से प्रेरणा प्राप्त कर इस ग्रन्थ के प्रकाशन की योजना वनाई।

इस सम्वन्ध में लव्वप्रतिष्ठ विद्वानों व साहित्यकारों के अतिरिक्त देश के चोटी के गांधीवादी विचारकों और नेताओं तथा गांधीजी के सम्पर्क में रहकर कार्य करने वाले अनेक व्यक्तियों से पत्र-व्यवहार आरम्भ किया और ग्रन्थ के लिए सामग्री एकत्र होने लगी।

हर्ष का विषय है कि कुछ ही समय में पर्याप्त सामग्री–जो पहले कभी प्रकाशित नहीं हुई थी और विशेष रूप से इसी ग्रन्थ के लिए लिखी गई थी—एकत्र होगई। देश के गण्य-मान्य नेताओं व शिक्षा-शास्त्रियों का मैं अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने अपनी व्यस्तता के वावजूद इस ग्रन्थ के लिए न केवल स्वयं अपने द्वारा लिखित सामग्री भेजी वरन् अन्य सहयोगियों को भी लिखने के लिए प्रोत्साहित किया। इन महानुभावों की सतत् प्रेरणा से ही यह ग्रंथ प्रकाशित होकर जनता के सम्मुख आ सका है। उनके आशीर्वाद ने मेरा सदैव मार्ग दर्शन किया है।

विपय विभाजन :

गाधीजी ने लम्बी श्रायु प्राप्त की श्रौर ७९ वर्षों तक वे जीवन के प्रयोग करते रहे। देश के बाहर दक्षिण अफ्रीका मे रहकर उन्होने स्वतन्त्रता आन्दोलन के लिए नए अस्त्र-सत्याग्रह-की खोज की, इसका सफल प्रयोग किया श्रौर अपने उद्देश्य की प्राप्ति की। भारत लौटने पर उन्होने बड़े पैमाने पर इसी अस्त्र का प्रयोग किया श्रौर सभी जानते हैं कि जिस शान्तिपूर्वक ढग से हमने स्वतन्त्रता प्राप्त की है ससार के किसी अन्य देश ने नही की। बलिदान तो हमने भी किया, कष्ट झेले, मुसीबतें उठाई पर हमने समाज की व्यवस्था को विशृंखलित होने नही दिया, देश मे श्र धकार श्रौर तबाही के बादल नही छाए, देश पिछड़ेपन के गर्त मे न डूबा रहा श्रौर इस सबका श्रेय है देश के अग्रणी नेता महात्मा गाधी को जिन्हे हमने राष्ट्रपिता श्रौर बापू कह कर सम्मानित किया।

जीवन का शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र हो जो गाधीजी की देन से लाभान्वित न हुआ हो, जिसमे उन्होने अपने अनुभव के श्राधार पर कुछ नवीन सृजना न की हो। अत. सम्पादन कार्य बडा ही दुष्कर हो गया कि इतनी विशाल सामग्री को किस प्रकार प्रस्तुत किया जाय। विचार-विमर्श एव चिन्तन-मनन के पश्चात मैंने सामग्री का वर्गीकरण निम्न प्रकार किया :

(१) प्रेरणा श्रौर कर्त्तव्य
(२) सिद्धान्त-दर्शन
(३) शिक्षा-दर्शन
(४) समाज-दर्शन
(५) राजनैतिक-आर्थिक-दर्शन तथा
(६) सस्मरण

इन वर्गों मे गांधीजी से सम्बन्धित लगभग सभी विषयो पर विचार सकलित किए गए हैं। 'सस्मरण' खण्ड में गाधीजी सम्बन्धी अनेक गाधीवादी विचारकों के संस्मरण प्रस्तुत किए गए हैं। इससे हमें महापुरुष के जीवन की निकटतम झाकी देखने को मिलती है, उनके विशाल व्यक्तित्व को समझने का अवसर मिलता है श्रौर हम राज-नीतिज्ञ गाधी के साथ-साथ 'मानव गाधी' का भी दर्शन कर सकते

हैं। इस प्रकार गांधीजी के व्यक्तित्व एवं विचारों का सम्यक दिग्दर्शन इन विभिन्न वर्गों में हो जाता है।

आभार प्रदर्शन :

गांधी शताब्दी के अवसर पर प्रकाशित इस विशाल ग्रंथ के लिए जिन विद्वान लेखकों, नेताओं एवं विचारकों ने सामग्री भेजकर मुझे अनुग्रहीत किया उनके प्रति हार्दिक आभार प्रदर्शन अपना कर्तव्य समझता हूँ। उनके सहयोग के विना यह कार्य सम्पन्न ही नहीं हो सकता था। उन्होंने अपना अमूल्य समय देकर मेरे कार्य को सरल वनाने में जो सहयोग दिया उसके लिए आभार प्रकट करना स्वाभाविक ही है।

इस ग्रंथ के लिए वहुत सी सामग्री अंग्रेजी भाषा में प्राप्त हुई थी उसका शुद्ध हिन्दी रूपान्तर करने के लिए मैं श्री रविशेखर वर्मा का आभारी हूँ जिनके सहयोग से इस ग्रंथ का प्रकाशन इतने सुन्दर रूप में हो सका है।

अन्त में प्रकाशक महोदय के प्रति भी आभार प्रदर्शित करता हूँ जिन्होंने इस ग्रंथ को इतनी तत्परता और लगन से प्रकाशित कर राष्ट्र की अमूल्य सेवा की है और महान ग्रंथों की परम्परा में एक और कड़ी जोड़कर हिन्दी साहित्य को गौरवान्वित किया है।

आशा है पाठक पूर्व प्रकाशित ग्रंथों की भांति इस ग्रंथ को भी अपना कर मुझे प्रोत्साहित करेंगे और ग्रंथ के प्रचार-प्रसार में सहयोग देगें।

२ अक्टूबर, १९६९ ताराचन्द वर्मा

विषय सूची

प्रेरणा और कर्त्तव्य

सिद्धान्त दर्शन

शिक्षा-दर्शन

समाज–दर्शन

राजनीतिक-आर्थिक-दर्शन

सस्मरण

●

V. V. Giri

President of India

Gandhiji's whole life was one of dedication to the service of humanity. By his personal character and example he deeply influenced the thought of his generation and made the world realize that spiritual integrity triumphs over the forces of physical oppression. He stood for love in the midst of hate, forgiveness in the midst of vengeance, good in the midst of evil and steadfastness in the midst of peril. In this centenary year the best way to perpetuate the memory of the Father of the Nation and to pay our homage to Bapu is to imbibe some of his great qualities of head and heart and to practise the values of truth and non-violence on which he based his entire philosophy.

हुकम सिंह
राज्यपाल,
राजस्थान
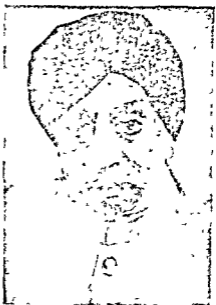
मुझे यह जान कर प्रसन्नता हुई कि चिन्मय प्रकाशन द्वारा राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के जीवन एवं कार्यों पर "गांधी शताब्दी स्मारक ग्रंथ" प्रकाशित किया जा रहा है।

महात्माजी ने करोड़ो निर्बल और हिम्मत हारे देश-वासियों के हृदय में अपने जीवन काल मे ही अपने कार्यों तथा मार्ग-दर्शन से न केवल नई जान डाल दी बल्कि देश को दासता से छुडा कर स्वतन्त्रता दिलवाई। उनका कार्य-क्षेत्र केवल राजनीति ही नही था बल्कि मनुष्य के जीवन के हर पहलू पर उनका प्रभाव पडा। उन्होने हमेशा नैतिकता पर बल दिया। वे चाहते थे कि उच्च लक्ष्य तक पहुँचने के लिए उत्कृष्ट साधन ही अपनाए जाने चाहिये। आज अत्यधिक आवश्यकता है कि देश का प्रत्येक नागरिक गांधीजी द्वारा बताये हुए मार्ग पर चले और उनके आदर्शो को अपने जीवन मे उतारे।

मेरी शुभकामनाएं आपके साथ हैं।

भक्त दर्शन

शिक्षा राज्य मंत्री,

भारत सरकार
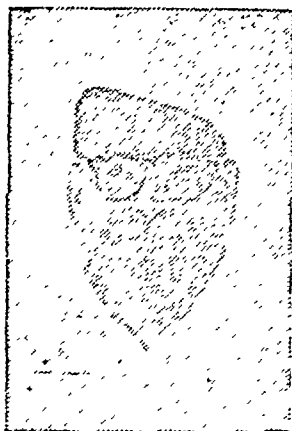
गांधीजी ने प्रकाश की जो ज्योति जलाई थी, वह अभी भी हमारे पथ को आलोकित कर रही है। यद्यपि हम उनके बताये हुए मार्ग से बहुत भटक चुके हैं, और हमसे बहुत-सी भूलें हुई हैं, फिर भी हमें इस बात का गौरव है कि हम उनके ही शिष्य और उत्तराधिकारी हैं तथा अपनी सीमाओं के बावजूद उनके बताये हुये मार्ग पर चलने का यथासम्भव प्रयत्न कर रहे हैं।

मुझे विश्वास है कि आपके द्वारा जिस स्मारक ग्रंथ का प्रकाशन किया जा रहा है, वह अपने ढंग का अद्वितीय होगा और उसके प्रकाशन से राष्ट्र-पिता के विचारों को प्रसारित करने में सहायता मिलेगी। मैं आपके इस आयोजन की पूर्ण सफलता के लिये अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूं।

Shiv Charan Mathur

Minister for Education

Rajasthan

I was glad to know that you are bringing out a special publication 'Gandhi Shatabadi Smarak Granth' on 2nd October, 1969

I am confident, the publication will reveal the life and disciplines of Gandhiji and will unfold various incidents depicting his character and dedication for the upliftment of down-trodden community. In fact he had kindled the light of non-violence and austerity in life. He was one who stood by his words and did what he preached. In him, we found a true soldier full of sympathy and sacrifice. Throughout his life he marched ahead in the struggle of finding solace for his brethren and, therefore, was adored by one and all.

I wish the publication all success.
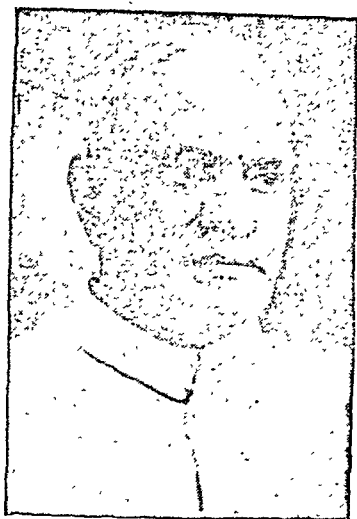
वी० वी० गिरि

विश्व प्रकाश स्तम्भ गांधीजी

यह वस्तुत: हमारा सौभाग्य है कि विश्व के महान् शांतिदूत, सत्य व अहिंसा के संदेशवाहक गांधीजी जैसे महान् नेता का जन्म हमारे देश में हुआ। ऐसा बहुतही कम होताहै कि कोई महापुरुष अपने जीवन-काल में ही उन आदर्शों को सफल होते देख ले, जिनके लिए उसका जीवन समर्पित होता है। गाँधी जी ने जिस किसी भी वस्तु को छुआ, उसकी शोभा में वृद्धि की। उनके लिए समस्त सामाजिक जीवन एक इकाई के समान था जिसके प्राय: प्रत्येक अंग को उनका जादुई स्पर्श प्राप्त हुआ। निस्संदेह महात्मा गाँधी के जीवन और कार्यों का विश्व के इतिहास में असाधारण स्थान रहेगा। उन्होंने भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त करायी और इस प्रक्रिया के दौरान हमें

बहुत सी-अमूल्य शिक्षाऐं दी। उन्होने अपने अनुयायियोको भय और घृणा से मुक्त रहने का प्रशिक्षण दिया तथा जनता मे एकता, समानता और भाईचारे की भावना भरी।

अपने बाल्यकाल से ही गाँधीजी नैतिकता के कुछ सिद्धान्तो का दृढता से पालन करते थे। उन्होने अपनी पूज्य माता को वचन दिया था कि इंग्लैण्ड मे प्रवास के समय मास, मदिरा और स्त्री का स्पर्श नही करूँगा और उन्होंने उसका पूर्ण रूप से पालन किया। इग्लैड मे अध्ययन करते समय वह सर चार्ल्स ब्रैडला तथा दादा भाई नौरोजी के सम्पर्क मे आये। उस समय उन्होंने इंग्लैड के श्रमिक दल, फेबियन सोसायटी तथा मार्क्स की शिक्षाओ मे भी गहरी दिलचस्पी ली। साथ ही लियो टालस्टाय तथा डेविड थोरो की पद्धतियो के प्रशसक बने।

सत्याग्रह शस्त्र

गाँधीजी ने दक्षिण अफ्रीका मे जो काम किया उसी ने उनको भारत के भावी राजनीतिक नेतृत्व के लिए प्रशिक्षित किया। वहाँ पर उन्होने एक विदेशी सरकार के विरुद्ध सत्याग्रह-शस्त्र द्वारा लडाई का नेतृत्व किया और इस प्रकार अपने देश को राजनीतिक दासता से मुक्त कराने के अपने भावी काम का शिलान्यास किया।

इस प्रकार गांधीजी एक व्यक्ति मात्र नही, बल्कि एक सस्था थे। उन्होने न केवल हमारे देश की सम्पूर्ण जनता के भाग्य का निर्माण किया, बल्कि उनके आदर्श आज भी विश्व भर के समस्त शान्तिप्रेमियो के हृदय को प्रभावित कर रहे हैं।

गांधीजी एक साथ ही राजनीतिज्ञ, समाज-सुधारक, लेखक, अध्यापक, मानवतावादी और विश्ववादी थे। उनमें अपने विश्वासो पर दृढ रहने का साहस था तथा वह अपनी आत्मा के आदेशो का पालन करते थे। मानवता के लिए लडने वाला यह वीर योद्धा, साहस और धर्म के साथ, प्रायः सारे ससार के विरुद्ध अकेला डटा रहता था। महात्माजी के नेतृत्व से केवल हमारा राष्ट्र ही प्रेरणा नही ग्रहण करता था, बल्कि वह सम्पूर्ण विश्व के लिए प्रकाश-स्तम्भ का काम करते थे। उन्ही के एक चौथाई शताब्दी के नेतृत्व में हमें स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। यह सफलता उन्होंने अपने अचूक, परन्तु अभूतपूर्व अहिंसा और सत्य के शस्त्रो द्वारा प्राप्त की। इसका महत्व

तब और भी बढ़ जाता है, जब हम याद करते हैं कि इस पद्धति ने एक ऐसे समय में शानदार सफलता प्राप्त की जबकि संसार के अन्य देश भयानकतम शस्त्रों-अणुबमों पर ही भरोसा कर रहे थे।

महात्माजी मनुष्यों के एक सच्चे नेता थे। वह उनका नेतृत्व करते थे, स्वयं उनके कहने में नहीं चलते थे। दर्शकों को खुश करने की नीयत से उन्होंने कभी कोई काम नहीं किया, न लोगों की वाह-वाही लूटने की परवाह की। परन्तु इससे हम इस गलतफहमी में न रहें कि वह तात्कालिक परिस्थितियों के प्रति जागरूक नहीं रहते थे। अपने आपको बदलती हुइ परिस्थितियों के अनुकूल बनाने में वह कभी पीछे नहीं रहते थे। परन्तु सभी ने यह महसूस किया कि जहाँ तक बुनियादी आदर्शों और सिद्धान्तों का प्रश्न था, उनके लिए वह बड़े से बड़ा बलिदान करने को प्रस्तुत रहते थे तथा जिसे भी वह बुराई समझते थे उसके साथ कभी समझौता नही करते थे।

एशिया की स्वतन्त्रता

आज हमारे लिए यह सबसे उपयुक्त समय है कि हम गांधी दर्शन का जिसे हम संजोए और अपनाये हुए हैं विश्लेषण करें। जैसा कि हम सब जानते हैं, गांधीजी चाहते थे कि केवल भारतीय जनता को नहीं, बल्कि समस्त मानवता को स्वाधीनता प्राप्त हो। एक पैगम्बर की तरह उन्होंने 'भारत छोड़ो-एशिया छोड़ो' इत्यादि नारे दिये जिन्होंने करोड़ों लोगों को अनुप्राणित किया, और आज एशिया के अधिकांश देशों को स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई है तथा वे जो पुनर्निर्माण कर रहे हैं उसका श्रेय उस नेतृत्व को ही है जो भारत ने प्रदान किया। बापू चाहते थे कि प्रत्येक व्यक्ति और राष्ट्र अपने मौलिक अधिकारों के लिए संग्राम करे।

शायद बापू के सदेश को समझने की सबसे अधिक आवश्यकता आज है। हमारी सीमा पर जो आक्रमण का खतरा बना हुआ है उसके कारण हमें हर समय सजग रहना है। इस सम्बन्ध में हमें गांधीजी के ये शब्द याद रखने चाहिए : 'हमारे राष्ट्रवाद से किसी राष्ट्र को खतरा नहीं हो सकता, क्योंकि जिस प्रकार हम अपना शोषण नहीं करने देंगे उसी प्रकार स्वयं भी किसी का शोषण नहीं करेंगे। अच्छा होगा यदि सब लोग बापू के इस संदेश के अर्थ को हृदयंगम कर लें क्योंकि इसी को हमने अपनी नीतियों का पथ-प्रदर्शक बनाया है।

इसके साथ ही हमें यह भी याद रखना चाहिए कि गाधीजी कर्म मे विश्वास करते थे और उनका मत था कि जीवन मे निरन्तर कर्म होना चाहिए । एक अच्छे लक्ष्य को हम खराब साधनो द्वारा नही प्राप्त कर सकते, साध्य और साधन को एक दूसरे से पूर्णतया अलग नही किया जा सकता । वह इस कथन से सहमत नही थे कि साध्य ठीक होना चाहिए, साधन चाहे जो हो । जैसा कि उन्होने स्वयं कहा है, क्योकि ईश्वर मेरे और आपके रोम-रोम मे है, अत इसमे मै पृथ्वी के समस्त प्राणियो की समानता का सिद्धान्त निकालता हूँ । इसलिए वह मनुष्यो के विरुद्ध किए जाने वाले हर भेदभाव के विरुद्ध थे, चाहे उसका आधार नस्ल-सम्बन्धी हो या आर्थिक, सामाजिक या धार्मिक ।

आचार्य कृपलानी जिन्हे बापू के निकट सम्पर्क मे रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, के शब्दो मे गाधीजी का मत था कि 'वर्तमान में एकमात्र मार्ग यह है कि राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक जीवन में तथा व्यक्ति और समाज में समन्वय स्थापित किया जाय । इसका उपाय गाधीजी यह बताते हैं कि सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक तथा व्यक्तिगत और सामूहिक समस्त आचरण नैतिकता के कुछ बुनियादी सिद्धान्तो पर आधारित होना चाहिए । ये सिद्धान्त उनके मत मे सत्य, अहिंसा तथा साधनों की शुद्धि का विचार है ।

इस दृष्टि से गाधीजी को सर्वोच्च कोटि का अन्तरराष्ट्रीय नेता माना जा सकता है । भारत के स्वतन्त्र होने के बाद यदि वह केवल एक चौथाई सदी और जीवित रह जाते, तो मेरा विश्वास है कि उन्होने अन्तरराष्ट्रीय शान्ति और सद्भावना स्थापित कर ली होती, जो कि उन सिद्धान्तो पर आधारित होती, जिनकी झलक उनके जीवन-दर्शन से मिलती है । अब तक उन्होने सयुक्त राष्ट्र सघ के रूप को ही बदल दिया होता और इस परिवर्तन का आधार अणु-अस्त्रो की विनाशकारी शक्ति नही होती, जो कि विश्वशान्ति की बुनियादों के लिए ही खतरा बन गई है, बल्कि इसका मार्ग उन सिद्धान्तो के पूर्णतया अनरूप होता जो सयुक्त राष्ट्र सघ की स्थापना के आधार हैं ।

अन्तरराष्ट्रीय सहयोग

यद्यपि गांधीजी राष्ट्रों की आत्म-निर्भरता और स्वतन्त्रता के सवल समर्थक थे, परन्तु वे अन्तरराष्ट्रीय सहयोग के समर्थन में भी सवसे आगे थे। वे प्रादेशिक और साम्प्रदायिक भावनाओं के विरोधी थे। उनका ध्यान प्रमुख रूप से विश्व-भावना के प्रचार की ओर था। आजकल जवकि संचार के साधनों में तेजी से वृद्धि हो रही है तथा मनुष्य जाति की एकता की चेतना वढ़ती जा रही है, हमें इसका पूर्णतया ध्यान रखना चाहिए कि हमारा राष्ट्रवाद प्रगतिशील अन्तरराष्ट्रवाद से कहीं टकराये नहीं। विश्व के अन्य भागों में जो कुछ हो रहा है, उससे भारत अलग और अप्रभावित नहीं रह सकता। अत: हमें विश्व की प्रगतिशील शक्तियों का साथ देना चाहिए। अन्यत्र उन्होंने जोर देकर कहा है कि कोई भी राष्ट्र अकेले अपने लिए नहीं है। प्रत्येक राष्ट्र सम्पूर्ण विश्व के लिए है। मैं अपने देश की स्वतन्त्रता इसलिए चाहता हूँ ताकि वह मानवता की सेवा में अपना वलिदान कर सके।

अत: यह उपयुक्त होगा कि गांधी-मार्ग के प्रचार के उद्देश्य से निर्मित संगठन की शाखाएँ प्रत्येक देश में स्थापित की जाएँ। मुझे यह देखकर हर्ष होता है कि दिन पर दिन सम्पूर्ण विश्व के लोग यह महसूस करते जा रहे हैं कि उनकी पद्धति सही थी।

अद्वितीय मानव

उपसंहार के रूप में मैं प्रोफेसर अल्वर्ट आइन्स्टीन के वे अमर शव्द उद्धृत करता हूँ, जो उन्होंने महात्मा गांधी को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहे थे: 'किसी भौतिक सत्ता के सहारे विना वह अपने राष्ट्र के नेता हैं, वह एक ऐसे राजनीतिज्ञ हैं, जिनकी सफलता का आधार राजनीतिक चालें नहीं, वल्कि केवल उनके व्यक्तित्व का प्रभाव है। वह एक ज्ञानी और विनयी विजेता हैं, जिनके शस्त्र दृढ़ संकल्प और एकलयता हैं तथा जिन्होंने अपनी सम्पूर्ण शक्ति अपने देश के लोगों के उत्थान तथा भाग्योदय में लगा दी है। वह एक ऐसे मानव हैं जिसने यूरोप की दानवता का सामना एक सरल मानव की गरिमा द्वारा किया तथा इस प्रकार हमेशा उससे श्रेष्ठ रहा। आने वाली पीढ़ियों को शायद ही यह विश्वास हो कि इस प्रकार का कोई मनुष्य कभी इस पृथ्वी पर वास्तव में रहता था।"

(राष्ट्रपति से साभार)

गांधी शताब्दी और हमारा कर्त्तव्य

श्रीमन्नारायण

हम अभी भी अपनी कठिनाइयोंको स्थायी रूपसे बापूजी के उन विचारोंका अनुसरण कर सुलझा सकते हैं जो मेरे ख्याल से बहुत व्यावहारिक, तर्कसंगत और वैज्ञानिक हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि गांधीजी एक व्यावहारिक आदर्शवादी थे, और उन्होंने हमारी समस्याओं को एक मानवीय तरीके से तथा सनातन सत्य के इस बुनियादी आधार पर सुलझाया कि श्रेष्ठ साध्य को केवल पवित्र और शुद्ध साधनों के जरिए ही प्राप्त किया जा सकता है।

इस लेख में मैंने गांधीजी के आदर्शों और कार्यक्रमों के अनुसार कुछ रचनात्मक सुझाव पेश किए हैं।

समाजवादी रचना

धर्म-निरपेक्षता और प्रजातान्त्रिक प्रणाली पर आधारित समाजवादी समाज की रचना के लिए हमारा राष्ट्र वचनबद्ध है। इस मूलभूत उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं में

अनेक कार्यक्रमों का समावेश किया गया है। फिर भी हमें खेदपूर्वक यह स्वीकार करना पड़ता है कि सादगी और आर्थिक अनुशासन के सामान्य वातावरण के अभाव में ये कार्यक्रम अधिक सफल नहीं हो सके हैं। गांधी जी ने अनेक कार्यक्रमों को स्वयं अपने जीवन से आरम्भ किया था। उनके व्यक्तिगत उदाहरण ने जनता को राष्ट्र-व्यापी आधार पर उसी तरह का कार्यक्रम अपनाने की प्रेरणा दी थी। सौभाग्य से अब हमें फिर यह सुअवसर मिल रहा है कि आत्म-परीक्षण करते हुये अपने कार्यक्रमों की सफलता पर विचार करें।

गांधीजी ने इस बात को अनेक बार दोहराया था कि भारत में तब तक समाजवाद कायम नहीं हो सकता जब तक हम भोजन वस्त्र, आवास, शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी परम आवश्यकताओं के बारे में सभी नागरिकों के लिए एक निम्नतम जीवन-मान प्राप्त कराने में सफल नहीं होते हैं। यह बात मुख्यतया अपनी जनता के उन लाखों-करोड़ों लोगों के लिए सम्पूर्ण रोजगार उपलब्ध कराने पर निर्भर रहेगी जिन्हें आज भूख और अनैच्छिक बेकारी का सामना करना पड़ता है। सिर्फ आर्थिक वृद्धि की दर तथा कुल राष्ट्रीय उत्पादन बढ़ाने के बारे में सोचने से कुछ नहीं होगा। आचार्य विनोबा के शब्दों में 'परकोलेशन' के सिद्धान्त से काम नहीं बनेगा। हमको सीधी तरहसे और फौरन अपनी आबादी के अति-निर्धन समुदायोंका जीवन-मान उठाने के लिए भरसक प्रयत्न करना होगा। भूखे व्यक्ति से यह कहने से कोई लाभ नहीं कि उसे अपने जीवन की निम्नतम जरूरतों को प्राप्त करने के लिए १० या १५ वर्ष और बाट देखनी पड़ेगी। जैसा कि गांधी जी ने कहा है, किसी भूखे व्यक्ति के सामने स्वयं भगवान भी रोटी के रूप के अलावा और किसी रूप में प्रकट होने का साहस नहीं करेंगे।

जब तक हम अत्यन्त संयमित और दृढ़ तरीके से प्राथमिकताओं का एक न्यायपूर्ण सिलसिला निर्धारित नहीं करते तब तक एक ऐसे समाजवादी लोकतन्त्र की स्थापना में साकार परिणामों की अपेक्षा करना बेकार है, जिसमें सभी नागरिक स्वतन्त्र भारत के सम्मानित नागरिकों के रूप में मानव-जीवन व्यतीत कर सकें। शहरों में गन्दी बस्तियाँ जारी रहें, राज्यों की राजधानियों में लोग फुटपाथों पर जीवन बितायें, दलित-वर्गों की अत्यन्त दयनीय दशा

बनी रहे, ऐसी अवस्था में हमारा समाजवाद के बारे में बातें करना अर्थपूर्ण और लाभप्रद कैसे हो सकता है ?

स्वदेशी भावना

गाधीजी ने हममें स्वदेशी की भावना भरी थी जो वास्तव में बुनियादी रूप से स्वाभिमान और स्वावलम्बन की भावना थी। उनकी इच्छा थी कि दूसरो का अत्यधिक सहारा लिये बिना हम स्वय अपने पैरो पर खडे हो। दुःख की बात है कि आज हमारे राष्ट्रीय जीवन मे इस स्वदेशी भावना का बहुत अभाव है। एक नियोजित आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप लोग राज्य से हर प्रकार की सहायता की अपेक्षा करने लगे हैं और उनकी अपनी सूझ धीरे-धीरे कम होती जा रही है। हमारी आर्थिक योजनाओ के लिए सीमित विदेशी सहायता, खासकर तकनीकी ज्ञान, लेने में कोई हानि नही है, लेकिन विदेशी सहायता पर अधिक निर्भर रहने से अन्त मे हमारी शक्तिया दुर्बल हो जाएगी और स्वावलम्बन की मूल भावना घट जाएगी। इसलिए मुझे यह देखकर प्रसन्नता हुई है कि योजना-आयोग ने अब इस बात की बडी मजबूती के साथ सिफारिश की है कि "चौथी योजना का एक मुख्य उद्देश्य यथाशीघ्र स्वावलम्बन की ओर बढना हो।"

'भारत छोड़ो' आन्दोलन के दौरान मे जब मैं जेल में था उस समय मुझे बापूजी के सिद्धान्तों के अनुसार 'गाधीवादी योजना' लिखने का अवसर मिला। जेल से छूटने के तुरन्त बाद योजना की पाडुलिपि पढकर गाधीजी ने अपने हाथ मे लिखा: "सरल जीवन और उच्च विचार।" उन्होने आगे कहा: "सभी नागरिको के लिए रहन-सहन के निम्नतम दर्जे को प्राप्त करने की कोशिश करते हुए हमे पश्चिम के अत्यन्त विकसित एव यन्त्रीकृत देशो की नकल नही करनी चाहिए। रहन-सहन के दर्जे को ही उठाने की अपेक्षा हमें जनता के जीवन स्तर को ऊचा उठाना चाहिए जिसमें नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का भी समावेश हो।"

विख्यात अमरीकी अर्थशास्त्री प्रो० गालब्रैथ की कुछ वर्ष पहले प्लानिंग कमीशन के साथ हुई बातचीत का भी मुझे स्मरण है। हमारी बातचीत के दौरान प्रो० गालब्रैथ ने कहा : "भारत के

गांवों में गरीब जनता के चेहरे पर मैंने स्वावलम्वन और आध्यात्मिकता का तेज देखा है जो एक तरह से उनकी निर्धनता को समृद्ध बनाता है।" हमें ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहिए जिससे हमारी देहाती जनता की इस स्वावलम्वन की भावना और नैतिक शक्ति को आंच पहुंचे।

वापूजी ने जिस किसी भी काम को हाथ में लिया, उसे वड़ा व्यावहारिक महत्व दिया। मुझे अच्छी तरह याद है, १९४५ में जव राष्ट्र के सामने भोजन की वड़ी कठिन समस्या पैदा हुई तव उन्होंने खेती की पैदावार वढ़ाने के लिए 'हरिजन' के स्तम्भों के जरिये अनेक सुझाव दिए थे। गांधीजी ने वताया था कि वाइसरीगल लाज के विशाल लॉन और नई दिल्ली के वंगलों की खाली जमीनों सहित देश में उपलव्ध सभी भूमि को खाद्य फसलें उगाने के काम में लाया जाए। रोज की तरह, एक दिन माता कस्तूरवा शाम को टहल कर लौटने के वाद सेवाग्राम में वापूजी के पैर पखार रही थीं। पैर धोनेके वाद वचा हुआ वाल्टी भर पानी रोजाना पासकी एक गुलाव की क्यारी में डाल दिया जाता था। वापूजी ने मेरी ओर देखकर कहा: "हमारी खाद्य-समस्या की परिस्थिति में गुलाव की यह क्यारी वास्तव में मुझे चुभती है। इसकी जगह हम गेहूं क्यों न पैदा करें?" और दूसरे ही दिन वहां सचमुच गेहूं वो दिए गए। विविध कार्यक्रमों को किस निष्ठा के साथ गांधीजी हाथ में लेते थे उसका यह एक उदाहरण था।

हम यह वात कहते हुए कभी भी नहीं थकते कि पंचवर्षीय योजनाओं में खेती को सवसे अधिक प्राथमिकता दी गई है। लेकिन फिर भी ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जहां खेती की अच्छी जमीनों का उपयोग उद्योग, शिक्षा तथा विविध परियोजनाओं की इमारतें खड़ी करने के लिए किया जाता है।

इस समय लाखों एकड़ जमीन जिसे 'गोचर' कहा जाता है लगभग वेकार पड़ी है। इस प्रकार की जमीन का या तो अच्छा चारा अथवा अन्न की फसलें उगाने के लिए इस्तेमाल करना चाहिये। हमें लोगों को प्रोत्साहित करना चाहिए कि विना जोती हुई जमीनों को खेती के उपयोग में लाया जाए। इस प्रकार की नई जोती हुई भूमि पर 'सीलिंग' के नियम निश्चित समय की मर्यादा तक लागू न किए जाएं तो अच्छा रहेगा।

मूल्य-वृद्धिकी समस्या

मूल्य-वृद्धि जैसे पेचीदे सवालका, खासकर जरूरी खपत की चीजोका, सामना आज देशको करना पड रहा है। इन मूल्यों को उचित सीमाके अन्दर रखनेके लिए केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों ने अनेक कदम उठाए हैं। लेकिन इनके परिणाम काफी असन्तोषकारक रहें हैं। यह स्पष्ट है कि खपत-सामान के दाम तब ही वाछनीय स्तर पर कायम किये जा सकते है जबकि हम उनके उत्पादन को तेज रफ्तार से बढाने में सफल हों। इसके अलावा हमको सहकारी उपभोक्ता भण्डारो की अनेक शाखाए खोलनी चाहिएं, ताकि दोनो उपभोक्ता तथा उत्पादको के हितों में मध्यस्थो के मुनाफों को खत्म किया जा सके। गाधीजी हमारी आर्थिक पद्धतिमे अत्यधिक नियत्रण लागू करनेके पक्षमें नही थे। वे केवल उन्ही प्रतिबन्धो को कायम रखना चाहते थे जो सामान्य व्यक्ति के आर्थिक हितों की रक्षा के लिए बिलकुल जरूरी हों। दूसरे शब्दो मे वे कुछ चुने अथवा महत्वपूर्ण नियत्रणो को ही कायम रखने की नीति के पक्ष मे थे।

गाधीजी ने अहमदाबाद मे अनेक वर्षो तक देश के लिए एक ठोस कामगार नीति की रचना की। पिछली दो दशाब्दियो मे गाधीजी के इन आदर्शो को कामगारो के क्षेत्र में अमल मे लाने के लिए भारतीय राष्ट्रीय मजदूर काग्रेस (इन्टक) काफी प्रयत्न कर रही है। महात्माजी ने कामगारों के अधिकारों तथा कर्त्तव्यो दोनो पर काफी जोर दिया था। कामगारो के वेतनो का सम्बन्ध अनिवार्य रूपसे उत्पादकता मे होनेवाली वृद्धिसे होना चाहिए। यदि वे औद्योगिक उत्पादन बढानेके लिए कठिन परिश्रम किए बिना ही अधिक वेतनो और महगाई-भत्तोकी माग करते रहेंगे, तो खपत-सामानो की कीमत बढती जाएगी और वह एक विकृत वृत में उलझ जाएगी। यदि विशेष अवस्थाओ के अन्तर्गत अधिक महगाई-भत्ता देना भी पडे, तो जहां तक हो सके उसे नकद के स्थान पर किस्म मे ही दिया जाए। रेलवे, डाक और तार, अस्पतालों, बन्दरगाहो वगैरह जैसी अनिवार्य सेवाओ मे प्रायः होनेवाली हडतालोको सख्तीसे दबा देना चाहिए। खेद की बात है कि इस तरह की हडतालें मुख्यतया राजनैतिक हो गई हैं और कुछ तत्व अपने स्वार्थ-साधनके लिए देशमें इस तरहकी गडबडी और अव्यवस्था फैलाते ही रहते हैं। हमे चाहिए कि इस मामले में कडा

रुख अपनाएं और इस तरहके समाजविरोधी तत्वोंको खुश रखने और उनसे समझौता कर लेनेकी नीति न वरतें।

कम्पोस्ट खाद

गांधीजी ने इस वात पर अनेक वार वल दिया था कि कमजोर जमीन को उपजाऊ वनाने के लिए कम्पोस्ट तथा हरी खाद का अधिकाधिक उपयोग किया जाए। खेतों की पैदावार वढ़ाने के लिए रासायनिक खादों को व्यवहार में लाने के वारे में कोई विरोध तो नहीं हो सकता। लेकिन यह आवश्यक है कि इन नकली खाद को कम्पोस्ट खादके साथ उचित प्रमाणमें मिलाया जाए, ताकि सन्तुलन कायम रखा जा सके।

रासायनिक खादों का अधिक प्रमाण में उपयोग करने से आरंभ में तो कुछ अच्छी फसलें होती हैं, लेकिन वाद में उनसे जमीन का उपजाऊपन तेजीसे घट जाता है।

पशु-पालन—गोसेवा

गांधीजीने कृषिको मजवूत वनाने के लिए गो-संवर्धन को काफी महत्व दिया था। उन्होंने गोसेवा का एक व्यापक कार्यक्रम तैयार किया था। खेद है कि हमने इस कार्यक्रमको व्यवस्थित ढंगसे नहीं अपनाया। परिणामस्वरूप, कुछ लोग गौ-रक्षा सम्वन्धी जनता की भावनासे राजनैतिक लाभ उठा रहे हैं। जापानमें मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उन क्षेत्रों तकमें जहां कई प्रकारकी कृषिकी मशीनों का उपयोग होता था वहां पर भी किसान क्रमशः गायकी ओर झुक रहे थे। जव मैंने उनसे इस फेर-वदलका कारण पूछा तो किसानों ने फौरन जवाव दिया : "महाशय, मशीन हमको न दूध देती है और न खाद।" जापान के किसान गाय का उपयोग खेतों को जोतने में भी करते हैं। कम्पोस्ट खाद के प्रत्येक औंस का जमीन को उपजाऊ वनानेके लिए भरपूर उपयोग होता है और दूध का उत्तरोत्तर इस्तेमाल डेयरियों को कायम करने तथा लघु-उद्योगों के जरिये दूध की अनेक प्रकारकी चीजें वनानेके काममें होता है। क्या हम भारतमें भी गोपालन और वड़े पैमाने पर डेयरी उद्योग स्थापित करनेका उसी तरहका कार्यक्रम नहीं अपना सकते हैं? ऐसा करने से हम न केवल गाय और उसकी सन्तति को वचा सकेंगे वल्कि अपनी खेती को अधिक उत्पादक और वैज्ञानिक भी वना पाएंगे।

दुर्भाग्य से भारत में हम गाय की पूजा करके ही सन्तोष कर लेते हैं, लेकिन मिश्रित खेती, वैज्ञानिक प्रजनन और सहकारी बाजारने व्यवस्था जैसे कार्यक्रमों के जरिये उसकी रचनात्मक ढग से सेवा करने की चिन्ता नही करते हैं।

भूमि-सुधार

विभिन्न राज्योंमें भूमि-सुधारोंका अमल भी मन्द और रुकावटपूर्ण रहा है। आचार्य विनोबा के भूदान और ग्रामदान आन्दोलनों के बावजूद, कृषि-उत्पादकता बढानेके हेतु हम एक क्रान्तिकारी भूमि-सुधार कार्यक्रम को अमल मे नही ला पाए हैं। छोटे किसानोंकी यथाशीघ्र मदद करने की जरूरत है, ताकि वे सेवा-सहकारिताओं में सगठित हो सकें और छोटी सिंचाई-योजनाओं, सुधरे हुए औजारों, अच्छे बीज तथा समय पर अन्य सुविधाएं प्राप्त कर प्रति एकड उपज बढा सकें।

भूमिहीन मजदूर

हालके सर्वेक्षणों से पता चला है कि भूमि-सुधारकी लगातार बातोंके बावजूद भूमिहीन मजदूरोंकी आर्थिक हालत वास्तवमें दयनीय है। भूदान-आन्दोलनके जरिये अब तक लगभग तेरह लाख एकड जमीन भूमिहीन किसानों मे बाँटी गई है। कदाचित इस वर्गको राज्य सरकारों द्वारा अन्य दस लाख एकड़ जमीन प्रदान की गई है। किन्तु इस महत्वपूर्ण क्षेत्र में अभी बहुत कुछ करना बाकी है। मैं ऐसा महसूस करता हूँ कि नौकरी की सुरक्षा तथा उचित मजदूरी का आश्वासन देनेके लिए भूमिहीन मजदूरों को सहकारी समितियों में—खास कर ग्रामदानी क्षेत्रोंमें—सगठित करने के लिए सक्रिय कदम उठाए जाने चाहिएं। भारतीय साम्यवादी दल ने कृषि-मजदूरोंके लिए एक अखिल भारतीय सगठन का निर्माण करने का अभी हाल ही में फैसला किया है। अतः यह बहुत ही जरूरी है कि रचनात्मक कार्यकर्ता इस क्षेत्र मे तुरन्त प्रवेश करें।

खादी और ग्रामोद्योग

भारत की जटिल समस्या, जिसका बड़ी शीघ्रताके साथ हल ढूंढना जरूरी है, बेरोजगारी और अर्ध-बेकारी है। हमारे सविधानमें अपनी जीविका के लिए 'काम करनेका मूल अधिकार' प्रदान किया

गया है। सारे संसार में वेकारी को दूर करना आर्थिक नियोजन का प्राथमिक उद्देश्य माना गया है। गांधीजीने स्वाधीनता के पूर्व ही खादी और ग्रामोद्योगों के विकास पर वहुत वल दिया था, ताकि हमारी जनता के लाखों ऐसे लोगों को काम मिल सके जिन्हें विना इच्छा के वेकार रहना पड़ता है। अपनी 'गाँधीवादी योजना' तैयार करते समय, जो १६४४ में प्रकाशित हुई, मैंने एक दिन सेवाग्राम में गांधीजी से मशीनों के उपयोग के वारे में उनके विचार जानने के लिए प्रार्थना की। उन्होंने साफ शब्दोंमें कहा : "मुझे इस वारेमें कोई खफ्त नहीं है। मैं तो यही चाहता हूँ कि भारत के प्रत्येक स्वस्थ नागरिक को रोजगार दिया जाए। यदि वेरोजगारी पैदा किये विना विजली क्या, आणविक शक्तिका भी उपयोग किया जाए, तो मैं उसका विरोध नहीं करूंगा। लेकिन मैं यह अच्छी तरह से समझ लेना चाहता हूँ कि यह वात हमारे जैसे देश में कैसे सम्भव होगी, जहां आवादी वहुत अधिक है और पूंजी थोड़ी।' मेरे विचार से कोई भी आधुनिक अर्थशास्त्री भारत जैसे विकासशील देशों में यंत्रीकरण की नीति के वारे में गांधीजी के इस प्रकार के स्पष्ट विचारों में त्रुटि नहीं निकाल सकेगा। वापूजी ने आगे कहा : "यदि सरकार हमारी जनता को खादी और ग्रामोद्योगों की मददके विना सम्पूर्ण रोजगार दे सकती है, तो मैं इस क्षेत्रके अपने रचनात्मक कार्यको वन्द करनेके लिए तैयार हूँ।" १६५१ में योजना-आयोगके सदस्योंके साथ इसी समस्या पर विचार--विमर्श करते हुए आचार्य विनोवाने तो यहाँ तक कह दिया था कि यदि सरकार सभी जरूरतमन्द व्यक्तियोंके लिए रोजगार के अन्य मार्ग निकाल सकती है, तो उन्हें अपने लकड़ी के चरखे को जलाकर उससे एक दिन का खाना पका लेने में कोई हिचक नहीं होगी। इसलिए खादी और ग्रामोद्योग के वारे में गांधीजी के विचारों को केवल 'आदर्शवादी' की संज्ञा देना विलकुल अनुचित है।

जहां तक मेरा ख्याल है, देशमें खादी, ग्रामोद्योग और कुटीर-उद्योगों के भरपूर विकासके विना हम अपनी जनता को सम्पूर्ण रोजगार का आश्वासन नहीं दे सकते हैं। हां, यह सच है कि हमको आधुनिक विज्ञान और अनुसंधान को व्यवहार में लाकर विद्यमान टेकनोलॉजी में सुधार करने के लिए संगठित प्रयत्न करना चाहिए। गांव और देहातों की दस्तकारियों को अधिक उत्पादक और कार्यकुशल वनाने के लिए भी हमको पूरी कोशिश करनी चाहिए।

इसके लिए यह बिल्कुल जरूरी होगा कि सरकार खादी तथा अन्य ग्रामोद्योगों के पदार्थों को उपयोग में लाने की जिम्मेवारी उठाए। यह काम कुछ हद तक उन चीजों को अपने विभिन्न विभागों के लिये इस्तेमाल में लाकर और कुछ अंश तक राष्ट्रीय कर्तव्य के रूप में जनता द्वारा इन वस्तुओं को खरीदने का प्रोत्साहन देकर किया जा सकता है। वास्तव में, खादी को खरीदने में खर्च किए गए कुछ अधिक पैसों को एक प्रकार का ऐच्छिक बेरोजगारी-कर या स्वेच्छा से किया हुआ सहयोग ही मानना चाहिए जिसे जनता, जनताके लिए सहर्ष अदा करे।

नशाबन्दी

यह सर्वविदित है कि राष्ट्रीय विकास के एक अभिन्न कार्यक्रम के रूपमें सारे भारतमें सम्पूर्ण नशाबन्दी लागू करनेके लिए महात्मा गांधीजी बहुत ही उत्सुक थे। उन्होंने तो यहां तक कहा था कि "यदि मुझे भारत का एक ही घन्टे के लिए डिक्टेटर बना दिया जाय, तो सबसे पहले मैं जो काम करूंगा वह होगा बिना कोई मुआवजा दिये शराबकी सभी दुकानोंको बन्द करना।" 'गांधी अरविन सन्धि' के समय भी गांधीजी ने शराब की दूकानों के सामने धरना देने के अपने अधिकार को नहीं छोड़ा। पहले आम चुनाव से ही कांग्रेस अपने घोषणा-पत्रोंमें नशाबन्दीको एक आवश्यक मुद्दे के रूपमें रखती रही है। अतः यह बहुत ही क्षोभ का विषय है कि कई कांग्रेसी सरकारों ने भी आगामी पंचवर्षीय योजना के लिए साधनों को जुटाने के नाम पर अब नशाबन्दी को हटाकर इस राष्ट्रीय नीति की अवहेलना की है।

राज्यों को अपने क्षेत्रों में नशाबन्दी लागू करने में जो नुकसान होगा उसकी ५० प्रतिशत पूर्ति करने के लिए केन्द्रीय सरकार सहमत हो गई है। केन्द्र के इस महत्त्वपूर्ण आश्वासन से, राज्य सरकारें, यदि वे वास्तव में गांधी-शताब्दी मनाने के लिए निष्ठावान हैं तो अपने गलत कदमों को पीछे खींचें तथा श्रद्धा से सम्पूर्ण नशाबन्दी की ओर अग्रसर हों।

मैं नशाबन्दीको केवल नैतिक प्रश्न ही नहीं मानता। हमारा मुख्य लक्ष्य गरीब वर्गों की आर्थिक प्रगति रहा है। योजना-आयोग के सदस्य की हैसियत से १९६२ में अपने विस्तृत भ्रमण के दौरान में मैं दुर्गापुर इस्पात कारखाना देखने गया था। जनरल मैनेजर से यह,

जानकर मुझको गहरा आघात पहुँचा कि उस कारखाने के कामगारों की साप्ताहिक मजदूरी की करीब ४० प्रतिशत रकम वेतन के ही दिन शराब पीने में खर्च हो जाती है। देश की लगभग सभी वड़ी-वड़ी योजनाओं में, चाहे वे सार्वजनिक क्षेत्र में हों अथवा निजी क्षेत्र में, यही हालत है।

नशाबन्दी के अभाव में हमारा नियोजन ठीक उस घड़े में दूध और शहद भरने के समान है जिसमें अनेकानेक छिद्र हों। वास्तव में, हमें गैर-कानूनी प्रवृत्तियों को रोकने के उद्देश्य से नशाबन्दी-कार्यक्रम के अमल में सुधार लाने के लिए आवश्यक प्रयास करना चाहिए। किन्तु, नशाबन्दी को ही बिलकुल तिलांजलि दे देना, स्नान-पानी के साथ बच्चे को भी बाहर फेंक देने के समान है। यह सर्वसाधारण अनुभव की बात है कि शराब बनाने का गैर-कानूनी काम उन क्षेत्रों में भी भारी पैमाने पर विद्यमान है जहां मद्यनिषेध का कानून नहीं है।

गांधीजी का पक्का विश्वास था कि नशाबन्दी की नीति अधिक संख्या में निष्ठावान सामाजिक कार्यकर्ताओं के पूरे सहयोग के बिना सफल नहीं हो सकती। सरकारी तथा गैर-सरकारी एजेंसियों के सहकार्य से अगले दो-तीन वर्षों में सभी राज्यों में पूरी नशाबन्दी लागू करना अवश्य सम्भव हो सकता है।

स्वास्थ्य और सफाई

गांधीजी ने सदैव इस बात पर जोर दिया था कि स्वास्थ्य की दृष्टि से अनावश्यक दवाइयों का प्रयोग न किया जाय और प्राकृतिक चिकित्सा के सामान्य नियमों का पालन हो। सन् १९४२ की 'अगस्त-क्रान्ति' के समय आगाखां महल मे उन्होंने बड़े परिश्रम से 'आरोग्य की कुंजी' नामक पुस्तिका लिखी थी। यह पुस्तिका खास तौर पर हमारे नवयुवकों के लिए एक मूल्यवान प्रकाशन है। गांधी-शताब्दी के अवसर पर हमें इसकी लाखों प्रतियां विद्यार्थियों के हाथ में दे देनी चाहिए।

आचार्य विनोबा ने कई बार कहा है कि स्वतन्त्र भारत के अलावा हमें एक 'स्वच्छ' भारत का भी निर्माण करना है। यह बड़े शर्म का विषय है कि अन्य विकासशील देशों की अपेक्षा हमारा देश अभी भी काफी अस्वच्छ है। शहर और देहात गन्दगी व बदबू से भरे हैं। इसका कारण कुछ तो आम जनता की अस्वच्छ आदतें हैं

हमारी नगरपालिकाओं की गफलत और अकर्मण्यता है। इसलिए हमें बापूजी की स्मृति में सारे देश में सफाई का एक जन-आन्दोलन प्रारम्भ करना चाहिए। गांधीजी बहुत-सी बातों को बर्दाश्त कर लेते थे, किन्तु गन्दगी को नहीं। इस दिशामें हम देहातों में 'गोबर-गैस-प्लांट' का प्रचार व्यापक ढंगसे कर सकते हैं, ताकि अच्छी खाद के साथ-साथ गैस और बिजली भी प्राप्त हो सके।

हरिजन और आदिवासी

हमने इस बात को मान लिया था कि स्वराज्य-प्राप्ति के बाद हरिजनों से सम्बन्धित समस्याएं मोटे तौर पर अपने आप खत्म हो जाएंगी। मुझे रंज के साथ कहना पड़ता है कि देश के विभिन्न भागों में आज भी हरिजन नाना प्रकार के दुर्व्यवहार के शिकार होते देखे जाते हैं। अनेक क्षेत्रों में पानी पाने के लिए सार्वजनिक कुएं दलित वर्गों के लिए अब भी खुले नहीं रहते। आदिवासी क्षेत्रों में सामाजिक तथा आर्थिक दशाएं सन्तोषकारक नहीं हैं। मुझे खुशी है कि अधिक संख्या में रचनात्मक कार्यकर्ताओं की सहायता से गुजरात व अन्य कुछ राज्यों ने इस दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया है। गुजरात में सभी नगरपालिका-क्षेत्रों में सुधरे हुए उपकरणों और साधनों द्वारा ही मल ढोने की व्यवस्था की जा रही है। २ अक्तूबर १९६९ तक यह सुधार-कार्य पूरा हो जाएगा। हमें आशा करनी चाहिए कि अन्य राज्य इस उदाहरण का अनुकरण करेंगे। विभिन्न इलाकों के जन-जाति खण्डों के काम की ओर भी ज्यादा ध्यान देने की जरूरत है।

बुनियादी शिक्षा

शिक्षा के क्षेत्र में गांधीजी ने राष्ट्र को लगभग तीस वर्ष पहले अपनी नई तालीम या बुनियादी शिक्षा की योजना दी थी। बड़े खेद की बात है कि केन्द्र और राज्य सरकारों ने अभी तक इस प्रकार की उद्योग-प्रधान शिक्षा के उचित प्रयोग को अवसर नहीं दिया है।

जब तक हम गांवों और शहरों में अपनी शैक्षणिक संस्थाओं को उत्पादक प्रवृत्तियों की ओर मोड़ नहीं देते हैं तथा अध्यापन के साथ रचनात्मक कार्य नहीं जोड़ते हैं तब तक हम शिक्षित-बेरोजगारी और लघु उत्पादकता सम्बन्धी विस्फोटक समस्याओं को पैदा करते रहेंगे, जिनसे हमारे समाजवादी लोकतन्त्र का अस्तित्व ही खतरे में

पड़ जाएगा। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि गांधी-शताब्दी अवधि में भारत सरकार व राज्य सरकारें विश्वास और दृढ़ता के साथ कम से कम प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलों में बुनियादी शिक्षा जारी करने का संकल्प करेंगी। किन्तु यह जरूरी नहीं है कि हम बुनियादी या उत्तर-बुनियादी स्कूलों के साथ अलग फार्म या उद्योगशालाओं की व्यवस्था करें।

'कम्यूनिटी डेवलपमेंट' या सामूहिक विकास योजना के द्वारा हम देहातों में बिना अधिक खर्च किए बहुत अच्छी बुनियादी शिक्षा देने का प्रबन्ध कर सकते हैं। हाँ, कुछ चुने हुए बुनियादी और उत्तर-बुनियादी स्कूलों के साथ फार्म और परिश्रमालयों को स्थापित करना उपयोगी होगा ताकि उनके द्वारा विशिष्ट ट्रेनिंग दी जा सके। मुख्य बात तो यह है कि हमारे देश में हरेक विद्यार्थी को हाथ से काम करने के काफी अवसर मिलने चाहियें ताकि उसके व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास हो सके।

नैतिक शिक्षा

इसके अलावा स्कूलों और कालेजों में नैतिक अथवा धार्मिक शिक्षा को शुरू करना जरूरी है, ताकि हमारे धर्म-निरपेक्ष लोकतंत्र के लिए एक स्वस्थ वातावरण पैदा किया जा सके। धर्म-निरपेक्ष राज्यका अर्थ किसी ऐसे राज्यसे नहीं होता है जहाँ पर धर्म के लिए कोई स्थान न हो। उसका अर्थ केवल यही होता है कि सभी धर्मों के प्रति समान आदर हो—'सर्व-धर्म-समभाव'। इसलिए यह जरूरी है कि नई पीढ़ी को सभी धर्मों के ऐसे मूल सिद्धांतों की जानकारी दी जाए जो सामान्यतः एक से हैं। नैतिक शिक्षा के बारे में श्रीप्रकाश समिति की सिफारिशों को भी सभी राज्य सरकारों द्वारा अविलम्ब अमल में लाना चाहिए।

शिक्षा का माध्यम

स्कूल और कालेजों में शिक्षा के माध्यम के सवाल के बारे में गांधीजी ने क्षेत्रीय भाषाओं के व्यवहार की आवश्यकता पर जोर दिया था। इस विषय पर मेरी एक पुस्तिका के आमुख में गांधीजी ने लिखा था : "मनुष्य के मस्तिष्क के विकास के लिए मातृभाषा उतनी ही नैसर्गिक है जितना कि शिशु के विकास के लिए मां का

दूध । इसके अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है ? बच्चा अपना पहला सबक अपनी मा से लेता है । इसलिए मैं इस बात को मातृभूमि के प्रति पाप समझता हूँ कि उसके बच्चों पर उनके मानसिक विकास के लिए मातृभाषा के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा को थोपा जाए ।"

यदि ग्रेजुएट (स्नातक) अवस्था तक हिन्दी और अंग्रेजी को भी अनिवार्य रूप से पढाया जाए, तो मातृभाषा को शिक्षा-माध्यम के लिए उपयोग मे लाने से भारत की राष्ट्रीय अखण्डता को क्षति नही पहुँचेगी । देश भर में शैक्षणिक सुधारों को तेजी से अमल मे लाने के लिए प्रत्येक विश्वविद्यालय को चाहिये कि वह पाठ्य-पुस्तकों तथा अन्य उपयुक्त साहित्य का काफी प्रमाण मे क्षेत्रीय भाषाओं मे भी निर्माण कराने की व्यवस्था करे । मेरे विचार से इस क म के लिए पाच वर्ष की अवधि पर्याप्त होगी । आखिर जहा चाह होती है वहा राह निकल ही आती है ।

त्रिभाषा–फार्मूला

यह बात भी मान ली गई है कि त्रिभाषी–फार्मूले को अच्छी तरह से अमल में लाना देशके परम हित मे होगा । उसका मतलब यह हुआ कि प्रत्येक छात्र को अपनी मातृभाषा या दूसरी आधुनिक भारतीय भाषा, खास कर दक्षिण भारत की, यदि उसकी मातृभाषा हिन्दी है; राष्ट्रभाषा, और अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के रूप मे अंग्रेजी का अध्ययन करना पड़ेगा । मेरे विचार से अंग्रेजी के अलावा हमे अपने छात्रों को फेंच, जर्मन, रूसी या जापानी जैसी कुछ अन्य विदेशी भाषाओं मे कुशलता प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए । यदि हम देश मे भाषाओं को सीखने का एक अच्छा वातावरण पैदा कर सकें, तो हमारे नवयुवकों को त्रिभाषी–फार्मूला भार-स्वरूप नही लगेगा ।

राष्ट्रभाषा

गांधीजी ने वर्षों तक राष्ट्रभाषा की समस्या पर काफी ध्यान दिया था । उन्होंने अपने पुत्र देवदास गाधीको हिन्दी का प्रचार करने के लिए १९१८ मे मद्रास भिजवाया था । दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा और वर्धा की राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ने, जिसका मैं पाच वर्ष तक महामन्त्री रहा, पिछली कुछ दशाब्दियो मे लाखों

अ-हिन्दी भाषी लोगों को हिन्दी की शिक्षा दी है। गांधीजी या उनके सहयोगियों का कभी भी यह उद्देश्य नहीं था कि क्षेत्रीय भाषाओं को किसी प्रकार दबाया जाए। गांधीजी बार-बार कहा करते थे कि जिन लोगों को स्वयं अपनी मातृभाषाओं का ज्ञान नहीं है उन्हें राष्ट्रभाषा सीखने का अधिकार ही नहीं है। इसके अलावा बापूजी अंग्रेजी या अन्य विदेशी भाषाओं के अध्यापन के विरुद्ध नहीं थे। वास्तव में उनकी इच्छा थी कि शिक्षा का माध्यम मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा हो, सभी छात्रों को हिन्दी राष्ट्रभाषा के रूप में पढ़ाई जाए तथा अंग्रेजी या किसी अन्य विदेशी भाषा के अध्ययन का लाभ उन सभी लोगों को मिले जिन्हें अपने व्यवसाय के लिए उसकी आवश्यकता हो। इसलिए यह देखकर क्षोभ होता है कि केन्द्र की सरकारी भाषा के बारे में उत्तेजनापूर्ण बहसों के परिणामस्वरूप उत्तर और दक्षिण में हिंसात्मक और भद्दी घटनाएं हुईं। यह बातें सचमुच बहुत दर्दनाक व अशोभनीय है।

मेरी यह भी राय है कि केन्द्रीय लोकसेवा आयोग द्वारा ली जाने वाली अखिल भारतीय प्रतियोगिता परीक्षाओं में विभिन्न क्षेत्रों के छात्रों पर भाषा का भार समान होना चाहिए। यदि राज्यों द्वारा त्रिभाषी-फार्मूले पर सही तरीके से अमल किया गया, तो लोक सेवा परीक्षा में सभी उम्मीदवारों पर समान भार डालने में कोई कठिनाई नहीं होगी।

भाषावार राज्य

मैं भाषावार राज्यों के बारे में भी कुछ शब्द कहना चाहूँगा। स्वाधीनता की लड़ाई के दौरान कांग्रेस ने हमेशा क्षेत्रीय भाषाओं पर आधारित नए राज्यों की रचना की पैरवी की थी। इस योजना का मुख्य मुद्दा प्रशासन तथा शिक्षा का काम जनता की भाषा में चलाना था। फिर भी, गांधीजी ने भारत की सांस्कृतिक एकता बनाए रखने की आवश्यकता पर हमेशा जोर दिया था। जब उन्होंने यह देखा कि भाषावार प्रांतों की मांग राष्ट्रीय अखण्डता को खतरे में डाल रही है, उस समय उन्होंने खेद के साथ मेरे एक पत्र के जवाब में लिखा था: "वर्तमान निरुत्साही वातावरण में भाषावार पुनर्गठन को अमल में न लाने की वांछनीयता कदाचित ठीक हो सकती है। एकाकीपन की भावना सर्वत्र फैली हुई है।......कोई भी सारे भारत की

बात सोचता ही नही।* बम्बई राज्य के महाराष्ट्र और गुजरात मे विभाजन होने के बाद १९६० के आस पास पंडितजी ने भी एक बात कही थी जो मुझे अच्छी तरह याद है : "श्रीमन्, भाषावार राज्यो का यह कामकाज हम सभी लोगों के लिए काफी सिरदर्द का कारण बन गया है। लगता है हमने यह काम बड़े बुरे मुहूर्त मे शुरू किया था। हुआ या बुरा, अब हमें यह काम काफी लम्बे अर्से तक नही छूना अच्छाचाहिए। यह तो सचमुच बर्र का छत्ता है।" राष्ट्र को इतनी कड़ी चेतावनी मिलने के बाद भी हम देश के अनेक भागों मे भयकर परिणामो के साथ नीचे फिसलते चले जा रहे हैं।

क्षेत्रीय भावना के अत्यधिक बढावे से भारत की एकता टुकडे-टुकड़े हो जाएगी और स्वतन्त्र देश के रूप मे हमारी हस्ती ही खतरे मे पड जायगी।

राष्ट्रीय एकता

देश के अन्दर की व्यवस्था निस्सन्देह बडी चिन्ताजनक है। अखबारो मे हम करीब रोजाना सगठित समूहो द्वारा की गई हिंसा, लूटपाट और आगजनी की घटनाओ के बारे मे पढते हैं। इस तरह के काम और भी अधिक निन्दनीय हो जाते हैं जब छात्र विवेकहीन राजनीतिज्ञों के हाथ का खिलौना बन जाते हैं। हाल ही मे श्रीनगर मे हुई राष्ट्रीय एकता समिति की बैठक ने प्रधानमत्री की अध्यक्षता मे सामयिक और रचनात्मक निर्णय लिये हैं। उन निर्णयो में साम्प्रदायिक दगों को दबाने के लिए भारतीय दण्ड सहिता में भी कुछ सशोधन प्रस्तावित किए गए हैं।

गाधीजी ने साम्प्रदायिक दगो तथा अन्य किस्म को सामाजिक हिंसाओ को रोकने के लिए शान्ति दलो (पीस ब्रिगेडो) की रचना का सुझाव दिया था। विनोबाजी ने भी इस उद्देश्य से शान्ति सेना की रचना की है। यह बात माननी होगी कि अभी तक शान्ति सेना द्वारा विशेष प्रभाव पैदा नही हो सका है। सरकार और जनता के अधिक सक्रिय समर्थन से ये पीस ब्रिगेड पुलिस और मिलटरी की सहायता लिये बिना ही आन्तरिक हिंसा और अव्यवस्था की रोक-थाम में महत्वपूर्ण योग दे सकते हैं।

---

* हरिजन, ३०-११-'४७।

सच तो यह है कि राष्ट्रीय एकता का सही वातावरण तभी कायम किया जा सकता है जब शिक्षण-संस्थाओं द्वारा हमारे नवयुवकों के दिल और दिमाग व्यापक और उदार बनाए जा सकें। विद्यार्थियों को भारत की प्राचीन और समन्वय-पूर्ण संस्कृति का समुचित ज्ञान दिया जाए, साथ ही साथ देश की आजादीके संग्राम की जानकारी भी। और सबसे अधिक तो यह आवश्यक है कि हमारे नौजवान भारतीय बनें, यद्यपि वे सभी देशों के गुणों को अपनाते रहें। देश के प्रति गहरी श्रद्धा व प्रेम के बिना जाति, प्रदेश, भाषा और मजहब सम्बन्धो संकुचित भावनाओं को जड़ से उखाड़ना मुमकिन नहीं होगा।

हमारा लोकतान्त्रिक ढांचा

मुझे स्वतन्त्र भारत के लिए "गांधीवादी संविधान" (गांधियन कान्स्टीट्यूशन फॉर फ्री इंडिया) प्रकाशित करने का अवसर प्राप्त हुआ था जिसमें स्वयं गाँधीजी ने एक मूल्यवान आमुख लिखा था। बापूजी वयस्क मताधिकार पर आधारित एक लोकतांत्रिक व्यवस्था के प्रबल समर्थक थे। वे बुनियादी स्तर पर प्रत्यक्ष लोकतंत्र के और ऊपरी स्तर पर परोक्ष रूप से चुनी गई लोकतान्त्रिक संस्थाओं के हामी थे। उन्हें जनता की निजी अच्छाईयों के प्रति गहरी आस्था थी और उसकी सहज-बुद्धि की वे तारीफ करते थे। इसलिये वर्तमान राजनैतिक स्थिति में, खासकर चौथे आम-चुनाव के बाद, उत्पन्न हुए तनाव की वजह से हमारे संविधान के लोकतान्त्रिक ढांचे पर सन्देह व्यक्त करना हमारे लिए ठीक नहीं होगा। अध्यक्षीय अथवा अन्य प्रकार के नए संविधान के बारे में सोच-विचार करने की अपेक्षा यह बेहतर होगा कि हम अपनी दशाओं के अनुकूल नई प्रजातंत्रीय परिपाटियों का विकास करें। उदाहरण के तौर पर हमें अपने विधान अथवा संविधान तक में कुछ ऐसे संशोधन कर लेने चाहिए जिनके अन्तर्गत संसद-सदस्यों या राज्य के विधायकों के दल बदलने, सदनों के भीतर असंयमित और हिंसात्मक प्रदर्शन करने तथा मंत्रियों या साथी-सदस्यों के विरुद्ध गैर-जिम्मेवार आरोप लगाने पर आवश्यक नियंत्रण किया जा सके। इस प्रकार के सभी गंभीर आरोपों की सम्पूर्ण जांच का कार्य सामान्यतया सदन की एक उपसमिति को सौंपा जाना चाहिए। यदि आरोप साबित हो जाँय तो सम्बन्धित मंत्री महोदय को

पद त्याग देना चाहिए। यदि वे गलत साबित हुए तो सदस्य को त्यागपत्र देना चाहिए और उसे एक निर्दिष्ट अवधि के लिए अयोग्य घोषित किया जाय। यदि हम अपने संविधान तथा वर्तमान कानूनो में इस तरह के नियन्त्रण तथा प्रति-नियन्त्रण शीघ्र लागू कर दें, तो हमारे लिए अपना लोकतान्त्रिक ढांचा सुदृढ आधारो पर कायम रखना और आगे बढाना सम्भव हो सकेगा।

चुनावोंकी पद्धति

हमारे देश मे लोकतन्त्र के समुचित विकास के लिए वर्तमान विधान मे कुछ आमूल संशोधन कर चुनाव के खर्चों मे कमी करना बिल्कुल आवश्यक है। संसद और राज्य के विधानमन्डलों के लिए चुनाव लडना अधिक खर्चीला बनता जा रहा है। इससे भ्रष्टाचार और बेईमानी पैदा होती है और उन सुयोग्य उम्मीदवारो को भी हट जाना पडता है जो आर्थिक साधन नही जुटा पाते। इसलिए सभी राजनैतिक दलो को कुछ ऐसे तरीके स्वीकार कर लेना जरूरी है जिससे चुनाव की पद्धति में खर्च कम लगे और वह आम जनता की पहुंच के भीतर हो।

हमारे चुनाव के ढंग को आसान बनाया जाए और उसे इतना सस्ता कर दिया जाए कि एक सामान्य नागरिक भी सम्मान-पूर्वक चुनाव लड़ सके। अन्यथा हमारा लोकतन्त्र जल्द ही कुछ इने-गिने धनी लोगों का खेल बन जाएगा।

विदेश नीति

पाकिस्तान, कश्मीर और चीन सहित विदेशी मामलों के बारे में उल्लेख किए बिना यह नोट अपूर्ण ही माना जाएगा। यह सभी लोग मानते हैं कि विश्व–शान्ति, गुटों से अलग रहने और शान्ति पूर्ण सह-अस्तित्व की हमारी बुनियादी विदेश नीति सही है और समय के साथ खरी उतरी है। यह मार्ग न केवल गाधीजी के आदर्शों बल्कि हमारी प्राचीन संस्कृति और परम्पराओ के अनुरूप भी है। वेदो और उपनिषदों के काल से 'वसुधैव कुटुम्बकम्' ही हमारा महान आदर्श रहा है। हमे इस नीति को नई आस्था और समर्पण की भावना के साथ अपनाते रहना चाहिए।

नेपाल, बर्मा, लका और अफगानिस्तान जैसे पडोसी देशों के साथ हमारा व्यवहार अत्यन्त मैत्री एव सद्भावना-पूर्ण होना चाहिए।

हां, हमारे पास उपलब्ध सीमित साधनों के भीतर उन्हें आर्थिक सहायता और सहकार देना भी वांछनीय है। इन पड़ोसी मित्रों को सचमुच यह महसूस होना चाहिये कि भारत पारस्परिक सहयोग की भावना के साथ हमेशा उनके दुख:सुख में सहभागी वनने के लिए तैयार है। हमको इन पड़ोसी देशों के साथ व्यापारिक सम्वन्धों को बढ़ाने के लिए खास कदम उठाना चाहिए। पारस्परिक लाभ के लिए संयुक्त उद्योगों की स्थापना करने का प्रयत्न होना जरूरी है। आज प्रत्येक विकासशील राष्ट्र आर्थिक सहायता की अपेक्षा लाभप्रद व्यापार अधिक पसन्द करता है। हमारी विदेश नीति में भी, खास कर एशिया, अफ्रीका और दक्षिणी अमेरिका के देशों के साथ यही प्रणाली अपनानी चाहिए।

यह हम सभी के लिए वड़े दुःख का विषय है कि अच्छे इरादों के वावजूद हमारे सम्वन्ध दो महत्वपूर्ण पड़ोसियों अर्थात् पाकिस्तान और चीन के साथ मैत्रीपूर्ण नहीं हैं। और चिन्ता की वात तो यह है कि इन दोनों देशों ने हमसे घृणा करने के लिए और हमारे अस्तित्व तक को चुनौती देने के लिए सांठ-गांठ कर रखी है। जहाँ तक पाकिस्तान का सवाल है हम लोग ताशकन्द समझौते से पूर्णतया वचनवद्ध हैं और हमें उसे अक्षरशः तथा भावना के साथ अमल में लाते रहना चाहिये। स्वाभाविक है कि हम इसी प्रकार का वर्ताव पाकिस्तान से भी चाहेंगे, हालांकि इस वारे में अभी तक हमारा अनुभव वहुत निराशाजनक रहा है। भारत को वड़े अनुकरणीय धैर्य और शालीनता के साथ वर्ताव करना पड़ेगा। हाँ, पाकिस्तान तथा अन्य राष्ट्रों को यह वात जरूर समझ लेनी चाहिए कि व्यक्तियों की तरह राष्ट्रों में भी धैर्य की सीमाएं होती हैं।

कश्मीर के वारे में हमारा रुख उचित और प्रतिष्ठापूर्ण रहा है, हालांकि हमारे सार्वजनिक सम्पर्क संगठन ने इस वारे में प्रभावशाली कार्य नहीं किया है। हमें जम्मू और कश्मीर राज्य को ज्यादा से ज्यादा स्थानीय स्वाधीनता देने के लिए तैयार रहना चाहिये, लेकिन वह भारतीय संविधान की परिधि के अन्दर ही हो सकेगी। जनमत-संग्रह अथवा अलग होने के आधार पर इस विषय पर कोई आगे वातचीत नहीं की जा सकती।

चीन के सम्वन्ध में स्थिति सचमुच वहुत कठिन और जटिल है। हमने वार-वार कोलम्वो प्रस्ताव को पूरी तौरसे मानने तथा उन

आधारो पर भारत और चीन सीमा-विवाद का एक स्थायी समाधान निकालने के लिए बातचीत करने की तत्परता दिखाई है। लेकिन चीन का रुख नकारात्मक और अपमानजनक रहा है। फिर भी हमको इस स्पष्ट सत्य को समझ लेना है कि समय बीतने के साथ-साथ स्थिति सख्त और स्थाई बनती जा रही है। चीन द्वारा बलपूर्वक कब्जे में किया गया भारतीय क्षेत्र धीरे-धीरे विघटित और हजम किया जा रहा। इसलिए इस मामले को अनिश्चित काल तक खीचे रखना भारत के राष्ट्रीय हितो के अनुकूल नही है। मित्र-राष्ट्रो की सहायता से हमको ऐसी स्थिति पैदा करने की कोशिश करनी चाहिए जिससे कि यह समस्या सम्मान और शान्तिपूर्ण तरीके से हल हो सके। चीन की समस्या हल हो जाने पर पाकिस्तान के साथ मैत्रीपूर्ण समझौता करने मे भी सहायता मिलेगी।

आखिर, भारतको इतना मजबूत और सगठित राष्ट्र बन जाना चाहिए जिससे वह अन्यायपूर्ण आक्रमण के विरुद्ध दृढता से अपनी रक्षा कर सके। आधुनिक विश्व मे राष्ट्रीय प्रतिरक्षा और आर्थिक सपन्नता परस्पर सम्बन्धित हैं। एक का विकास दूसरे की उपेक्षा पर नही होना चाहिए। आर्थिक प्रगति प्राप्त करने के उद्देश्य से देश के भीतर कानून और व्यवस्था जारी रखने के लिए हम अहिं-सात्मक 'पीस-ब्रिग्रेडो' की रचना मे सक्रिय प्रोत्साहन दे सकते हैं। फिर भी हमको यह सत्य स्वीकार कर लेना होगा कि बाहरी खतरो के सामने फौजी तैयारी के अलावा हमारे पास अभी कोई दूसरा विकल्प मौजूद नही है। यद्यपि गाधीजी शान्ति और युद्धों को टालने के प्रबल समर्थक थे, लेकिन वे कोई 'पैसीफिस्ट' नही थे। इसलिए जहां तक अन्तर्राष्ट्रीय आक्रमण के विरुद्ध राष्ट्रीय प्रतिरक्षा का सवाल है, हमको हिंसा और अहिंसा के बारे मे जनता के दिमाग मे किसी प्रकार का भ्रम पैदा करने की कोशिश नही करनी चाहिए।

इतिशुभम्

मैं हमेशा आशावादी रहा हूँ। भारत के उज्जवल भविष्य मे मेरा अडिग विश्वास है। मुझे इस बात मे जरा भी सन्देह नही है कि अनेक बाधाओ के बावजूद आगामी वर्षो मे भारत सामाजिक

और आर्थिक प्रगति के मार्ग पर तेजी से आगे बढ़ेगा। तब तक हमको सतत प्रयत्नशील बने रहना चाहिए और अपने रास्ते को अपने आप ढूंढ़ निकालना चाहिए। कोई भी देश, चाहे वह कितना भी समृद्ध एवं शक्तिशाली क्यों न हो, हमको अपनी बुनियादी समस्याओं को हल करने का मार्गदर्शन नहीं दे सकता। हाँ, सभी लोगों के अनुभवों से हमें लाभ उठाने की कोशिश जरूर करनी चाहिए। लेकिन भारत को अपनी सच्ची संस्कृति को पुनः जागृत करना और जनता की शक्ति के प्रति विश्वास दृढ़ करना होगा।

यह परम आवश्यक है कि देश की निर्दलीय जनता की आवाज हिंसा, गैर-कानूनी हड़तालों व घेरावों के विरुद्ध संगठित की जाए। कुछ समय पहले बम्बई में इस प्रकार की अशान्ति व अव्यवस्था के विरुद्ध हजारों लोगों ने एक शान्त जुलूस निकाला था। इस प्रकार के संयोजन देश के विभिन्न भागों में हजारों की संख्या मे किए जाने चाहियें। आम जनता राजनीतिक दलों की इन हिंसात्मक और विध्वंसक हरकतों से ऊब गई है। इसलिए यह जरूरी है कि उस बड़ी जमात की आवाज ऊंचे स्वर से उठाई जाए जो अपना जीवन शान्ति से बिताना चाहती है और आर्थिक उत्थान के लिए धीरज से काम करते रहना पसन्द करती है।

हमें यह भी अच्छी तरह समझ लेना है कि केवल भौतिक समृद्धि और धन की आकांक्षा से हम एक अंधी गली में जा पहुचेंगे। आधुनिक औद्योगिक व्यवस्था ने कुछ इनेगिने विशाल व्यापारी-संगठनों को जन्म दिया है जो शासन को भी अपने अधीन करने का प्रयत्न करते हैं और उसे विशेषज्ञों, संयजकों और तकनीकियों, जिन्हें प्रो० गालब्रैथ ने 'टैक्नो-स्ट्रक्चर' की संज्ञा दी है, की गोद में ढकेल देते हैं। इस अमरीकी अर्थशास्त्री ने सिफारिश की है कि इस औद्योगिक पद्धति के खतरों से बचने के लिए हमें कुछ 'नये लक्ष्यों को अधिक महत्त्व देना चाहिए, ताकि यह औद्योगिक राज्य समाज के विशाल हितों का भी संरक्षण कर सके,* यह स्पष्ट है कि यह नवीन 'लक्ष्य' मानवीय और आध्यात्मिक ही हो सकते हैं जो गांधीजी के आदर्शों व कार्यक्रमों के अनुरूप हैं।

---

* दि न्यू इंडस्ट्रियल स्टेट, (१९६७), लेखक–प्रो० गालब्रैथ, पृष्ठ ३९९।

अन्ततः, हमारे दिमागों में यह सौ-फीसदी स्पष्ट हो जाना चाहिए कि बापू के सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों को अपनाए बिना *लोकशाही और समाजवाद दोनों ही विकसित नहीं हो सकेंगे।* अशुद्ध साधनों के प्रयोग द्वारा हम न भारत में और न कहीं और एक सुशील, शान्तिमय और समृद्ध समाज की स्थापना कर सकेंगे। जैसा गांधीजी ने कहा था, "सदाचार का मार्ग भले लम्बा, बहुत लम्बा प्रतीत हो, किन्तु अन्त में वही सबसे छोटा और सरल साबित होगा।"×

मेरे विचार से गांधी-शताब्दी हम लोगों के लिए ईश्वर द्वारा भेजा गया एक बड़ा सुअवसर है। यदि हम उन आदर्शों के प्रति, जिन्हें हमारे राष्ट्रपिता जीवन भर अपनाते रहे, आस्था पुनः जागृत करें और बापू के स्वप्नों के भारत का निर्माण फिर आत्म-विश्वास से करने की कोशिश करें, तो निस्सन्देह हम निराशा और उदासीनता के वर्तमान वातावरण को आशा और उत्साह के नव-प्रभात में बदलने में सफल हो सकेंगे।

× सिलेक्शन्स फ्राम गांधी, लेखक–निर्मलकुमार बोस, नवजीवन, पृष्ठ ३५।

गांधीजी के सिद्धान्त : उनका शाश्वत मूल्य

श्री फखरुद्दीन अली अहमद

गांधी जी का नाम सत्य और न्याय का प्रतीक है और इस रुप में इसने संसार के लाखों पीड़ित एवं शोषित मनुष्यों को प्रेरणा दी तथा उनके हृदय में स्वतंत्रता की ज्योति जगाई। इस संसार को मानव-मात्र के लिए सुखद एवं सुन्दर स्थान बनाने के लिए गांधी जी ने अपना सब कुछ अर्पण कर दिया; कठोर परिश्रम किया और अपना जीवन तक होम कर दिया। उनकी जन्म शताब्दी के पुण्य अवसर पर इस सब का स्मरण करके संसार श्रद्धा से नत मस्तक हुए बिना नहीं रह सकता।

यदि हम चाहते हैं कि संसार नष्ट न हो, मानव जीवन का इस धरती से लोप न हो तो हमें विनाशकारी कार्यों से सदैव बचते

रहना चाहिये। गाधी जी की शिक्षा मानव मात्र की प्रगति के लिए आवश्यक है। उन जैसे महापुरुषो की चेतावनी को कभी अनदेखा नही किया जा सकता।

गांधीजी का दर्शन देश एव काल की सीमाग्रो से मुक्त है। उनके सिद्धान्तो का महत्व सार्वभौम है, उनका मूल्य शाश्वत है। अहिंसात्मक प्रयोग की उपयोगिता आज भी उतनी ही है जितनी गाधीजी के समय मे थी। वरन् मेरा तो विश्वास है कि आने वाले वर्षों में यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जायगी कि शान्तिपूर्ण परिवर्तन के लिए इसके अतिरिक्त कोई और मार्ग है ही नही।

सीधे शब्दो में कहे तो कह सकते हैं अहिंसा का अर्थ है प्रेम। हिंसा का अर्थ है घृणा। हिंसा से ससार की कोई समस्या नही सुलझ सकती और न ही ससार मे शान्ति स्थापित हो सकती है। यदि यह बात ठीक न होती तो पहले विश्व-युद्ध के बाद ही ससार में स्थाई शान्ति स्थापित हो जाती। पर क्या शान्ति स्थापित हुई? उत्तर है, नही। शान्ति के बदले आया दूसरा विश्व-युद्ध चलिये। बताइये क्या इसके बाद भी शान्ति का युग आया? नही, बिल्कुल नही? हिंसा चीज ही ऐसी है कि हिंसा के एक कार्य के बाद दूसरा हिंसात्मक कार्य आता है। प्रत्येक युद्ध अपने से पहले वाले युद्ध से कही अधिक विकराल और विनाशकारी सिद्ध हुआ है। और यदि एक और युद्ध हुआ तो वह इन सबसे बढ चढ़ कर सर्वनाशकारी होगा। ससार चाहे तो शान्ति स्थापित हो सकती है, यह तो ठीक ही है पर इसके लिए एक ही मार्ग खुला है और वह है अहिंसा का मार्ग। यदि ससार समय से न चेता और अगला युद्ध हुआ तो अणु-शस्त्रो के विकास के कारण इतिहास-वर्णित सभी पुराने युद्धो से वह कही अधिक भयकर एव विनाशकारी होगा।

जिस प्रकार भोजन बनाने के लिए पहले कोयले या लकडी का प्रयोग किया जाता था, पर उसके लिए आज हम बिजली का उपयोग करते हैं। इस प्रकार अहिंसा कोई ऐसा साधन नही है कि गांधीजी से पहले जो कुछ हिंसा द्वारा प्राप्त किया जाता था उसे अब अहिंसा द्वारा प्राप्त कर सकते हैं। इसमे तो सदेह नहीं कि किसी भी बुराई का सामना करने के लिए गाधीजी ने सत्य और प्रेम के प्रयोग पर ही बल दिया है, पर सत्य और प्रेम बाजार

में तो विकते नहीं । जिस प्रकार हम वन्दूक या पिस्तौल खरीद लेते हैं उस प्रकार सत्य और प्रेम तो खरीदे नहीं जा सकते । ईश्वर के प्रति सच्ची निष्ठा रखने वाला ही उन्हें प्राप्त कर सकता है ।

इस प्रकार का दृष्टिकोण तभी प्राप्त किया जा सकता है जब हम ईश्वर के पितृत्व और मानव मात्र के भ्रातृत्व के सिद्धान्त को भली प्रकार हृदयंगम करलें ।

> मेरे लिए ईश्वर सत्य एवं प्रेम का ही दूसरा
> नाम है, ईश्वर ही नीति तथा नैतिकता है,
> ईश्वर ही निडरता है; प्रकाश एवं जीवन का
> स्रोत भी ईश्वर ही है, पर उसकी सत्ता इन
> सबसे परे है ।'

ईश्वर के सम्बन्ध में गांधीजी ने ऐसे विचारों का प्रतिपादन किया है ।

गांधीजी की एक दूसरी वड़ी देन है भारतीय समाज में मनुष्य की मर्यादा के सिद्धान्त को लागू करना । अपने ही देशवासियों के एक वड़े समूह के साथ हमने सदियों तक पशुओं से भी वदतर व्यवहार किया है ; उन्हें साधारण अधिकारों से भी वंचित रखा है । भारतीय समाज के इस कलंक को मिटाने के लिए गांधीजी से अधिक कार्य किसी और ने नहीं किया । गांधीजी ने सवर्ण हिन्दुओं के हृदयों में जो जागृति जगाई थी उसी का परिणाम है कि आज हमारा संविधान गर्व के साथ अस्पृश्यता–उन्मूलन की घोषणा करता है । छोटे से छोटा कार्य करने में भी किसी प्रकार का लज्जा-भाव अनुभव नहीं करना चाहिए, इस तथ्य को सिद्ध करने के लिए गांधीजी हर प्रकार का परिश्रम स्वयं किया करते थे ।

इतिहास क्या फैसला करता है इस की कल्पना नहीं की जा सकती और न ही इस अन्तिम निर्णय के विरूद्ध कोई अपील ही की जा सकती है । परन्तु मुझे पूर्ण विश्वास है कि जिन लोगों को गांधी जी के निकट सम्पर्क में आने, उन्हें जानने और उनके साथ कार्य करने का अवसर मिला, केवल उन्हीं के हृदय में गांधीजी विद्यमान नहीं रहेंगें, वरन् आने वाली उन सभी पीढ़ियों के हृदय में उन का स्थान सुरक्षित रहेगा जो उनका नाम केवल इतिहास के पन्नों पर ही पढ़ेगें और देखेगें कि एक ऐसा भी मनुष्य इस धरती पर आया था जिसकी शिक्षाओं ने मनुष्य के हृदय में ऊँचे लक्ष्यों की ओर वढ़ने की प्रेरणा भर दी थी, जिसने जीवन-स्तर को ऊँचा उठाकर मानव-जाति को शान्ति और विश्व-वन्धुत्व की मंजिल तक पहुँचाया था।

गाँधीवाद

बनाम

सत्यवाद

डा० कन्हैयालाल सहल

गांधीजी पहले यह कहा करते थे कि ईश्वर ही सत्य है किन्तु जो लोग ईश्वर में विश्वास नही करते, वे ईश्वर रूप किसी भी सत्य को मानने के लिए तैयार न होगे किन्तु यदि सत्य ही ईश्वर है तो सत्यरूप ईश्वर को नकारने के लिए आस्तिक नास्तिक कोई भी तैयार नही होगे। सम्भवत. इसीलिए आगे चल कर गाधीजी ने कहना शुरू कर दिया था "सत्य ही ईश्वर है।" सत्य की ईश्वर के रूप मे कल्पना हमारे देश के लिये कोई नई बात नही थी। जैन ग्र थो और वाल्मीकि रामायण मे स्पष्ट ही कहा गया है।

१. सच्च भगव, लोगम्मि सारभूय।

अर्थात् लोक में सारभूत सत्य ही भगवान् है।

२. सत्यमेवेश्वरो लोके धर्मः सत्ये सदाश्रितः ।

अर्थात् इस संसार में सत्य ही ईश्वर है और धर्म सत्य पर ही आश्रित रहता है। सत्यनारायण की कथा में भी सत्य की नारायण के रूप में कल्पना हुई है ।

फिर भी यह समस्या तो सामने आयेगी ही कि एक व्यक्ति जिसे सत्य समझता है, हो सकता है, दूसरे व्यक्ति की दृष्टि में वह सत्य न हो। स्टीवेन्सन ने तो यहां तक कहा था, "हमारे सभी सत्य अर्ध सत्य हैं, निरपेक्ष सत्य जैसी कोई वस्तु संसार में नहीं है।"

गांधी जी ने इस समस्या का समाधान यह कर किया कि जिसके मूल में प्रेम अथवा अहिंसा नहीं है, उसे सत्य नहीं कहा जा सकता अर्थात् सत्य सदा अहिंसाश्रित या प्रेमाश्रित होता है। इसीलिए साधन और साध्य का प्रश्न भी महत्वपूर्ण वन जाता है। अनुचित साधनों से यदि स्वराज्य प्राप्ति होती हो तो गांधीजी ऐसे स्वराज्य के पक्ष में नहीं थे। यह तो सभी जानते हैं कि चौरी-चौरा के हत्याकांड के वाद उन्होंने अपना असहयोग आन्दोलन वापिस ले लिया था। इसलिए गांधीजी की दृष्टि में साध्य की पवित्रता के साथ-साथ साधनों का भी पवित्र होना आवश्यक था। वहुत से नेताओं की दृष्टि में अहिंसा एक अवसरवादी नीति मात्र थी किन्तु गांधी जी का दृष्टिकोण इससे सर्वथा भिन्न था। वे अहिंसा को अपना धर्म समझते थे और अहिंसक साधनों द्वारा ही स्वराज्य प्राप्ति में विश्वास करते थे ।

यह सच है कि गांधी जी गांधीवाद जैसे वाद को मानने के पक्ष में न थे, तथा गांधी सिद्धांतों से संवद्ध जो त्रैमासिक पत्रिका इन दिनों निकल रही है, उसका नाम संभवतः इसी कारण 'गांधीवाद' न रख कर 'गांधी-मार्ग' रखा गया। फिर भी 'गाधीवाद' शब्द आज वहु-प्रचलित हो गया है और जो शब्द इस प्रकार दुनियाँ के वहुत से मनीषियों द्वारा वड़े पैमाने पर प्रयुक्त होने लगा है, उसके प्रचलन को किसी प्रकार रोका नहीं जा सकता। गांधी-मार्ग' योग के अष्टाँगिक मार्ग की तरह प्रचलित होने वाला शब्द नहीं है। गांधी-मार्ग और गांधी-मार्गी की अपेक्षा आज 'गांधीवाद' और 'गांधीवादी' इन दो शब्दों का ही धड़ल्ले से प्रयोग हो रहा है।

गाधीवाद को किसी सम्प्रदाय के रूप में न लेकर यदि उक्त व्युत्पत्तिलभ्य शब्द पर दृष्टि रखें तो हम कह सकते हैं कि गाधी जी द्वारा कथित और प्रतिपादित सिद्धातो को ही 'गाधीवाद' की अभिधा से विभूषित किया जाना चाहिए। इस वाद की एक प्रमुख विशेषता यह भी है कि गाधीजी ने जो कहा, उसे उन्होने अपने जीवन में आचरित करने का भी यथासाध्य प्रयत्न किया। इस प्रकार गाधी वाद केवल वैचारिक दर्शन ही नही, उसे प्रयोग की प्रतिष्ठा भी प्राप्त है। गाधीजी की विचार-धारा टालस्टाय और रस्किन आदि से प्रभावित है। किन्तु दोनो विचारक गाधी जी की भाति अपनी चिन्तन-धारा को कार्य का रूप नही दे सके थे।

गांधीजी जो कहते थे, वही करते थे। इसीलिए उनकी वाणी में बड़ी प्रभविष्णुता थी। उनकी वाणी के मन्दिर में कर्म सदा झंकृत होता रहता था। जिस वाणी के पीछे तदनुरूप कर्म नही रहता, वह वाणी छिछली, खोखली और अर्थशून्य होती है। वाणी और कर्म के पारस्परिक सयोजन से ही वस्तुत, गिरा अर्थवती होती है। बापू के व्यक्तित्व मे गिरा अर्थ से और अर्थ गिरा से समलंकृत रहता था। कवि के शब्दो मे—

> गाधी-वाणी के मन्दिर मे, सत्य स्वय मुखरित होता था।
> अखिल विश्व की गिरा-वल्लकी का स्वर तब झंकृत होता था।
> भर जाती थी जल-थल-नभ मे, शब्द-ब्रह्म-सी गूंज उसी की।
> कुछ खोया-खोया-सा लगता, ऐसी स्वर-लहरी न किसी की।

गाधीवाद को यदि सत्यवाद और गाधीजी को 'सत्य पुरुष' की अभिधा से विभूषित किया जाए तो कुछ अनुचित न होगा। गाधीजी ने अपनी आत्मकथा को भी 'सत्य के प्रयोग' का ही नाम दिया था। हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि श्री सुमित्रानन्दन पंत ने गाधीजी को लक्ष्य में रखकर यथार्थ ही कहा है .

> "सुख भोग खोजने आते सब
> तुम आए करने सत्य खोज"

सासारिक लोग सुखान्वेषी होते हैं किन्तु गाधीजी ने भौतिक सुखो की खोज न कर सत्य का ही अन्वेषण किया। यहा पर यह भी समझ लेना चाहिए कि सत्य और भौतिक सुखो मे कोई अनिवार्य सवन्ध नही है वल्कि देखा तो यही जाता है कि सत्यान्वेषी को अनेक

कठिनाइयों और विपत्तियों का सामना करना पड़ता है तथा उसे भौतिक सुख प्राप्त नहीं होते ।

यहाँ यह प्रश्न भी उठे बिना नहीं रहता कि सत्य आखिर क्या वस्तु है । अढ़ाई अक्षरों का यह छोटा-सा शब्द बड़ा दुरूह है और आसानी से पकड़ में नहीं आता । महाकवि जयशंकर प्रसाद कह गए हैं—

और सत्य, यह एक शब्द तू कितना गहन हुआ है ।
मेधा के क्रीड़ा पंजर का पाला हुआ सुआ है ।
सब बातों में खोज तुम्हारी रट-सी लगी हुई है ।
किन्तु स्पर्श से तर्क करों के होता छुई मुई है ।

जिसे जैसा देखा सुना हो, उसे वैसा ही कह देना सत्य कहलाता है, इस प्रकार की सर्व सामान्य परिभाषायें कभी-कभी हम इस शब्द की दिया करते हैं । किन्तु सत्य शब्द का सच्चा अर्थ तो किसी हरिश्चन्द्र, युधिष्ठिर अथवा गांधी जैसे सत्यान्वेषक को ही अनुभूत होता है । सत्य वस्तुत: तर्क द्वारा उपलब्ध वस्तु नहीं है, जीवन में आचरित होने पर ही साधक को सत्य अपना दर्शन देता है । मात्र तर्क के करों से तो, कवि के शब्द में, वह छुई मुई हो जाता है । गांधी जी के लिए यह प्रसिद्ध है कि जब वे प्रश्नों का उत्तर देते थे तो उनके उत्तर किताबी नहीं होते थे । उनके उत्तर अनुभूत सत्य से उद्भूत होते थे । तर्क उनके सत्य का अनुयायी था, न कि सत्य तर्क का अनुचर था । इसका अर्थ यह नहीं है कि वे हेतुवादी अथवा बुद्धिवादी नहीं थे । उन्होंने स्वयं कहा था "श्रद्धा तर्क का अतिक्रमण करती है किन्तु इसका यह अर्थ न समझा जाए कि तर्क और श्रद्धा अनिवार्य रूप से दो विरोधी तत्व हैं ।"

शांतिदूत गाँधी

बेलेरियन कार्डिनल ग्रेसियेस

कई वर्ष पहले, स्वतन्त्रता के फौरन बाद, मुझे जिन्ना हाल में गांधी जी के जन्म दिवस पर बोलने का सुअवसर मिला था। इस अवसर पर गाधीजी को जो श्रद्धाजलि अर्पित की गई उसमे कहा गया था-—

गाधी जी उन विरले मनुष्यो मे थे, जिनके दिल और दिमाग ने सारे ससार मे विचारो के मूलाधार को प्रभावित किया है। उनकी उपलब्धियो और उनके चरित्र की ईमानदारी के प्रति श्रद्धा हमारी सभ्यता के आत्म-सम्मान के आवश्यक अंग है।

हमारी शताब्दी के इतिहास मे गाधीजी की भूमिका का सम्मान और उसको सराहना करने वाले लोगो की संख्या निरन्तर बढती रही है। ससार मे बहुत थोडे आदमियो का अपने ही जीवन

काल में इतना व्यापक प्रभाव पड़ा जितना गाँधी जी का। मृत्यु के बाद तो और भी कम व्यक्ति मानव विचारधारा को उस सीमा तक प्रभावित कर सके हैं, जिस सीमा तक गाँधी जी ने किया। हिंसापूर्ण संसार को उन्होंने अहिंसा का उपदेश देने का साहस किया; ऐसे युग में जब लोग टेक्नालॉजी और भौतिक सुखों के पीछे पागल हैं, उन्होंने व्यक्तिगत आचरण से आध्यामिकता की सर्वोपरिता का उद्घोष किया; राजनीतिक षडयंत्रों और कुटिलता के क्षेत्र में उन्होंने निर्भयता से सरल जीवन और ईमानदारी का संदेश प्रचारित किया।

अपनी ऐतिहासिक बम्बई यात्रा के समय पोप पॉल ने गांधी जी को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा था कि उनका दिव्य चरित्र और शांति प्रेम सर्वविदित है।

महात्मा गाँधी राष्ट्रपिता थे। आज हर सच्चा व्यक्ति यह अनुभव करता है कि देश को गांधी जी की आवश्यकता है। आज चारों ओर व्याप्त संघर्ष और झगड़े उस स्वतन्त्रता के लिए खतरा बने हैं जिसके लिए उन्होंने इतना परिश्रम किया था। आज अनुशासनहीनता और हिंसा का अंधाधुंध प्रयोग उस नींव को ही हिला रहा है जिस पर गांधी जी नए भारत का निर्माण करना चाहते थे। आज असहिष्णुता और संकीर्ण क्षेत्रीयवाद का नासूर धर्म निरपेक्ष राज्य के उस स्वरूप को नष्ट कर रहा है, जिसके लिए उन्होंने अपने प्राणों की बलि दी थी।

गांधी जी एक शांतदूत थे। वे न केवल शान्तिप्रेमी थे, वरन् शांतिसृष्टा थे और उन्होंने सभी क्षेत्रों के विरोध और उदासीनता के बावजूद यह भमिका निभाई।

शांतिदूत का कार्य कठिन होता है, यह जरूरी है कि शांति प्रेमी के दिल और दिमाग में शांति के बीज हों। शांति के फूल तब तक नहीं खिल सकते, जब तक शांति के बीज न बोए जाएँ। ऐसा दृष्टिकोण तब तक संभव नहीं है, जब तक विश्वबन्धुत्व और भगवान् में अखड विश्वास के भाव प्रबल न हों।

मनुष्य बुनियादी रूप से शांतिप्रेमी है। शांति स्थापना के लिए रात दिन सम्मेलन, वार्ता, राजनयिक बातचीत होती रहती है। लेकिन शाँतिदूत का कार्य मनुष्य की हृदतंत्री में विद्यमान शांति के तन्तुओं को छू लेना है। महात्मा जी अपने भाषणों, प्रार्थना सभाओं

श्रौर व्यक्तिगत श्राचरण से श्राजीवन इस काय को करते रहे। उनके जमाने मे शाति की स्थापना का कार्य दुष्कर था, किन्तु उन्होने इस के लिए कर्म श्रौर ईश्वर में विश्वास के साथ अथक परिश्रम किया।

महात्मा जी ने यह अनुभव किया था कि बिना दृढ धार्मिक निष्ठा के शाति सभव नही है।

देश की वर्तमान समस्याश्रो के अनेक हल सुझाए जाते हैं। क्या यह ठीक न होगा कि इस अवसर पर हम गांधीजी के विचारों से प्रेरणा ग्रहण करें। महात्मा जी से हम सहिष्णुता का पाठ सीख सकते है। उन्होने गुरुदेव से कहा था -

"मैं नही चाहता कि मेरा घर चारो श्रोर दीवारो से घिरा रहे। न मैं अपनी खिडकियो को ही कसकर बद रखना चाहता हू। मैं तो सभी देशो की सस्कृति का अपने घर मे बे-रोक-टोक सचार चाहता हूं। पर ऐसी सस्कृति के किसी झकोरे मे मेरे पाँव उखड जाय-यह मुझे मंजूर नही। ईश्वर के रचे नन्हे से नन्हें जीव के लिए इसमें जगह है। लेकिन जाति, धर्म या वर्ण का दम्भ उसे छू नही सकता।"

महात्मा जी का रास्ता अपनाकर हम नैतिक मूल्यो की गिरावट को रोक सकते हैं श्रौर आध्यात्मिक मूल्यों को पुनर्स्थापित कर सकते हैं। उन्होने इन मूल्यो की स्थापना के लिए कार्य किया था और इन्हो के लिए अपना जोवन उत्सर्ग किया। उनको इससे अच्छी कोई श्रद्धांजलि नही दी जा सकती कि हम उनके जीवन से प्रेरणा लेते रहें श्रौर उनके बताए रास्ते पर चलते रहे।

कु० सोहन माथुर

गाँधीजी का अहिंसावादी सिद्धान्त व वर्तमान निशस्त्रीकरण

स जातो येन जातेन याति वंश समुन्नातिम् ।
परिवर्तनि संसारे मृतो को वा न जायते ।।

वास्तव में गांधीजी जैसे महापुरुष अपनी पञ्चभूत-निर्मित भौतिक काया को त्याग कर भी यशतनु द्वारा कीर्ति पताका स्थापित कर संसार से प्रस्थान कर जाते हैं । हम उन्हें उनके क्रिया-कलापों व कृतियों के लिए याद करते हैं ।

वस्तुतः आज मानव मानव के रक्त का पिपासु हो उठा है । हिरोशिमा व नागासाकी पर की गई बमवारी अमानवीयता की द्योतक

है। मानव पाशविक वर्बरता में रुचि ले रहा है, उसने 'वसुधैव कुटुम्बकम्' को भुला दिया है। ऐसी विकट स्थिति में रक्तपात को अवरुद्ध करने तथा निशस्त्रीकरण के प्रचार मे सहायक तथ्य कोई है तो वह गाधीजी का अहिंसावाद है, जो शान्तिपूर्ण शमन में सफल सिद्ध होने का एक मात्र उपाय है। विश्व के इतिहास की अनेक महत्वपूर्ण घटनायें साक्षी हैं कि जो कार्य गरम दल नही कर सका, उसे नरम दिल ने पूर्ण कर दिखाया। यदि दमन में हिंसात्मक विधियो का प्रयोग किया जाय तो विद्रोह की अग्नि प्रज्वलित हो उठती है तथा तत्सम्बन्धी दुष्परिणाम दृष्टिगत होते हैं। किन्तु हमारे युग-पुरुष महात्मा गाधी तो ऋषि थे, उन्होने शान्तिपूर्ण नीति से स्वतंत्रता प्राप्त कर यह पुष्ट कर दिया कि 'अहिंसा परमो धर्म' केवल सैद्धान्तिक वाक्य हो नही है वरन् उसका व्यावहारिक प्रयोग भी सम्भव है।

शस्त्रीकरण की नीति से होने वाली प्राण हानि तथा जन हानि का अनुमान प्रत्येक बुद्धिमान व्यक्ति लगाने मे समर्थ है। अत: आज आवश्यकता है ऐसे उपाय की, जो ध्वन्सात्मक न होकर रचनात्मक हो, जिसमे नाश की नही, सृजन की भावना हो। यह तब ही सम्भव है, जब हम पिछले इतिहास की क्रूर घटनाओं पर निष्पक्ष दृष्टिपात करें, युग की आवाज व समय की पुकार को सुनें तथा निशशस्त्रीकरण के महत्व का अवलोकन करें। शान्ति स्थापित करने की गांधीजी की अहिंसात्मक नीति इसकी दर्पण व मार्ग प्रदर्शिका थी। जो काम शस्त्र से सम्पादित नहीं हो सकता, वह शास्त्र से हो सकता है। शक्ति स्रोतो की सु-उपयोगिता की यह चरम सीमा है।

मनुष्य भौतिकवादी विचारों का थोडा-सा दमन कर यदि आदर्श की ओर प्रस्थान करे तो ज्ञात होता है कि भौतिक-विजय से अधिक प्रबल-पक्ष मानसिक विजय का है, जो सच्ची विजय है। इसका यह अर्थ नहीं कि हम कल्पना के चक्कर मे यथार्थ को भुला बैठें, अपितु यह तो हमारे भातृत्वभाव की वृद्धि की परिचायक बिन्दु है, जिसकी कसौटी पूर्णतः मानव के नैतिक विकास पर निर्भर है। हम नैतिक विकास के क्षेत्र में दिनोदिन अधः पतन की ओर जा रहे हैं। हमने स्वयं को भुला दिया है। आज भावो के अस्तित्व को पहचानने की शक्ति लुप्त हो गई है। निस्वार्थता तो अतीत की

कपोल-कल्पना मात्र वन गई है, जिसे भविष्य छोड़ वर्तमान में भी स्थान प्राप्त नहीं है। शेष रही है तो वह है प्रतिस्पृहा की भावना, जिसमें वहकर व्यक्ति समाज और समस्त संसार के अस्तित्व से विमुख हो रहा है।

युद्ध में अधिकतर सैनिकों को नष्ट कर अथवा वमवारी कर आज मानव अपनी इस मिथ्याविजय पर अट्टहास करता है। वह विस्मृत कर देता है कि उसके निमित भी ऐसी विनाशकारी परिस्थितियां विद्यमान हैं। किसी के प्राणों का हनन करना उसे 'सम्पूर्ण' रूप में मारना नहीं हैं, क्योंकि स्वयं गाँधीजी भी 'श्रीमद्भगवद्गीता' के शब्दों में अटूट विश्वास रखते थे कि जिस प्रकार शरीर पुराने कपड़े छोड़कर नये पहनता है, उसी प्रकार हमारी चिरन्तन आत्मायें भी प्राचीन नश्वर देह रूपी परिधान का त्याग कर पुनः नवीन शरीर रूपी चीर को धारण करती हैं। हमारी महानता 'मरो और मारो में नहीं, वरन् जीओ और जीने दो, में है। सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् भी इसके सिद्धकर्ता हैं। शिवम् अर्थात् कल्याण की भावना इसी नींव पर टिकी है।

हम एक ही धरिणी-जननी के पुत्र-पुत्रियां हैं, फिर हमें भौतिक अन्धापन क्यों घेर लेता है, क्या यह धरती-माता के प्रति अन्याय नहीं ? क्योंकि,

मां की ममता ए मानव ! मत धन से आंको ।
खोल नयन उसके-अन्तर्तम में झांको ।।

हम सब क्यों न एक स्वर से प्रसन्नतापूर्वक अहिंसा व निश्शस्त्रीकरण का स्वागत कर सम्पूर्ण जगत् में शान्ति व स्नेह का आह्वान करें ?

तुच्छ मनोवृतियों में तो संकीर्णता मात्र है, अतः उनका परित्याग कर व्यापक मनोमस्तिष्क धारी हो जायें। मानव जन्म को धन्य करना है तो पशु प्रवृति का त्याग नितान्त अपेक्षित है। अन्ततोगत्वा विवेचन का निष्कर्ष यही है कि गाँधी शताब्दी पर यदि हम कलियुग के ऋषि, भ्रातृत्व के प्रवर्तक युग-पुरुष महात्मा गाँधी व उनके महान् एवम् अतुलनीय उत्सर्ग को सच्ची व शत-शत श्रद्धाञ्जलियाँ अर्पित करना चाहते हैं तो हृदय में निश्शस्त्रीकरण के विश्वास की शपथ उठायें।

गांधीजी का मानव धर्म

चन्द्रभान शर्मा

गांधी जी अपने आपको पूरे गर्व के साथ हिन्दू कहते थे । इस-लिये कि वे हिन्दू धर्म को मानते थे और निष्ठापूर्वक उसका पालन करते थे । हिन्दू धर्म में भी जिसे चुस्त वैष्णव सम्प्रदाय कहते हैं वे उसके मानने वाले थे और जो रूप उन्होंने समझा था, उसका नित्य जीवन में सच्चाई के साथ व्यवहार करने का प्रयास करते थे । उनके

वैष्णव धर्म का स्वरूप वह था जो श्री नरसी मेहता के भजन में सांगोपांग रूप में निहित है।

वैष्णव जन तो तेने कहिये, जे पीड़ पराई जाणे रे।
पर दु:खे उपकार करे तोये, मन अभिमान न आणे रे।।
सकल लोक मां सहुने वन्दे निन्दा न करे केनी रे।
वाच काछ मन निश्चल राखें धन-धन जननी तेनी रे।।
समदृष्टि ने तृष्णा त्यागी, पर स्त्री जे ने मात रे।
जिह्वा थकी असत्य न बोले, पर धन नव झाल हाथ रे।।
मोहे माया व्यापे नहि जेने, दृढ़ वैराग्य केना मन मां रे।
राम नामशुं ताली लागी, सकल तीरथ तेना तनदां रे।।
वण लोभी ने कपट रहित छै काम क्रोध निवार्या रे।
भणे नरसैयो तेनु दरसन करना कुल एकोतर तार्या रे।।

यह उनका अत्यधिक प्रिय भजन रहा और प्रायः नित्य ही वे इसका मनन अध्ययन तथा गान करते थे। कोई किसी भी नाम से कहे व समझे उक्त भजन में मानव के सम्पूर्ण विकास की विधि और नित्य आचरण की आदर्श संहिता का समावेश हो जाता है और जो भी इन्सान इसे हृदयङ्गम कर ले और जीवन के हर व्यवहार एवं क्रिया-प्रक्रिया में निहित आदेशों व आदर्शों का परिचय देने लगे तो संसार के किसी भी धर्मावलम्बी तथा मतावलम्बी के लिये वह द्वेष, घृणा या असम्मान का पात्र नहीं रह जाता और उसी प्रकार उसके लिये सर्व धर्म समभाव तथा मनुष्य मात्र के प्रति भाईचारे का आचरण सहज स्वाभाविक बन जाता है। इस प्रकार इस धर्म और आचार संहिता को लोकप्रिय, कल्याणप्रद, सर्वोदयी तथा विश्व-धर्म का पद प्राप्त होता है। इसे जो जीवन में उतार ले वह किससे वैर करे, किसकी निन्दा करे और किसके प्रति न्यूनाधिक का भाव व भेद रख कर चले। मनुष्य को मानव बनाने और अन्ततोगत्वा मोक्ष व निर्वाण पद प्राप्ति जो धर्म का सर्वोपरि प्रयोजन कहा जा सकता है, सरलता पूर्वक इसके द्वारा साध्य बनती है। मानव मात्र को यहाँ तक पहुँचाने में जिस धर्म में क्षमता व सामर्थ्य हो उसे ही धर्म की पदवी दी जा सकती है और वह केवल एक ही यह "मानव धर्म" है जिसे गांधीजी ने और सभी महान् मनस्वियों ने अपना कर अपना जीवन सफल बनाया और उसके प्रचार व प्रसार के द्वारा लोक-हित व कल्याण का महान कार्य करने में सफल हुये। धर्म के नाम पर

ससार में जो जो अत्याचार, खून-खच्चर तथा मनमानियो का घृणित एव नृशंसकारी इतिहास बना वह सब उक्त 'मानव-धर्म' को न समझने व न अपनाने का ही परिणाम कहा जा सकता है। जो लोग धर्म नाम से ही डरने-घबराने, चिढने व घृणा करने लगे हैं और परिणाम स्वरूप आज जो धर्महीन जीवन व्यापक बनता जा रहा है उसके पीछे एक मात्र कारण है उक्त 'मानव धर्म' के ज्ञान और आचरण का अभाव। धर्म-निरपेक्षता का अर्थ भी लोग धर्म हीनता ही करने लगे है और आज की जो अनेकों समस्यायें, मुख्यत हमारे राष्ट्र व समाज के सामने उपस्थित हुई हैं उनकी जड मे धर्महीनता ही एक मात्र बडा कारण है। धार्मिक जीवन परम्पराओ, मर्यादाओं तथा चरित्र एव आचरण सहिता के पालन के सम्पूर्ण अभाव मे जो घातक परिणाम आने चाहिये थे वे सर्व-व्यापी बने हैं। मिलावट, भ्रष्टाचार, घूस-खोरी और सभी प्रकार के अनैतिक तथा राष्ट्र-द्रोही व्यवहार के पीछे क्या है? सब से बडा रोग तो यह है कि रोग का पता चल जाये, उसके सही कारण व उपचार का भी पता चल जाए परन्तु फिर भी उस ओर अग्रसर होने के रुचि व प्रयास का न होना। हमारे साथ यही हुआ है। और इस प्रकार यदि यह रोग असाध्य बन जाय तो क्या आश्चर्य की बात है?

धर्म की बात करना उसका वास्तविक स्वरूप समझने, समझाने का प्रयास, धर्ममय जीवन बनाने और धार्मिकता के मार्ग में बने बाधक तत्वो के निरोध व प्रतिकार की बात आज प्रगतिशीलता के विपरीत समझी जाती है। नयी पीढी के दिल-दिमाग से धार्मिक भावना का मूलोच्छेद तीव्र गति से हो रहा है। उनकी प्रगति, उन्नति एव विकास के लिये यही धर्म-हीनता का साधन ही उन्हें बताया व समझाया जा रहा है। कितनी घातक प्रक्रिया, कितने व्यापक व असरकारक रूप से चल रही है, और देश के नियन्ता साथ ही हमारे धर्म प्राण अनेको धर्म गुरुओ, साधु-सतो तथा विद्वानो का ध्यान भी इस ओर नही जा रहा है। और इस प्रकार सर्वनाश की भूमिका पूरी तीव्र गति से तैयार हो रही है। समय रहते यदि इसकी रोकथाम असरकारक रूप से न हुई तो निकट भविष्य के अनिष्टकारी, अन्धकारपूर्ण स्थिति व परिणामों का सहज अनुमान लगाया जा सकता है। इस परिस्थिति से हमारे अपने हिन्दू धर्मावलम्बी जितने

वेखवर तथा निष्क्रिय हैं उतने अन्य धर्मावलम्वी नहीं मालूम देते। हिन्दू धर्म, धार्मिक मूलभूत सिद्धान्तों तथा धर्म गुरुओं के प्रति कोई कितने ही निराधार व कड़े आक्षेप कर दे, उनकी शान व मान में कितनी ही घृणित अपमानजनक असम्मानयुक्त-भाषा का प्रयोग होता रहे और अधिकारी लोग भी अवांछनीय लांछन तथा कड़ी टीका करते रहें किसी को कुछ पड़ी नहीं है। विचित्र प्रकार की क्षमता व सहिष्णुता का परिचय दिया जा रहा है। यह भी सही है कि जो कुछ हिन्दू अर्थात् सर्वोपरि इस 'मानव धर्म' के प्रति कहा सुना जा रहा है उसका सहस्रांश भी यदि अन्य धर्म या धर्मावलम्वी के वारे में कह सुना दिया जाय तो जन-जीवन ही मुश्किल वना दिया जा सकता है। जिस मानव धर्म की गति उसके अपने उद्गम स्थान विशेष पर ही यह वनादी जाय तो उसके प्रवाह को क्या आशा रक्खी जा सकती है और इस प्रकार केवल इस देश का ही नहीं समस्त मानव जीवन के लौकिक तथा पारलौकिक कल्याण का मार्ग ही अवरुद्ध हो जाने का भय है। इसलिए समय रहते मुख्यतः देश के धर्म-प्राण धर्माचार्यों—वैसे सर्वसाधारण धर्म-निष्ठ देश-भक्तों सत्तारूढ़ नियन्ताओं तथा विचारशील जन-सेवकों के लिये भो परमावश्यक है कि वर्तमान अनिष्टकारी और सभी के लिए सभी दृष्टियों से घातक इस हवा और प्रवृत्ति का विरोध किया जाय और वास्तविकता एवं अनीश्वरवाद को व्यापक रूप देने का जो संगठित षडयंत्र एक वर्ग विशेष की ओर से सुनियोजित रूप से चल रहा है उसे रोका जाय और जड़मूल से समाप्त किया जाय।

अनेकों में इस प्रकार का भ्रम फैला है कि हिन्दुत्व या हिन्दू धर्म के संरक्षण की वात करना राष्ट्रीयता के विरुद्ध है—उसे साम्प्रदायिकता का रूप देने की कुचेष्टा भी की जाती है। परन्तु गांधीजी ने जिस धर्म को दृढ़ता के साथ निभाया और उसके वास्तविक स्वरूप को जीवन में उतार कर राष्ट्रीयता का अद्भुत विकास किया और सभी अन्य धर्मावलम्वी को साथ रखने और उनमें भाई चारे की भावना के साथ हिन्दू धर्म के प्रति आस्था और आकर्षण की स्थिति पैदा कर सके और उसे मानव-धर्म के रूप में पेश करके विश्वधर्म का पद-विशेप देने में सफल प्रयास कर सके उस धर्म के पालन, संरक्षण और प्रचार-प्रसार से न राष्ट्रीयता को क्षति पहुँचने का प्रश्न उठता,

न किसी अन्य धर्मावलम्वी को भावना को किसी प्रकार की ठेस पहुँचती है। बल्कि सभी धर्मावलवियो यानि धार्मिक भावना वालो को नजदीक लाने और अवास्तविक भेद-भाव मिटाने का यही एक सर्वोत्तम साधन बन सकता है।

जिस वैष्णवी भागवत धर्म को हमने मानव-धर्म का नाम दिया है उसका द्वेष रहित बुद्धि और दासानुदास भावना से सही दिशा में प्रचार व प्रसार किया गया तो हमारी अपनी अर्थात इस देश की और सारे विश्व की वे सब समस्याए जो नियन्ताओ के लिये आये दिन का सिर-दर्द बन गई हैं—उनका निरोध निराकरण साथ ही सरलता पूर्वक हल हो सकेगा। हिन्दू धर्म का जो वास्तविक स्वरूप है और जो शास्त्र-सम्मत भी है उसे सर्वसाधारण के सामने रखना होगा। रूढ़िया रस्म-रिवाज और शास्त्र प्रमाण वालो बातो को अलग रख-कर चलना होगा।

मेरा यह विश्वास है कि दुनिया के समस्त महान धर्म लगभग सच्चे हैं। 'लगभग' मैं इसलिए कहता हूँ कि मेरा ऐसा विश्वास है कि मनुष्य का हाथ जिस किसी वस्तु को छूता है वह अपूर्ण हो जाती है, इसका कारण यह सत्य है कि मनुष्य स्वयं अपूर्ण है।

—यंग इन्डिया

२२-६-२७

श्रीमती ऊषा वर्मा

भारतीय संस्कृति और राजनीति को गांधीजी की देन

गांधीजी जीवन के कलाकार थे। सम्पूर्ण जीवन पर उनकी क्रांतिकारी दृष्टि पड़ी थी और उन्होंने सभी क्षेत्रों में नवीन उद्भावनाएं प्रस्तुत कीं। उनके व्यक्तित्व को इसी कारण अनेक पक्ष हमारे सम्मुख उभर कर आते हैं। राजनीतिज्ञ, समाज शास्त्री, शिक्षा शास्त्री, अर्थ शास्त्री, दार्शनिक एवं प्राकृतिक चिकित्सक के रूप में

हम उनका अध्ययन करते हैं। जीवन का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जो उनकी सम्यक् दृष्टि से बच गया हो। उन्होने तो सम्पूर्ण मानव जीवन के लिए कार्य किया, उसके अलग-अलग पक्षो को अलग-अलग खानो में रखने के वे पक्षपाती न थे। जीवन की मूलधारा एक ही है। विभिन्न क्षेत्रो मे वह विभिन्न रूपों में विकास पाती है और हम उसका भिन्न रूप देखते हैं। गाधीजी का दृष्टिकोण सम्यक् दृष्टिकोण था।

गाँधीजी · भारतीय संस्कृति

गाधीजी भारतीय सस्कृति के सर्वश्रेष्ठ प्रतीक थे। सास्कृतिक क्षेत्र मे भी उन्होंने क्रांति का सूत्रपात किया और अनेक सडो गली मान्यताओं पर कुठाराघात कर उनका मूलोच्छेदन किया। इस प्रकार भारतीय सस्कृति का परिष्कार कर उन्होने उसे एक नई दिशा प्रदान की जो उसकी प्रगति की सूचक है। गाधीजी की इसी देन पर विचार करने से पूर्व यह उचित ही होगा कि हम सस्कृति की परिभाषा पर विचार करें और उसके संदर्भ में भारतीय सस्कृति के उपादानों का सम्यक विवेचन करें।

सस्कृति की परिभाषा

आज के समाज मे सस्कृति शब्द का कदाचित सर्वाधिक प्रयोग किया जाता है, पर हम उसके वास्तविक अर्थ को कितना समझ पाते हैं यह विवादास्पद है। कुछ लोगों की दृष्टि में नृत्य, संगीत, खेल-कूद, कला, आमोद-प्रमोद के साधन ही किसी देश की सस्कृति के सूचक हैं। पर ऐसा कहने में वे कुछ आवश्यक तत्वो को भूल जाते हैं जिनकी उस देश की सस्कृति को विशिष्ट रूप देने में प्रधान भूमिका होती है।

सस्कृति सामाजिक सगठन का ही नाम है। इसके अन्तर्गत किसी समाज मे प्रचलित विचार, आदर्श, व्यवहार, पारस्परिक सम्बन्ध इत्यादि का समावेश किया जाता है। वास्तव में यह एक जीवन प्रणाली ही है जिसे किसी देश को भौगोलिक परिस्थितिया और वहाँ की जलवायु आदि निर्धारित करते हैं और उसका सामान्य स्वरूप सभी नागरिकों के आदर की वस्तु होता है। हर आने वाली पीढ़ी अपनी पिछली पीढी से इसे विरासत में प्राप्त करती है और अपनी ओर से इसमे अभिवृद्धि कर अगली पीढ़ी को सौंप देती है। इस प्रकार यह परम्परागत विरासत ही सस्कृति का रूप धारण करती है।

सभ्यता से मूर्त एवं भौतिक उपादानों का वोध होता है तो, संस्कृति से अभौतिक और अमूर्त उपादानों का। सभ्यता की आत्मा ही संस्कृति है। यह वह पूर्ण व्यवस्था है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला तथा नैतिकता के सिद्धांत, विधि-विधान, एवं समाज का सदस्य होने के नाते मनुष्य द्वारा अर्जित ऐसी ही अन्य योग्यताएं सम्मिलित होती हैं। ये सभी वस्तुएं एक विशिष्ट दृष्टिकोण को जन्म देती हैं जो उस देशवासियों की सामूहिक मान्यता एवं श्रद्धा पर आधारित होता है। भारतीय दृष्टिकोण से आदर्शो का अत्यधिक मूल्य है। इन्हीं आदर्शो को प्राप्त करन के लिए हर प्राणी सदैव प्रयत्नशील रहता है—यहो आदश संस्कृति का मापदण्ड है। भारत की एक अन्य विशेषता यह भी है कि यहां सभ्यता और संस्कृति एक दूसरे के पर्याय वनकर रहे हैं अर्थात् दोनों का विस्तार सार्वभौम, सर्वव्यापी है।

गाँधी साहित्य में संस्कृति

गांधीजी ने समाज-शास्त्र की दृष्टि से संस्कृति की कोई परिभाषा तो नहीं की है परन्तु अपने सम्पूर्ण साहित्य में उन्होंने इस विषय का विशद् विवेचन किया है। मनुष्य समाज के सदस्य के रूप में किस प्रकार जीवन व्यतीत करे, अपने को किस प्रकार अधिकाधिक उपयोगी वनावे, किस प्रकार देश और जाति की सेवा करे, इन वातों पर गांधीजी ने काफी प्रकाश डाला है।

मनुष्य जीवन के कई पक्ष हैं। हम एक साथ ही समाज, परिवार, राजनीतिक तथा आर्थिक संस्थाओं के सदस्य होते हैं। इन सव के प्रति हमारे निश्चित कर्तव्य होते हैं। फिर व्यक्तिगत स्तर पर भी हमें धार्मिक, नैतिक, कलाकार, व्यवसायी के रूप में समाज में विचरण करना पड़ता है। इन सभी क्षेत्रों में हमारे व्यवहार का आदर्श स्थापित करने वाली पद्धति ही संस्कृति के नाम से जानी जाती है। गांधीजी ने मनुष्य जीवन के इन विभिन्न पक्षों पर अथवा इन क्षेत्रों के आदर्श व्यवहार के विपय में विचार-विमर्श किया है, तथा सृजनात्मक आदर्श संस्कृति की प्रतिष्ठा के लिए प्रयत्न किया है। गाधीजी की मान्यता है कि देश का कल्याण इस देश की संस्कृति के श्रेष्ठ और प्रगतिशील तत्वों के उन्नयन में ही है।

भारतीय सस्कृति मे मानव-व्यवहार पद्धति का सार यह है : तृष्णा का त्याग करो, क्षमा को अपनाओ, घमण्ड को छोड़ो, पाप मे मत लगो, सत्य बोलो, सज्जनो का अनुगमन करो और विद्वानो की सेवा करो। इसी सार को अपने जीवन मे अपनाकर गाधी जी ने अपनी भाषा मे विश्व भर को अर्पित किया। इस पद्धति का अनुगमन करके ही हम 'खडित व्यक्तित्व' से बच सकते हैं। गाधीजी ने जीवन भर इन्ही आदर्शों को अपने व्यवहार मे उतारने का प्रयास किया और कथनी और करनी को एकाकार कर विश्व मानव के मन पर अपनी अमिट छाप छोडी। उन्होने अहिंसा के मार्ग द्वारा विश्व शाति स्थापना का प्रयास किया और एक बिल्कुल नए मार्ग का निर्देशन भटकी हुई जनता को दिया।

धर्ममूलक सस्कृति का स्वरूप

गाधीजी मूलत: धार्मिक व्यक्ति थे, अत उन्होंने सस्कृति की भी धर्म से अलग कल्पना नही की। उनके द्वारा प्रस्तुत सास्कृतिक प्रतिमानो की मूल भावना धार्मिक-आध्यात्मिक ही है। वे मनुष्य के प्रत्येक कार्य-कलाप को धर्म पर आधारित करने के लिए प्रयत्नशील रहे। उनका स्पष्ट मत है कि व्यक्ति हो या परिवार, समाज हो या राष्ट्र सभी शुद्ध धर्म और नीति के अनुसरण से ही वास्तविक प्रगति कर सकते हैं। अनीति और अधर्म स्वीकार करने वाला तो अशान्ति और दुख के ही गर्त में गिरता है। महान सस्कृतियो के निर्माण मे धर्म एक बडी प्रेरक शक्ति रहा है, धर्मो के उत्थान के साथ सस्कृतियाँ उन्नत हुई हैं और धर्म के पतन के साथ सस्कृतियो का पतन हुआ है। पर उनका धर्म किसी सम्प्रदाय या वाद द्वारा बंधा हुआ नही है। वह तो आकाश की भाँति उन्मुक्त है। सारी मानवता का धर्म है और सब धर्मो के लिए आदर मम्मान की भावना से ओत-प्रोत है। इस धर्म के मूल तत्व हैं सत्य, अहिंसा, प्रेम और मानव-सेवा। मनुष्य के *प्रत्येक आचरण का नियमन इन्ही मूल भावो द्वारा* करने के वे पक्षपाती थे। उन्होंने कहा है, 'जो धर्म व्यावहारिक बातो पर ध्यान नहीं देता और उन्हे हल करने में मदद नही करता, वह धर्म नही है।... मानव प्रवृत्तियो का सारा ढांचा अविभाज्य वस्तु है। आप सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और विशुद्ध धार्मिक काम के अलग-अलग खाने नही बना सकते। मानव सेवा से भिन्न कोई धर्म नही है।'

ज्ञान, विज्ञान, कला, दर्शन, साहित्य, राजनीति, अर्थनीति आदि सभी संस्कृति के अंग हैं और इनका एकमात्र लक्ष्य है मानव-सेवा; मनुष्य समाज के लिए सुख शान्ति के साधन प्रस्तुत करना। परन्तु आज के संसार में इन सब का दुरुपयोग हो रहा है। अपनी स्वार्थ बुद्धि के कारण मनुष्य इनका प्रयोग मनुष्य के शोषण के लिए, उसके उत्पीड़न के लिए, समाज में अशान्ति, अव्यवस्था उत्पन्न करने के लिए तथा अन्ततः संसार को युद्ध और विनाश के कगार की ओर ले जाने के लिए कर रहा है। और इस सबका मूल कारण है धर्म और ईश्वर में मनुष्य की श्रद्धा और आस्था का ह्रास। दुर्भाग्य से आज परिग्रह बढ़ाने को ही सभ्यता का लक्षण मान लिया गया है। यह भोगवादी संस्कृति को जन्म देता है। इसके विपरीत गांधी जी ने अपरिग्रह पर, अपनी इच्छाओं पर अंकुश लगाने पर, उन्हें घटाकर सच्चा सुख और सन्तोष प्राप्त करने पर बल दिया। उन्होंने भविष्य-वाणी की : एक दिन मनुष्य इस भ्रम जाल का भेद न करके देख सकेगा कि उसने अपने लिए यह सब क्या कर लिया है। तब वह वापस लौटेगा और अपने वास्तविक सुख की ओर उन्मुख होगा।

सर्वोदय संस्कृति

गांधी जी सर्वोदय संस्कृति का प्रतिपादन करते हैं और उसके लिए इन पाँच बातों पर व्यवहार—सत्यतापूर्वक व्यवहार—आवश्यक मानते हैं। सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय और अपरिग्रह। इन्हीं व्रतों का पालन करके मनुष्य मानव-कल्याण के मार्ग पर अग्रसर हो सकता है। यह प्रवृति आत्मकेन्द्रित, स्वच्छन्दतावादी, पतनोन्मुखी और विनाशकारी न होकर परार्थवादी, ईश्वरीय नियमों के आधीन तथा रचनात्मक और कल्याणकारी होगी।

इन उच्च आदर्शों के कारण कुछ लोग गांधीजी के संस्कृति सम्बन्धी विचारों को अव्यवहारिक और काल्पनिक मानते हैं। उनका झुकाव यूरोपीय संस्कृति की चकाचौंध की ओर है पर यदि स्वयं पश्चिमी विचारकों के विचारों का अवलोकन करें तो ज्ञात होगा कि वे लोग अपनी इस सभ्यता एवं संस्कृति से कितने क्षुब्ध हैं। इसके लम्बे अनुभव से उन्होंने भी यही निष्कर्ष निकाला है कि यदि संसार में सच्चे सुख, शान्ति की व्यवस्था करनी है तो परार्थवादी और कल्पनाशील संस्कृति को इस आडम्बरयुक्त संस्कृति के स्थान पर

प्रतिष्ठित करना होगा। जर्मन दार्शनिक स्वीटजर तो यहाँ तक मानता है कि पाश्चात्य सस्कृति नैतिक शून्यवाद, भौतिकता और यान्त्रिकता का चरम विकास कर चुकी है अत: अब द्रुतगति से उसका पतन हो रहा है। संस्कृति और समाज मे धर्म और आध्यात्मिकता को सर्वोपरि स्थान देते हुए योगिराज श्री अरविन्द कहते हैं : 'धर्म अगर जीवन में सजीव रूप से चरितार्थ न किया जाय तो वह किसी काम का नही है। उसे जीवन के सभी अंगो में चरितार्थ करना होगा; इसकी आत्मा को हमारे समाज, हमारी राजनीति, हमारे साहित्य, हमारे भौतिक विज्ञान, हमारे वैयक्तिक चरित्र, प्रवृत्तियों और अभीप्साओ में प्रविष्ट होकर उनका पुनर्निर्माण करना होगा।'

इन्ही विचारों से ओतप्रोत है गाधी जी की धर्म मूलक संस्कृति और उनका सास्कृतिक धर्म, इनमें मानव सेवा के विभिन्न अंगों का सहज ही समावेश हो जाता है और धर्म का सामाजीकरण हो जाता है।

सांस्कृतिक क्रान्ति

गांधीजी द्वारा आरम्भ की गई सास्कृतिक क्रान्ति में पहला स्थान है स्वच्छता का। शरीर और मन की स्वच्छता पर बल देते हुए उन्होने इन्हे सार्वजनिक जीवन में सर्वाधिक महत्ता दी और इन्हें सूक्ष्मतर बनाते हुए पवित्रता और नैतिकता तक ले गए। उन्होंने अपने सम्पर्क मे आने वाले व्यक्तियो के जीवन में संयम और अनुशासन को गहरी जड़ें डाली। उन्होने बुराई का पूरी शक्ति से मुकाबला करना सिखलाया और देश मे प्रबल इच्छा शक्ति जागृत की।

आत्मशुद्धि के इस आंदोलन को उन्होंने राजनीतिक आंदोलन का अविच्छिन्न अंग बना दिया, और इसका विकास करते हुए स्वदेशी, साम्प्रदायिक भ्रातृत्व, राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार को भी इसमें शामिल किया। उन्होने देश की भूखी नगी जनता के साथ तादातम्य स्थापित किया और सच्चे अर्थों में उसका प्रतिनिधित्व किया। यह है उनकी सास्कृतिक क्रांति का साधारणीकरण।

अंत मे हम कह सकते हैं कि गांधीजी ने सत्य के प्रति उत्कृष्ट प्रेम जगाकर जनता को अभय का मंत्र दिया। अहिंसा का पाठ पढा कर उच्च वीर भावना की प्रेरणा दी। भारतीय स्वाधीनता सग्राम का कोई भी सैनिक झूठ नही बोला, उसने कायरता नहीं दिखाई और

दूसरों को कष्ट देने की अपेक्षा स्वयं कष्ट सहना स्वीकार किया। समानता एवं सह-अस्तित्व की भावनायें जगाकर उन्होंने भारतीयों को आत्म गौरव से भर दिया। भारतीय संस्कृति के उन्नयन में गांधीजी का यह योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है।

गांधीजी : धर्म और राजनीति

गांधीजी मूलतः धार्मिक व्यक्ति थे। राजनीति के क्षेत्र में उतरने की प्रेरणा भी उन्हें धर्म से ही मिली थी। उन्होंने कहा भी है 'मैं जितने धार्मिक पुरुषों से मिला हूँ उनमें से अधिकतर को मैंने छद्मवेश में राजनीतिज्ञ ही पाया, किन्तु मैं राजनीति का वेश धारण करके भी हृदय से धार्मिक हूँ।' इस प्रकार गांधीजी ने जिस राजनीति का प्रतिपादन किया वह धर्म की सुदृढ़ भित्ति पर आधारित थी।

धर्म का मानव जीवन में वहुत महत्वपूर्ण स्थान होता है, इस वात से तो इन्कार नहीं किया जा सकता। पर अधिकतर विचारक धर्म को व्यक्तिगत विश्वास मान कर उसे राजनीति से अलग रखने की वात कहते हैं। इस विचार की पुष्टि युरोपीय विचारक मैंकिया-वेली ने अपनी पुस्तक राजकुमार में की है। वह कहता है कि धर्म और नैतिकता वैयक्तिक हैं, इनका राजनीति से कोई सम्वन्ध नहीं है। यह विचार अधिकतर लोगों को रुचिकर लगा, वे मैंकियावेली के अनुयायी वनकर उसकी पद्धति का अनुसरण करने लगे और परिणाम यह हुआ कि आज राजनीति कूटनीति का पर्याय वन गई है, और इसमें छल, कपट, पाखण्ड आदि को प्रमुख स्थान प्राप्त है। आज की इस धर्म और नीति रहित राजनीति का प्रणेता मैंकिया-वेली सर्वत्र पूज्य है, सर्वत्र ग्राह्य है। उसके अनुयायियों की संख्या नित्य प्रति वढ़ती जाती है।

ऐसे ही समय में जव संसार मैंकियावेली की दुर्नीति के चंगुल में फंसा हुआ भटक रहा था भारतीय राजनीतिक आकाश पर गांधी जी का उदय हुआ। रोम्याँ रोलाँ के शव्दों में 'उनका उदय उस समय हुआ, जव ऐसा उदाहरण लगभग आश्चर्य लगता था। भारतवर्ष भी अंग्रेजी साम्राज्य का एक अंग होने के कारण इस (मैंकियावेली की) राजनीतिक दुष्ट वृति से मुक्त नहीं था।'

राजनीति ही क्यों ?

जैसा कि हम कह चुके है गाधीजी बड़े ही धर्मप्राण व्यक्ति थे। परन्तु उनका धर्म सकीर्णता से मुक्त था। अंधविश्वास अथवा रुढ़ियो के लिए उसमे स्थान न था। वह तो मानवतावादी धर्म था। मानव मात्र के लिए मुक्ति का सन्देश दाता था। गाधीजी अपने देश-वासियों का उद्धार करना चाहते थे पर इसके लिए पहली आवश्यकता थी राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्ति की। अतः अनचाहते हुए भी उन्हे राजनीति के क्षेत्र मे पदार्पण करना पडा। परन्तु अपने युग की कुटिल राजनीति उन्हे आकर्षित न कर सकी। उनका विचार था कि अच्छे साध्य की प्राप्ति अच्छे साधनों द्वारा ही हो सकती है। साध्य और साधन को अलग करके वे कभी न सोचते थे। साधनों की पवित्रता पर वे उतना ही वल देते हैं जितना साध्य की पवित्रता पर। उन्होंने कहा भी है : हिंसा का सहारा लेकर जो आजादी हम प्राप्त करना चाहते हैं वह स्थायी नही हो सकती। एक न एक दिन हमें उसे खोना ही पड़ेगा क्योकि उसका आधार घृणा, द्वेष, छल-छद्म पर होगा और ये कभी भी समस्या का स्थायी समाधान प्रस्तुत नही कर सकते।

गाधीजी राजनीति को मानव कल्याण का साधन मानते थे अतः पहला काम जो उन्होने किया वह था राजनीति का शुद्धिकरण और इसके लिये उन्होंने राजनीति में धर्म और नैतिकता को सम्मिलित किया। भारत के लिए वे इसी मिश्रण को उपयोगी समझते थे और इसे ही विश्व-राजनीति को भारत की सबसे बडी देन मानते थे। उन्होंने राजनीति के तत्कालीन मूल्यो को अस्वीकार किया और इसमें शुद्ध धार्मिक और आध्यात्मिक मूल्यो की प्रतिष्ठा के लिये पूर्ण प्रयत्न किया। इस कार्य में गाधीजी को कितनी ही कठिनाइयां उठानी पडी। उनके सहयोगियो ने भी आरम्भ मे इसका विरोध किया क्योकि वे सभी पश्चिमी राजनीति शास्त्र के ही विद्यार्थी थे। पर धीरे धीरे सब विरोध समाप्त होता गया और लोगो ने इस नवीन राजनीति के महत्व को समझा।

गांधीजी के धर्म का स्वरूप

गाधीजी का धर्म सम्प्रदायवादी न होकर नैतिक मूल्यों पर आधारित है और सार्वभौम सत्यों का आग्रह करता है। सत्य

अहिंसा, प्रेम इसके मूल मन्त्र हैं। गांधीजी के लिए सत्य और ईश्वर एक ही परम-सत्ता के दो नाम हैं और उन्हें प्राप्त करने का एक ही उपाय है—अहिंसा। अहिंसा के मार्ग पर चल कर हम विश्व-बन्धुत्व की भावनाओं को प्रशस्त कर सकते हैं। इस मानवतावादी धर्म के बिना समाज जीवित नहीं रह सकता ऐसी गांधीजी की मान्यता थी। धर्म विहीन राजनीति को वे मूल्यहीन मानते थे, इसी प्रकार जैसे सुगन्ध में लपेटा हुआ शव। धर्म लड़ने-झगड़ने का नाम नहीं है वह तो विश्व सहिष्णुता का पोषक होता है। राजनीति में ऐसे ही धर्म का समावेश होता है राजनीति उसी की अनुगामिनी होती है। धर्म से शून्य राजनीति तो मृत्यु का जाल है और आत्मा का हनन करने के अतिरिक्त उससे कुछ भी लाभ नहीं होता। डा० राधाकृष्णन ने भी गांधीजी के पक्ष का समर्थन करते हुए कहा है: राजनीतिक क्षेत्र में मनुष्य को अधिक सफलता नहीं प्राप्त हुई है इस का मुख्य कारण यह है कि उसने राजनीति से धर्म को प्रथक रखा है।

भारत धर्म प्रधान देश है। यहाँ के जनजीवन में धर्म का सर्वोपरि स्थान है। राजनीति भी धर्म का ही एक अंग बनकर आई है और उसका विवेचन भी हमारे धर्मशास्त्रों में ही हुआ है। धर्म की सत्ता सार्वभौम थी। परन्तु जब गांधीजी धर्म और राजनीति के सम्मिलन की बात करते हैं तो इसका यह तात्पर्य नहीं कि राज्य किसी सम्प्रदाय विशेष का प्रचारक मात्र बनकर रह जायगा। अथवा अधिक से अधिक लोगों को उस सम्प्रदाय में दीक्षित करने के लिए प्रयत्नशील रहेगा। उनका आशय तो इतना ही है कि राज्य सभी धर्मों को विकास का समान अवसर प्रदान करेगा। किसी भी धर्म के मानने वालों के प्रति पक्षपात नहीं किया जायगा। सबको अपना-अपना धर्म पालन करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होगी पर साथ ही राज्य का यह कर्त्तव्य होगा कि वह कुछ नैतिक मूल्यों को जन-सामान्य के जीवन में उतारने के लिए प्रयत्नशील रहे। ऐसा न होने से समाज का विघटन होने लगता है। नैतिकता-विहीन समाज शीघ्र ही विनाश के पथ पर अग्रसर होने लगता है। वे तो चाहते हैं राजनीतिज्ञ सभी धर्मों के प्रति समान भाव रखें तथा सार्वजनिक जीवन में नीतिधर्म के सार्वभौम मूल्यों पर अटल रहें। ये मूल्य सभी धर्मों में लगभग एक से हैं अतः किसी को भी उनके आचरण पर कठिनाई नहीं हो सकती।

राजनीति का साध्य—धर्म

गाधी जी चाहते थे राजनीति का साध्य धर्म हो और यह धर्म सच्चा धर्म—मानवतावादी धर्म हो। जब राजनीति में धर्म पालन को लक्ष्य मान लिया जायेगा तो राजनीतिज्ञो को सच्चा धार्मिक व्यक्ति बनना पड़ेगा, अनासक्त योगी बनना पड़ेगा, निष्काम कर्मयोगी बनना पड़ेगा और राजनीति को वे यज्ञ कर्म के रूप मे ही स्वीकार करेंगे।

इन्ही विचारो को ध्यान मे रखते हुए गाधीजी ने राजनीतिक कार्यकर्त्ताओ को सत्याग्रही की सज्ञा दी। सत्याग्रही—अर्थात सत्य का आग्रह करने वाला, सत्य के मार्ग पर दृढता-पूर्वक चलने वाला। इसके लिए उन्होंने कुछ व्रतो का, कुछ नियमो का विधान भी बनाया। इन व्रतो का उद्देश्य सत्याग्रही के आचरण को नियन्त्रित करना है। ये व्रत हैं—सत्य, अहिसा, ब्रह्मचर्य, अस्वाद, अस्तेय, अपरिग्रह, अभय, अस्पृश्यता-निवारण, कायिक श्रम, सर्वधर्म-समभाव, स्वदेशी आदि। इन नियमो का पालन करने वाला स्वभावत पदलोलुपता, छल, प्रपंच, अन्याय, अत्याचार, स्वार्थपरता—जो आज की राजनीति के अभिन्न अंग बन गए हैं-से दूर रहेगा। वह ऐसी प्रवृत्तियो को प्रोत्साहन देगा जो समाज मे सच्ची शान्ति स्थापित करें, उसे सगठित करके शक्तिशाली बनावें और सारे समाज को सामूहिक रूप से उन्नति के शिखर तक ले जावें।

गाधीजी सत्य को सर्वाधिक महत्त्व देते हैं। सत्य के मूल्य पर वे कुछ भी स्वीकार करना नही चाहते भले ही वह भारत की स्वतंत्रता क्यो न हो। सत्य उन्हे स्वराज्य से भी अधिक प्रिय था। राजनीति मे पड़ने पर भी वह सत्य के अनन्य भक्त बने रहे और राजनीति को उन्होने धर्म का पूरक माना। राजनीति का आध्यात्मीकरण करने से उनका यही तात्पर्य था कि उसमे विग्रह, विघटन, विद्रोह और विनाश को प्रश्रय देने वाली प्रवृत्तियों के स्थान पर सद्भावना, सहयोग, समन्वय और सगठन के तत्वो का समावेश किया जाय। अपने जीवन मे इसी राजनीति पर व्यवहार करके उन्होने इसकी व्यावहारिकता एव उपादेयता सिद्ध की और संसार के विचारको के सम्मुख एक नवीन परन्तु सफल सिद्धान्त रखा।

●

महात्मा गांधी और शिक्षा

डा० आत्मानन्द मिश्र

महात्मा गांधी भारतीय गुरूजनों की उस परम्परा में थे जिन्होंने मनु के शब्दों "स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवा:" पर आचरण किया। वह कृष्ण, बुद्ध तथा ईसा के पदचिन्हों पर चले और उन्होंने उपदेश से अधिक अपने उदाहरण द्वारा शिक्षा दी। अर्द्ध शताब्दी पर्यन्त वे एक बड़े महाद्वीप की जनता को आत्मसंयम एवं स्वशासन करने की शिक्षा देते रहे। उन्होंने अपने महाप्रयाण के पूर्व एक ऐसे समूचे राष्ट्र की, जो पथ भ्रष्ट हो दानवता की ओर अग्रसर था, अपने प्राणों की बाजी लगा कर रक्षा की। इसलिंगटन में अपने विद्यार्थियों को महात्मा गाँधी का परिचय देते हुए मैरिया मान्तेसरी ने कहा था, "आज मैं तुम्हारे सम्मुख किसी व्यक्ति को

नही एक महान आत्मा को प्रस्तुत कर रही हूँ। तुम शीघ्र ही उनको वाणी सुनोगे जो जीवन कला के सर्वश्रेष्ठ शिक्षक हैं। हम अपने वालको को सिखाते हैं वे कैसे जियें, कैसे वे आध्यात्मिक जीवन को प्राप्त करें-और इसी पर समस्त विश्व की शांति निर्भर करती है-आज हमारा सौभाग्य है कि उस जीवन के व्यावहारिक पक्ष के मर्मज्ञ, उसकी कला के महान शिक्षक, सत्य और अहिंसा के अनन्य पुजारी हमारे मध्य विराजमान हैं।"

शिक्षा का जीवन से निकट सवध है, अतएव जो व्यक्ति कला का विशेषज्ञ हो वह शिक्षा के मर्म को भलीभाति जानता ही होगा। प्राय' लोग समझते हैं कि गाधीजी ने प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र मे सात वर्ष से चौदह वर्ष पर्यन्त की एक शिक्षा योजना दी थी जो वर्धा योजना अथवा बेसिक शिक्षा के नाम से प्रसिद्ध है। किन्तु वे यह नही जानते कि गाधी जी ने शिक्षा मे अनेक प्रयोग किये और वर्धा योजना उन सवका चरम उत्कर्ष विन्दु थी। गाँधी जी की एक विशेषता यह रही है कि वे जिस क्षेत्र मे विचार व्यक्त करते थे उसमे स्वत: की उनकी अनुभूति किसी सीमा तक अवश्य रहती थी और इस अनुभूति को वे प्रयोगो द्वारा प्राप्त करते थे। उनके यह प्रयोग घर में या निकट के पर्यावरण मे किये जाते थे जिनमे वह स्वय भागी प्रेक्षक (पार्टीसिपेण्ट-आब्जवर) होते थे। इन अनुभवो के आधार पर वह शिक्षा को सम्पूर्ण जीवन का अ ग मानते थे। और उसकी प्रत्येक वात को शाश्वत मूल्यो से जोडते थे। शिक्षा द्वारा वे सामाजिक व्यवस्था में क्रातिकारी परिवर्तन की कल्पना सजोये हुए थे।

गाँधी जी की शिक्षा योजना देश-काल के अनुरूप थी और उसमे उच्चकोटि के शिक्षात्मक तत्वो का समावेश था। यह सभव इसलिए वना कि उनके शिक्षा-विचारो का आधार परिस्थितियो की वास्तविकता, मूल्यों की शाश्वतता और जीवन से सम्बद्धता थी। उनके विचारों को प्रभावित करने वाले तीन प्रमुख तत्व थे। एक था उनका आधुनिक शिक्षा-प्रणाली का कटु अनुभव जिसने उनके मन में बचपन से ही धारणायें वनाना आरम्भ कर दिया था। दूसरा उनके शिक्षा सम्बन्धी प्रयोग जिन्होंने उनके शिक्षा विचारो को दिशा दी। और तीसरे उनका भारतीय समाज का अ तरंग ज्ञान जिसने उनकी शिक्षा योजना को सामाजिक उपादेयता की कसौटी पर

कैसा। महात्मा गाँधी की इन धारणाओं, प्रयोगों तथा अनुभवों के संदर्भ में ही हम उनके शिक्षा विचारों को भली-भाँति समझने में कृतकार्य होंगे। अतएव संक्षेप में उनका अवलोकन आवश्यक हो जाता है।

शिक्षा के अनुभव

वचपन में गाँधीजी पोरवंदर की प्राथमिक शाला में पढ़े थे जिसके सम्वन्ध में उन्होने अपनी आत्मकथा में लिखा है, "ऐसा याद है कि मैं किसी पाठशाला में वैठाया गया था। मुश्किल से कुछ पहाड़े सीखे होंगे। उस समय दूसरे लड़कों के साथ मैंने गुरुजी को गालियाँ देना भर सीखा, इतने के सिवा और कुछ भी याद नहीं है। इससे मै अनुमान करता हूँ कि मेरी वुद्धि मंद रही होगी और स्मरण शक्ति कच्ची।"[1] इस प्रकार तत्कालीन प्राथमिक शिक्षा की अव्यावहारिकता, गुरूजनों का अनादर तथा पाठ्यक्रम की दुरूहता की छाप गाँधीजी पर पड़ी।

राजकोट की शाला के सम्वन्ध में गाँधी जी ने लिखा है—"पाठशाला में मुझे वस काम से-काम था। घंटा वजते पहुंच जाना और पाठशाला वन्द होते ही घर भागना। 'भागना' शव्द मै जान-वूझ कर इस्तेमाल कर रहा हूँ।"[2] ऐसी अरुचिकर उस समय की पाठशालायें थीं कि उनसे भागने में ही त्राण मिलता था। पढ़ाई के सम्वन्ध में आगे गाँधीजी कहते हैं, "मुझे साधरण स्कूली कितावों के सिवा और कुछ पढ़ने का शौक नहीं था। सवक पूरा करना चाहिए, क्योंकि डाँट सही नहीं जाती थी, उधर मास्टर को धोखा देना नहीं था, इसलिए पाठ पढ़ता था। पर मन अलसाता था। इससे सवक कच्चा रह जाता। उस दशा में और कोई चीज पढ़ने की कहाँ सूझती।"[3] स्पष्ट है कि पाठ्य पुस्तकों के अतिरिक्त और कुछ पढ़ना नहीं होता था और उन्हे भी रुचि से नहीं, अन्य कारणों से पढ़ना पड़ता था।

---

१. मो० क० गांधी आत्मकथा (दिल्ली : सस्ता साहित्य मंडल १९६०) पृष्ठ १७

२. आत्मकथा, पृष्ठ १८

३. आत्मकथा, पृष्ठ १९

बारह् वर्ष की आयु में जब वे हाई स्कूल पहुचे तो लिखते हैं "अपने चाल-चलन की मुझे बड़ी चिंता रहती थी। आचरण में दोष आने से तो मुझे रूलाई ही आती थी। मेरे हाथो कोई ऐसी बात हो जाय या शिक्षकों को ऐसा मालूम हो कि उन्हे मेरी भर्त्सना करनी पडे, यह मेरे लिए असह्य था।"[४] शिक्षा मे अध्ययन की अपेक्षा चरित्र-गठन पर जोर देने का बीजारोपण यहो से होता है।

हाई स्कूल मे "विद्यार्थियो के लिए कसरत, क्रिकेट अनिवार्य था। मुझे इन चीजो से अरुचि थी। अनिवार्य होने के पहले तो मैं कभी कसरत, क्रिकेट या फुटबाल में गया ही न था। आज इस अरुचि मे मैं अपनी गलती देखता हू। उस समय मेरी यह गलत धारणा थी कि कसरत का शिक्षण के साथ कोई सबध नही है। बाद को समझ में आया कि विद्याभ्यास मे व्यायाम अर्थात शारीरिक शिक्षा का मानसिक शिक्षा के बराबर ही स्थान होना चाहिए।"[५] स्पष्ट है कि सपूर्ण शिक्षा प्राप्त करने के लिए पाठ्य क्रम तथा पाठ्यक्रमोत्तर दोनो ही प्रकार की क्रियायें आवश्यक होती हैं।

शाला शिक्षा में जो दूसरी बड़ी भूल हुई उसे भी गाधी जी के शब्दो मे सुनिये। "पता नही कहा से यह गलत ख्याल मेरे दिमाग मे घुस गया था कि पढ़ाई में सुन्दर लिखावट की जरूरत नही। बाद को, और खासकर दक्षिण अफ्रीका मे, जब वकीलों के मोती के दानों से अक्षर देखे तब मैं लजाया और पछताया। मेने समझा कि खराब अक्षर अधूरी शिक्षा को निशानी मानी जानी चाहिये। पीछे से मैंने अपने अक्षर सुधारने की कोशिश की, पर पके घडे पर कही गला जुड़ता है? प्रत्येक युवक और युवती को मेरे उदाहरण से यह शिक्षा लेनी चाहिए कि अच्छे अक्षर लिखना विद्या का आवश्यक अंग है। सुन्दर लिखावट सीखने के लिए चित्रकला का ज्ञान आवश्यक है। मैं तो इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि बालकों को चित्रकला पहिले सिखलानी चाहिए। जैसे पक्षी, वस्तु आदि को देखकर बालक उन्हें याद रखता है और सहज मे पहिचान सकता है, वैसे अक्षर पहिचानना भी सोखे और चित्रकला सीखकर, चित्रादि बनाना सीख लेने के बाद अक्षर लिखना सीखेगा

---

४. आत्मकथा, पृष्ठ २८

५. आत्मकथा, पृष्ठ २८.

तो उसके अक्षर छापे जैसे होंगे।"[६] आज जब बालकों के हस्ताक्षर बड़े भोंडे और अपाठ्य हो रहे हैं, गांधी जी की इस टिप्पणी का बड़ा महत्व हो जाता है।

दो या तीन भाषायें पढ़ाने के संबंध में वर्तमान में जो विवाद उठ खड़ा हुआ है उसके संदर्भ में गांधी जी का विचार उल्लेखनीय है–"आज मैं यह मानता हूं कि भारतवर्ष में उच्च शिक्षण क्रम में अपनी मातृभाषा के सिवा राष्ट्रभाषा हिन्दी, संस्कृत, फारसी, अरबी और अंग्रेजी को स्थान मिलना चाहिए। भाषाओं की इतनी लम्बी सूची से किसी को डरना नहीं चाहिए। यदि भाषायें ढंग से सिखाई जायं और सब विषय अंग्रेजी द्वारा ही पढ़ने-समझने का बोझ हम पर न हो तो उपर्युक्त भाषाओं की शिक्षा भार रूप नहीं होगी, बल्कि उसमें बहुत रस मिलेगा। इसके अतिरिक्त एक भाषा शास्त्रीय पद्धति से सीख लेने वाले के लिए दूसरी भाषा का ज्ञान सुलभ हो जाता है। सच पूछिये तो हिन्दी,गुजराती और संस्कृत को एक भाषा में गणना की जा सकती है। उसी प्रकार फारसी और अरबी को एक माना जा सकता है। उर्दू को मैं अलग भाषा नहीं मानता क्योंकि उसके व्याकरण का समावेश हिन्दी में हो जाता है। उसके शब्द तो फारसी और अरबी के ही हैं। अच्छी उर्दू जानने वाले के लिए अरबी और फारसी जानना जरूरी है, वैसे ही जैसे अच्छी गुजराती, हिन्दी, बंगला, मराठी जानने वाले के लिए संस्कृत जानना।"[७] यह अनुभव जन्य वक्तव्य एक ऐसे व्यक्ति का है जिसने स्वयं कई भाषाओं का सफल अध्ययन किया था।

धार्मिक शिक्षा के संबंध में भी बड़ा मतान्तर व्यक्त किया जाता है। इस संबंध में गांधी जी की धारणा बहुत पहिले ही पुष्ट चुकी थी। वे कहते हैं "छठे-सातवें से शुरू करके सोलह वर्ष का होने तक पढ़ता रहा। पाठशाला में सब तरह की बातें सीखी पर कहीं भी धर्म शिक्षा न मिली। कहना चाहिए कि जो वस्तु शिक्षकों से अनायास ही मिलनी चाहिये थी वह न मिली।"[८] किन्तु घर और समाज से

---

६. आत्मकथा, पृष्ठ ३०.

७. आत्मकथा, पृष्ठ ३२

८. आत्मकथा, पृष्ठ ४१–४८

उनके जो संस्कार बने उनसे "एक बात ने मेरे मन मे जड़ जमा ली– यह संसार नीति पर टिका हुआ है, और सारी नैतिकता का तत्व पदार्थ सत्य है। अतएव सत्य प्राप्ति मेरा प्रमुख उद्देश्य बन गया। दिन प्रतिदिन सत्य की महत्ता मेरी दृष्टि मे बढती गई, विस्तार पाती गई।"[९] गाधीजी धर्म को बडे व्यापक रूप मे लेते थे उसे किसी सम्प्रदाय विशेष के धर्म तक सीमित नही समझते थे। इस व्यापक अर्थ में वे धर्म को आत्मबोध एवं आत्मज्ञान मानते थे।

गाधीजो वकालत पढने विलायत गए थे, वहा कानून की पढाई आसान थी। वहा बारिस्टरों को मजाक मे 'डिनर बारिस्टर' ही कहा जाता था। टर्म पूरा करने के लिए सत्र मे चौबिस भोजो में शामिल होना पड़ता था और वर्ष मे ऐसे चार सत्र होते थे। परीक्षा का मूल्य नही के बराबर था। नोट्स देख-दाख कर लगभग सभी पास हो जाते थे। किन्तु गांधीजी ने देखा कि "कानून तो मैंने अवश्य पढ लिया, पर ऐसी एक बात नही सीखी जिससे वकालत करनी आये। अतएव मेरी निराशा और भय का अन्त नही था। मुझे तो इसमे भी गहरी शंका होने लगी कि एक वकील की हैसियत से रोजी कमाने की शक्ति भी मुझ मे आएगी या नही ?" अनुभवी व्यक्तियो से मुलाकात करने पर उन्हे मालूम हुआ कि उन्हे सासारिक ज्ञान नही है और न ही चेहरा देखकर मनुष्य को परख करने की क्षमता। इन दोनो कमियो को पूरा करने की तनिक सी आशा का आश्वासन लेकर नितान्त निराशा के बीच कांपते पैरो 'आसाम स्टीमर' से वे बम्बई बदर पर उतरे।[१०] व्यावसायिक शिक्षा मे भी व्यावहारिकता की कमी और प्रयोगात्मकता का अभाव गाधीजी को बहुत खलता था। वकालत की शिक्षा मे आज भी ऐसी कमी विद्यमान है और विश्वविद्यालयो तथा छात्रों के बीच उसके अध्यापन अवधि को बढाने पर झगडा हो रहा है।

शिक्षा के प्रयोग

अध्ययन काल मे बनी शिक्षा संबंधी यह धारणायें धीरे धीरे परिष्कृत और पुष्ट हुईं और गाधीजी के मन मे शिक्षा प्रणाली में सुधार करने को आवश्यकता बलवती होती गई। सी०

९. आत्मकथा, पृष्ठ ५१
१०. आत्मकथा, पृष्ठ १०५–१०६

ई० एम० जोड ने कहा है कि "दुनिया में सबसे अधिक जिस विषय पर कहा या लिखा जाता है, कहा या लिखा गया है, वह है शिक्षा और दुनिया में सबसे अधिक बातूनी सम्प्रदाय जो होता है वह है शिक्षकों का।" समाज के प्रत्येक क्षेत्र का अगुआ या अनुयायी शिक्षा के ऊपर अपनी टीका-टिप्पणी, अपने विचार, अपनी प्रतिक्रिया प्रगट करने में थोड़ी सी भी आनाकानी नहीं करता, आगा-पीछा नहीं सोचता। भुक्त भोगी होने के कारण तथा समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेने पर यदि गांधीजी चाहते तो शिक्षा प्रणाली की आलोचना तथा सुधार की काल्पनिक योजना प्रस्तुत करते। किन्तु सत्य की खोज में लगे इस व्यक्ति ने हवा में गांठें बाँधना उपयुक्त न समझा। उन्होंने अवसर पाते ही अपने सीमित क्षेत्र में शिक्षा संबंधी प्रयोग आरम्भ कर दिए और उनके निष्कर्षों पर आधारित सुधार की योजना बाद में प्रस्तुत की। गाँधी जी का शिक्षा दर्शन कैसे विकसित हुआ यह समझने के लिए इन प्रयोगों का संक्षेप में उल्लेख आवश्यक हो जाता है यह उसके विकास क्रम की दूसरी अन्विति कहे जा सकते हैं।

गाँधीजी ने पहिला शिक्षा प्रयोग अपने पुत्रों पर सन् १८९७ मे डरबन में किया। वे अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा देने के पक्ष में नहीं थे अतएव उन्होंने अपने पुत्रों को दक्षिण अफ्रीका या भारतवर्ष की शालाओं में भेजना उचित नहीं समझा। उन्होंने 'आत्मकथा' में कहा है "जो शिक्षा सुव्यवस्थित घर में बच्चे अनायास पा जाते हैं वह छात्रालय में नहीं पा सकते। स्वतन्त्रता और आत्म-सम्मान का जो पाठ वे वहाँ सीखते हैं वह अन्यत्र प्राप्त नहीं। जहाँ स्वतंत्रता और अक्षर ज्ञान में ही चुनाव करना हो वहाँ कौन कहेगा कि—स्वतंत्रता अक्षर ज्ञान से हजार गुना बढ़कर नहीं है।"[११] इसी विचार से प्रेरित होकर गाँधी जी ने सन् १९२० में नवयुवकों से स्वतंत्रता घातक स्कूलों कालेजों को छोड़ने का आवाहन किया था।

गांधीजी ने दूसरा प्रयोग सन् १९०४ में फीनिक्स बस्ती में किया जहां उन्होंने "इंडियन ओपीनियन" समाचार पत्र के कर्मचारियों को बसाया था और उनके बालकों को पढ़ाने की समस्या उठ

---

११. आत्मकथा, पृष्ठ २३४

खडी हुई थी। वहां गांधीजी ने एक पाठशाला एवं कर्मशाला स्थापित की थी जिसमे बालको को न केवल अक्षर ज्ञान दिया जाता था वरन् खेती तथा मुद्रण संबंधी व्यावहारिक ज्ञान भी प्राप्त होता था। घर और बस्ती को स्वच्छ रखना, सामुदायिक कार्य करना, बागबाडी की देख रेख करना आदि अनेक रचनात्मक कार्य पढाई के साथ करने पड़ते थे। अध्यापन और दैनिक वार्तालाप मातृभाषा में होता था क्योंकि गांधीजी का विश्वास था कि अंग्रेजी पढाई से "बालक अपने देश की आध्यात्मिक तथा सामाजिक विरासत से वंचित रह जाता है।" इस प्रयोग मे उनकी भविष्य की शिक्षा योजना के अंकुर विद्यमान थे।

गांधीजी ने तीसरा प्रयोग ट्रान्सवाल के टालस्टाय फार्म पर सन् १९११ में आरम्भ किया। यहां के लोग अपने को एक बडा परिवार मानते थे जिसके पिता गाधीजी थे। अतएव गाधीजी ने बालको की शिक्षा की व्यवस्था अपने ऊपर ली। "आश्रम मे नौकर नही थे। अतएव टट्टी साफ करने से लेकर रसोई बनाने तक के सब काम आश्रमवासियों को ही करने पडते थे। रोज सबको बाग मे काम करना होता था। बडे-बडे गड्ढे खोदना, पेड काटना, बोझा ढोना आदि कामों मे उनके शरीर अच्छी तरह गठ जाते थे। इन कामो मे उन्हे आनन्द आता था और इनके अतिरिक्त उन्हे दूसरे व्यायाम अथवा खेल की आवश्यकता न रहती थी।"[१२] गाँधीजी का प्रयत्न था कि सबको कोई उपयोगी धन्धा सिखाया जाय। अतएव बालकों को लकडी का काम तथा जूता बनाना भी सीखना पडता था।

पढाई-लिखाई के लिए केवल तीन घंटे रखे गए थे। शिक्षा मातृभाषा द्वारा देने का आग्रह था। हिन्दी, तामिल, गुजराती अथवा उर्दू के अतिरिक्त अंग्रेजी तथा संस्कृत भी पढाई जाती थी। सबको हिन्दी पढना अनिवार्य थी और हिन्दू बालको को संस्कृत भी पढना पडता था। इनके अतिरिक्त इतिहास, भूगोल और अंकगणित भी पढाई जाती थी। अध्यापन प्राय शिक्षक द्वारा मौखिक होता था पाठ्य पुस्तकों की सहायता न ली जाती थी। गाधीजी का कहना था कि "मेरी समझ में विद्यार्थी की सच्ची पाठ्य पुस्तक शिक्षक ही

---

१२. आत्म कथा, पृष्ठ ३८५.

होता है बालक आँख से जितना ग्रहण करता है उसकी अपेक्षा कान से सुना हुआ थोड़े परिश्रम से बहुत ज्यादा मात्रा में ग्रहण कर सकता है। मुझे याद नहीं कि बालकों को मैंने एक किताब भी पूरी पढ़वाई हो। किन्तु अनेक पुस्तकों से जो कुछ भी मैं हजम कर लेता था वह उन्हें अपनी भाषा में सुना देता था और मै समझता हूँ कि यह उन्हें आज भी याद होगा।"[13] शिक्षा की प्रक्रिया आनन्द दायक होनी चाहिए। अतएव उसमें शारीरिक दंड का कोई स्थान नहीं है।

टालस्टाय आश्रम में गांधीजी ने हृदय की शिक्षा अथवा चरित्र के विकास को सर्वप्रथम स्थान दिया। उनका कहना था कि "चरित्र-निर्माण को मैं शिक्षा की सच्ची बुनियाद मानता हूँ। यदि यह बुनियाद दृढ़ता से पड़ गई तो बालक सब बातें स्वयम् अथवा दूसरों की सहायता से सीख लेंगे। इसके लिए वे आत्म-ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक मानते थे। बिना उस ज्ञान के वे अन्य ज्ञान व्यर्थ समझते थे जो हानिकारक भी सिद्ध हो सकता है। आत्मिक-शिक्षा, शिक्षक के आचरण से ही मिल सकती है अतएव शिक्षक का इसमें बड़ा उत्तरदायित्व है। इस आत्म शिक्षण को गाँधीजी शिक्षा का एक स्वतंत्र अंग मानते थे। धर्म के मूल तत्वों तथा धर्म ग्रन्थों की जानकारी को वे बौद्धिक विकास का अंग मानते थे। उनसे प्राप्त नैतिकता चरित्र-विकास में सहायक होती है। अतएव वे नीति शिक्षा पर बल देते थे।

सन् १९१४ में भारत लौटने के बाद गांधीजी ने अहमदाबाद के निकट पहिले कोचरब में आश्रम स्थापित किया और फिर उसे साबरमती उठा लाये। इस आश्रम में गांधीजी के प्रयोग बाल-शिक्षा सम्बन्धी न होकर प्रायः समाज शिक्षा सम्बन्धी थे। यहाँ ऐसी शिक्षा की व्यवस्था की गई जो देश-सेवा और राष्ट्र-कल्याण के लिए लाभ-प्रद हो। आश्रम के प्रत्येक व्यक्ति को एकादश वृत लेना पड़ता था और आराधना, स्वच्छता, सूत कातना, खेतीबाड़ी, डेरी, चर्म-कर्म तथा राष्ट्रीय शिक्षा के कार्य करने पड़ते थे। जाति-पांति और भेदों को भुलाकर हरिजनों के साथ समता का व्यवहार करना होता था। सबको एक परिवार के सदस्यों की भाँति रहकर घनिष्ठ आपसी सम्बन्ध रखने पड़ते थे।

---

१३. आत्मकथा, पृष्ठ ३८८–८९.

इस दिशा में सन् १९१७ में चम्पारन में नील के मजदूरो के कष्ट निवारणार्थ दूसरा प्रयोग आरम्भ हुआ। आर्थिक सकट के कारण उन्हें अपने बच्चो को पढाना असम्भव था। गांधीजी ने छः गाँवो में प्राथमिक शाला खोली और प्रत्येक में एक-एक स्त्री-पुरुष शिक्षक रखे जो पढे-लिखे तो अधिक न थे पर उनमे चारित्र्य बल अवश्य था। अक्षर ज्ञान की अपेक्षा बालको में स्वच्छता तथा अन्य अच्छी आदतें डालना अधिक महत्व का था। गंदे गाँवो की गलियो का कूडा-करकट, कुओं की कीचड-बदबू और आँगनो की गन्दगी दूर करने में इन्हे प्रशिक्षण दिया जाने लगा। इससे वयस्कों का ध्यान भी स्वच्छता की ओर गया। यह शालायें स्वतंत्र भारत के सामुदायिक विकास योजना तथा विस्तार सेवा कार्यक्रम का प्रारम्भिक प्रयोग थी।

शिक्षा विचारों का विकास

महात्मा गांधी का शिक्षा-दर्शन चालीस वर्ष के इन व्यक्तिगत अनुभवो और प्रयोगो के आधार पर बना है। इनकी पृष्ठभूमि थी स्वदेश तथा दक्षिण अफ्रीका के स्वदेशवासियो का राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक जीवन। गांधीजी के इन अनुभवो और प्रयोगो मे यथार्थता, सूक्ष्म विवरण, तथा दूरदर्शिता का गुण रहा है। उन्होने एक वैज्ञानिक की भाँति निष्कर्षों को खुले दिमाग से स्वीकार और अस्वीकार किया है। उन्होने इनके सत्य की खोज की है, गहरा अन्तंदर्शन किया है और सच्चे मनोवैज्ञानिक की भाँति बाल प्रकृति की कसौटी पर कसा है। जो उन्हे तर्क और हृदय से ठीक जान पडे उन पर पुनः प्रयोग किया है और फिर जिन निष्कर्षों की सत्यता शाश्वत जान पडी है उन्ही को अपनाया है। यद्यपि गांधीजी आदर्शवादी थे किन्तु बड़े क्रियात्मक भी। अतएव अपने सिद्धान्तो को कर्म की शिला पर ठोक पीटकर सवारते थे। इसमे उनके विचार आत्मनिष्ठ न होकर वस्तुनिष्ठ होते थे, परिकल्पित न होकर प्रयोगात्मक होते थे। वे प्रयोगों द्वारा व्यवहृत और क्रियान्विति द्वारा परीक्षित होते थे। छोटे स्तर पर किये गए यह प्रयोग आधुनिक शिक्षा शास्त्रियो का मार्ग दर्शन करेंगे कि शिक्षा जगत में उपयोगी शोध कैसे की जा सकती है।

गांधीजी के शिक्षा विचारों का सूत्रपात तत्कालीन शिक्षा के दोषों से हुआ। उस समय की शिक्षा बालक के प्राकृतिक एव सामा-

जिक परिवेश की अवहेलना करके निरी साहित्यिक (लिटरेरी) होती थी जिसमें हृदय के संस्कार (कल्चर) की कोई गुंजाइश नहीं थी। यह भारतीय प्रतिभा के प्रतिकूल बड़ी अपव्ययी तथा निष्प्रभावी थी और सार्वजनिक शिक्षा देने में सर्वथा असमर्थ थी। इस दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली को हटाना तो सरल था किन्तु इसके स्थान पर उचित प्रणाली निर्धारित करना कठिन कार्य था।

उपयुक्त शिक्षा प्रणाली के निर्माण के लिए गाँधीजी स्वयम् शिक्षक बने और शिक्षा प्रयोगों का श्रीगणेश अपने घर से किया। अपने बच्चों, अशिक्षित पत्नी तथा नौकरों को पढ़ाना शुरू किया। इनसे प्राप्त निष्कर्षों की पुष्टि करने के लिए उन्होंने इन्हें बड़े पैमाने पर फीनिक्स तथा टालस्टाय-फार्म पर चलाया। दूसरे चरण में यह प्रयोग साबरमती आश्रम और चंपारन में किए गए जिनमें वयस्क शिक्षा पर भी बल था। तीसरे चरण में गाँधीजी ने सन् १९३९ में अपने शिक्षा सिद्धान्तों का शिक्षा शास्त्रियों के सम्मुख रखा और नई तालीम, अथवा वर्धा योजना को जन्म दिया।

अपने शिक्षा-दर्शन के विकास में गाँधीजी को तीन व्यक्तियों के विचारों ने बहुत प्रभावित किया। एक थे रायचंद भाई जो दक्षिण अफ्रीका में एक व्यापारी थे किन्तु थे बड़े शतावधानी, गम्भीर शास्त्रज्ञ, उच्च चरित्रवान तथा उत्कृष्ट आत्मदर्शी। अपने आध्यात्मिक संकट में गाँधीजी उनका आश्रय लिया करते थे। दूसरे थे टाल्स्टाय जिनकी पुस्तक "द् किंगडम ऑफ गाड इज़ विदिन यू" (वैकुण्ठ तेरे हृदय में है) के प्रेम सदेश ने "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना जागृत की, और यह विचार दिया कि बिना हाथ-पैर चलाये शिक्षा मस्तिष्क का क्षय कर देती है। तीसरे व्यक्ति थे रस्किन जिनकी पुस्तक 'अनटू दिस लास्ट' ने गाँधीजी के मन में सुप्त विचारों को स्पष्ट प्रतिबिम्बित किया और उनके जीवन में तत्काल महत्व का रचनात्मक परिवर्तन किया। उससे उन्हें सर्वोदय के तीन सिद्धान्त मिले। पहिला सबके भले में अपना भला समाया हुआ है, दूसरा सबके काम का मूल्य एकसा होना चाहिए और तीसरे सादा, मेहनत-मशक्कतवाला किसान का जीवन ही सच्चा जीवन है। इन महान् व्यक्तियों के विचारों में अपनी धारणाओं की पुष्टि पाकर गाँधीजी ने अपने शिक्षा-दर्शन को परिपक्व किया और इसे एक संगठित रूप में प्रस्तुत करने का साहस किया।

गांधीजी ने अपने शिक्षा-दर्शन को तत्कालीन भारतीय समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में जमाया। अंग्रेजी शिक्षा प्राय: बौद्धिक थी जिसने शिक्षित एवं श्रमिक के बीच भारी खाई पैदा कर दी। उच्च शिक्षा प्राप्त कर लेने पर भी जीविकोपार्जन दुर्लभ था। बुद्धिजीवी गरीब श्रमजीवियों का लाभ उठाकर शोषण कर अपने वैयक्तिक उन्नयन में लगे हुए थे। विदेश में निर्मित सामग्री से देश इतना आक्रान्त था कि गाँवों में भी बेकारी और गरीबी बढ़ी हुई थी और ग्रामीण जीवन पूरा अस्त-व्यस्त हो गया था। अतएव गाँवों के आर्थिक जीवन को सुधारने का एक ही तरीका गांधीजी की समझ मे आया कि शिक्षा का उससे निकट सम्बन्ध स्थापित किया जावे। उन्होंने किसी लघु ग्रामीण उत्पादन को आर्थिक जीवन का आधार बनाने की सोची। इससे व्यक्ति की शक्तियों को विकास करने का अवसर मिलेगा और प्राप्य सामग्री के उपयोग को स्वतन्त्रता प्राप्त होगी। ऐसी शिक्षा छोटे से छोटे व्यक्ति के स्वातंत्र्य प्रेम और अहिंसात्मक भावना से सम्बद्ध होगी। अतएव उन्होंने शिक्षा को किसी मूलोद्योग पर आधारित करने का निश्चय किया। इस मूलोद्योग से न केवल हाथ का प्रशिक्षण होगा वरन् मानस और हृदय का भी प्रशिक्षण होता चलेगा। यह केवल श्रम के सम्मान को प्रतिष्ठित न करेगा वरन् ईमानदारी से जीवकोपार्जन करने का साधन भी जुटायेगा। अर्थाभाव से शिक्षा को सार्वजनिक बनाने में जो कठिनाई थी उसका भी किसी सीमा तक इससे निराकरण हो सकेगा।

बुनियादी शिक्षा योजना

इस प्रकार अपने चालीस वर्ष के शिक्षा अनुभवों तथा प्रयोगात्मक निष्कर्षों को गांधीजी ने देश-काल की पृष्ठभूमि मे रखकर अक्टूबर १६३७ मे वर्धा सम्मेलन मे शिक्षाविदों के सम्मुख रखा जो बाद में वर्धा योजना के नाम से प्रसिद्ध हुई। इसे प्राय बुनियादी शिक्षा अथवा बेसिक शिक्षा भी कहते हैं, क्योंकि इस योजना में आधारभूत, बुनियादी एवं न्यूनतम किन्तु अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की गई है, और इस शिक्षा का आधार एक बेसिक क्राफ्ट, एक मूलोद्योग रखा गया है। इस शिक्षा का उद्देश्य हाथ और ज्ञानेन्द्रियों की शिक्षा से प्रारम्भ कर मस्तिष्क तथा हृदय का उन्नयन करना तथा

छात्र को शाला से समाज तथा ईश्वर की ओर अग्रसर करना है। वेसिक शिक्षा योजना के पाँच मूल सिद्धान्त हैं :

(१) सात से चौदह वर्ष तक के वालक और वालिकाओं को निशुल्क अनिवार्य शिक्षा दी जावे। निशुल्क होने से सभी अमीर-गरीव समान रूप से शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं और अनिवार्य वनाकर सार्वभौमिक रूप से न्यूनतम आधारभूत (फण्डामेण्टल) शिक्षा सभी को देने की व्यवस्था की गई है।

(२) शिक्षा किसी हस्तकौशल या उत्पादन कार्य के माध्यम से दी जावे जो पाठशाला में दी जाने वाली सम्पूर्ण शिक्षा का केन्द्र विन्दु माना जायगा। हस्तकौशल से तात्पर्य हाथ से किये जाने वाले ऐसे कौशल पूर्ण कार्य से है जो लाभप्रद और सुन्दर हो। वह वौद्धिक शिक्षा का एक साधन मात्र न होगा वल्कि वह तो साधन और साध्य दोनों ही होगा। हस्तकौशल को शिक्षा का माध्यम वनाने के फलस्वरूप शैक्षिक दृष्टि से ज्ञान अधिक ठोस एवं यथार्थ होगा तथा जीवन से सम्वद्ध होकर शिक्षण के समन्वय सिद्धान्त को अधिक व्यावहारिक वनायेगा। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह छात्रों की विशुद्ध वौद्धिक एवं सैद्धान्तिक शिक्षण की निरंकुशता से सुरक्षा करेगा जिसके प्रतिकूल उनका क्रियाशील स्वभाव सदा स्वस्थ विरोध व्यक्त किया करता है। सामाजिक दृष्टि से हस्त कौशल का माध्यम श्रम एवं वुद्धिजीवियों के वीच के वर्तमान पूर्वाग्रहों को खाई को पाट देगा जो दोनों के ही लिये सर्वथा हानिप्रद हैं। यदि यह समझदारी और निपुणता से किया गया तो आर्थिक पार्श्व में इससे कामगारों की उत्पादन-क्षमता वढ़ेगी और वे अपने अवकाश का समुचित उपयोग कर सकेंगे।

(३) तीसरा सिद्धान्त स्वालम्वन का है। उसके अनुसार शिक्षा अपने को चलाने का वहुत कुछ खर्च हस्तकौशल द्वारा वनाये सामान को वेचकर स्वयं ही निकाल ले। छात्रों द्वारा वने सामान से कम से कम शिक्षक का वेतन निकल आयेगा। इस आर्थिक पक्ष के आ जाने से वालकों का काम खेल-तमाशा न होकर वास्तविक उत्पादन कार्य होगा और सीखने-सिखाने के कार्य को आंकने का एक वाहरी मापदण्ड भी रहेगा। यह सिद्धान्त

शिक्षा को वास्तविक जीवन से सम्बद्ध करता है। समाज के कार्यों मे योगदान और क्रय-विक्रय तथा उत्पादन-खपत की प्रक्रियाओ का यह ज्ञान कराता है। इसका दूसरा मन्तव्य जीवकोपार्जन की समस्या को हल करना है। बेरोजगारी के चक्कर मे आने की अपेक्षा छात्र शाला के सीखे उद्योग-धधे से अपनी रोटी कमा सकते हैं।

इस सिद्धान्त को गांधीजी ने बुनियादी शिक्षा की कसौटी—एसिडटेस्ट—कहा था। किन्तु वे हठपूर्वक इसे बाध्य करने के पक्ष में न थे। उन्होने कहा है, "शिक्षा को सफलता की जाच स्वावलम्बन से न होगी वरन् इस बात से होगी कि वैज्ञानिक विधि से हस्तकौशल सीखने में छात्र की सम्पूर्ण योग्यतायें विकसित हुई हैं अथवा नही।"[१४]

(४) शिक्षा मातृभाषा द्वारा दी जाय। इस सिद्धान्त को अपनाकर शिक्षण के स्वाभाविक मार्ग को स्वीकार किया गया है, और विदेशी भाषा के माध्यम से जो शक्ति क्षय, अपव्यय और हानियां होती हैं उन्हे दूर किया गया है। इस सम्बन्ध मे महात्मा गांधी के विचारो को डा० जाकिर हुसैन ने अपनी रिपोर्ट मे इस प्रकार व्यक्त किया है "सब तरह की बुनियाद मातृभाषा की माकूल शिक्षा है। जब तक आदमी पुरअसर ढग से बातचीत करना और सही-सही और साफ-साफ लिखना-पढना नही जानता, उसमे ख्यालो की सेहत और सफाई नही आती। इसके लिए भाषा वह जरिया है जिसके जरिये बच्चों को अपने देश के विचारो, भावनाओ और हौसलो की बहुत बडी विरासत हासिल होती है। दूसरे, भाषा वह कुदरती जरिया है जिसके द्वारा बच्चा सुन्दर चीजो को सराहने के भावों को जाहिर करता है और भाषा तथा उसका अदब साहित्य-आनन्द और सराहना का साधन बन जाता है।"[१५]

---

१४. 'बेसिक नेशनल एजूकेशन' नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, १९५५, पृष्ठ ५२,

१५. बेसिक नेशनल एजूकेशन, पृष्ठ ६६.

(५) वेसिक शिक्षा योजना का आदर्श ऐसे नागरिक निर्माण करना है जो देश में उत्पादन कार्य करने वाले हों, प्रत्येक लाभदायक कार्य को आदर दें, इज्जत के काबिल समझें, और स्वयम् अपने पैरों पर खड़े हो सकें। शिक्षा भावी नागरिकों में वैयक्तिक महत्ता, गरिमा एवं दक्षता की भावना जागृत करे जिससे उनमें अपने को स्वतः सुधारने की इच्छा उत्पन्न हो और मिलजुलकर काम करके समाज सेवा करना आवे। वे अपनी समस्याओं को समझ सकें, अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों को भली भांति जान लें। वे अपने शिक्षाकाल में ऐसा सहकारितापूर्ण जीवन-यापन करें जिसके समस्त कार्यो में समाज सेवा भावना सर्वोपरि हो जिससे वे ऐसा अनुभव कर सकें कि राष्ट्रीय शिक्षा के पुर्ननिर्माण में वह सीधे व्यक्तिगत रूप से भाग ले रहे हैं।

इन सिद्धान्तों के अनुकूल शिक्षा-संगठन और पाठ्यक्रम तैयार करने के लिए डा. जाकिर हुसेन की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त हुई, जिसकी रिपोर्ट वेसिक नेशनल एजूकेशन के नाम से प्रकाशित हुई। सन् १९३८ में जब प्रान्तों में कांग्रेसी सरकारें बनी तो इस योजना का राष्ट्रीय स्तर पर प्रयोग किया गया। अनुभव के आधार पर योजना में कुछ संशोधन किए गए विशेषकर समवाय और स्वावलंबन के सिद्धान्तों में। अध्यापन में उत्तम समवाय स्थापित करने की कठिनाइयों को देखते हुए दो और समवाय केन्द्र स्वीकार किए गए—एक प्रकृति, और दूसरा समाज। शैक्षिक सामग्री अब प्रकृति, उद्योग और समाज में से किसी एक केन्द्र से समवायित की जा सकती थी। स्वावलंबन सिद्धान्त में शिक्षक वेतन के माप दण्ड को घटाकर प्रयुक्त सामग्री की लागत मात्र प्राप्त कर लेना मान लिया गया।

किन्तु गांधी जी बराबर अपनी शिक्षा योजना पर चिन्तन करते रहे। 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के बाद जब वे जेल से निकले तो उन्होंने नई तालीम पर परिवर्द्धित विचार व्यक्त किए जिनके आधार पर सन् १९४५ में सेवा ग्राम के शिक्षा सम्मेलन द्वारा समग्र शिक्षा की योजना प्रस्तुत की गई। नई तालीम से उनका अभिप्राय था जीवन की शिक्षा से 'जिसका क्षेत्र गर्भ मे आने के क्षण से कब्र में जाने तक का है। शिक्षा जीवन के समग्र क्षेत्र का स्पर्श करती है।

जीवन की कोई छोटी से छोटी बात भी ऐसी नही है जिसका शिक्षा से सबध न हो। स्वच्छता तथा स्वास्थ्य, नागरिकता, कार्य और आराधना, खेल और मनोरजन, यह सब पाठ्यक्रम से विलग विषय नही हैं, वरन् समरस एव सन्तुलित जीवन विकास की अंतर्सबधित प्रक्रियायें हैं। शिक्षा की ऐसी कल्पना जीवन के साथ व्यापक हो जाती है।' ऐसी शिक्षा से गाधीजी का अंतिम लक्ष्य एक सतुलित सतुष्ट समाज की स्थपना थी जिसमें साधारण व्यक्ति अपनी अन्त-र्निहित शक्तियों को विकसित कर शन्तिमय, सतुष्ट एव प्रसन्न जीवन व्यतीत करे। भारतीय जनता के उद्धार का साधन ऐसी शिक्षा ही बन सकती थी।

नई तालीम की चार अवस्थायें की गईं। पहिली अवस्था मे सम्पूर्ण समुदाय की शिक्षा का कार्यक्रम था, जिससे उसका प्रत्येक सदस्य प्रसन्न, स्वस्थ, स्वच्छ एव आत्मनिर्भर जीवन व्यतीत कर सके। दूसरी अवस्था मे सात वर्ष से कम आयु वाले शिशुओ की पूर्व वेसिक (प्री—वेसिक) शिक्षा आती है, जिसमे शिक्षक तथा अभि-भावक और घर तथा समाज को शिशुओ की शक्तियो को विकसित कराने मे हाथ वटाना पडेगा। तीसरी अवस्था वेसिक शिक्षा की सात से पन्द्रह वर्ष आयु पर्यन्त कार्यक्रम की है, जो वर्धा योजना के अन्तंगत आ गई है। चौथी अवस्था उत्तर-वेसिक (पोस्ट-वेसिक) की है जो वेसिक शिक्षा पूर्ण होने पर प्रारम्भ होगी और जिसमें किशोरो की पंद्रह से अठारह वर्ष तक की ऐसी शिक्षा व्यवस्था की जावेगी कि वे वयस्क जीवन के कौटुम्बिक भार को वहन करने योग्य बन सकें। इसमें 'शाला ग्राम' मे रहकर विभिन्न प्रकार की उत्पादन क्रियाओं को सीखने का अवसर मिलेगा जिनसे व्यवस्थित ज्ञान की प्राप्ति तो होगी ही, समाज का संचालन भी होगा। जिनकी योग्यता एवं रुचि प्रखर हुई वे विश्वविद्यालयों मे उच्च व्यावसायिक प्रशि-क्षण भी प्राप्त कर सकेंगे।

वेसिक शिक्षा में गत्यात्मकता है जिसका परम्परावादी शिक्षा में सर्वथा अभाव है। इसकी लघु उद्योगों द्वारा उत्पादन की विकेन्द्रित विधी समाजवादी अर्थव्यवस्था के मूल में है। प्रत्येक स्थान के उपयुक्त उद्योग चयन करने में सावधानी परम आवश्यक है। जो उद्योग ग्रामीण क्षेत्रो के लिए उपयुक्त होंगे, वे नागरिक क्षेत्रो के लिये नही। आवश्यकतानुसार शहरी क्षेत्रो में तकनीकी ज्ञान से सवद्ध

उद्योग चलाने पर ध्यान देना चाहिए था। किन्तु ग्रामीण उद्योगों पर ही बल होने के कारण लोगों ने शिक्षा-योजना को ग्रामीण क्षेत्रों के उपयुक्त ठहराया। स्वावलंबन सिद्धान्त पर अधिक जोर न देने के कारण बेसिक पाठशालाओं का व्यय परम्परागत शालाओं की अपेक्षा कहीं अधिक हो गया। ईन कारणों से नइ तालीम और पुरानी शिक्षा में भेद बढ़ता गया और बेसिक शिक्षा वांछित प्रगति न कर सकी।

स्वतंत्रता प्राप्त होने पर भारत सरकार ने बेसिक शिक्षा-प्रणाली को स्वीकार कर समस्त देश में चलाया किन्तु अधिकारियों और कर्मचारियों की बेसिक शिक्षा में संदिग्ध आस्था तथा उदासीनता, उपयुक्त प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी, और कुछ कथित विशेषज्ञों का महात्मा जी के नैकट्य की दुहाई देकर इसकी ऊटपटाँग व्याख्या करना इसकी मंद प्रगति के कारण बताये जाते हैं। "थोड़ी कही कबीर, बहुत कही संतन" की लोकोक्ति बेसिक शिक्षा के संबंध में चरितार्थ होती है। इसकी ऐसी दशा देखकर उसके एक पवर्तक ने कहा, "बुनियादी तालीम जैसी कुछ वह आज चल रही है, एक धोखा मात्र है।" केन्द्रीय शिक्षा मंत्री ने धीमी आवाज में उसकी असफलता की ओर संकेत किया। शासन के अन्य अधिकारी प्रवक्ताओं ने उस पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता निरूपित की। सब मिलाकर आज बेसिक शिक्षा एक गुड़ भरा हंसिया बन गई है जो न निगला जा सकता है, न उगला जा सकता है। यदि महात्मा गाँधी आज जीवित होते तो वे अवश्य इस संबध में कोई क्रान्तिकारी घोषणा करते जैसी उन्होंने स्वातंत्र्योत्तर कांग्रेस संस्था के संबंध में की थी।

गांधीजी के शिक्षा संबंधी अन्य विचार

स्वस्थ शैक्षिक सिद्धान्तों पर भारतीय-जनमानस के उपयुक्त शिक्षा योजना प्रस्तुत करने के अतिरिक्त गांधीजी शिक्षा की प्रायः सभी महत्वपूर्ण समस्याओं पर अपने विचार समय-समय पर व्यक्त करते रहे हैं। उनमें से कुछ प्रमुख विचारों की चर्चा करना यहां हमारा अभीष्ट होगा।

शिक्षा का माध्यम और अंग्रेजी : पहिली समस्या जिस पर आज बडा विवाद फैला है अंग्रेजी पढने को है । इस पर गाधीजी ने बडे स्पष्ट शब्दों मे कहा था, "अंग्रेजी भाषा को उसके अपने स्थान में रखना मुझे प्रिय है, किन्तु यदि वह ऐसा स्थान हडप लेती है जो उसका नही है, तो मैं उसका कट्टर विरोधी हूँ। मै उसे दूसरी वैकल्पिक भाषा का स्थान दे सकता हूँ, वह भी स्कूल की पढाई मे नही विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम मे । यह हमारी मानसिक दासता है कि हम समझते हैं कि अंग्रेजी विना हमारा काम नही चल सकता।"[१६] "अंग्रेजी अन्तरराष्ट्रीय व्यापार को भाषा है, कूटनीति की भाषा है, उसमे अनेक बढिया साहित्यरत्न भरे है, और उसके द्वारा हमे पाश्चात्य विचार और संस्कृति का परिचय होता है। इसलिए हममे से कुछ लोगों के लिए अंग्रेजी जानना जरूरी है। वे राष्ट्रीय व्यापार और अन्तरराष्ट्रीय कूटनीति के विभाग चला सकते हैं और राष्ट्र को पश्चिम का उत्तम साहित्य, विचार और विज्ञान दे सकते हैं यह अंग्रेजी का उचित उपयोग होगा।"[१७] इसका कारण बताते हुए उन्होने कहा "भारत को अपनी जलवायु, अपने ही प्राकृतिक सौन्दर्य और अपने ही साहित्य में फलना-फूलना होगा फिर चाहे वह इगलैण्ड के मुकाबले में कितना भो घटिया क्यो न हो।"[१८]

गाधीजी मातृभाषा को शिक्षा-माध्यम बनाने पर बडा जोर देते थे, और अंग्रेजी माध्यम से होने वाले आपराधिक अपव्यय का समाप्त करने के लिए अविलम्ब माध्यम परिवर्तन कराना चाहते थे; चाहे उससे उच्च शिक्षा में किंचित काल तक अस्तव्यस्ता ही क्यों न हो जाये । उनका विश्वास था कि ऐसा करने से पाठयपुस्तकों का अभाव तुरन्त दूर होगा जिसकी दुहाइ देकर लोग माध्यम नही बदलने देते ।

---

१६ मो० क० गाधी–'नई तालीम की ओर' (नवजीवन १९५९) पृष्ठ ८५

१७ यग इण्डिया, २–२–१९२५

१८ 'नई तालीम की ओर' पृष्ठ ६७

राष्ट्र-भाषा : राष्ट्र भाषा के निर्णयार्थ गाँधीजी ने पाँच निकष बनाए थे और उन पर हिन्दी को पूरा उतरता पाया। जो लोग हिन्दी के राष्ट्र भाषा होने से अन्य प्रान्तीय भाषाओं को धक्का लगने की बात करते थे उनका भय वे अज्ञानता से उत्पन्न मानते थे। वे राष्ट्र भाषा हिन्दी के भवन की आधार शिला प्रान्तीय भाषाएं बताते थे और एक भाषा को दूसरे की पूरक कहते थे। लिपि के संबंध में उनका कहना था कि—"यदि मेरी चले तो मैं देवनागरी और उर्दू लिपि का सीखना अनिवार्य कर दूं।"[१९] रोमन लिपि उन्हें अस्वीकार थी।

उनका मत था कि प्रत्येक सुसंस्कृत भारतीय को अपनी प्रादेशिक भाषा के अतिरिक्त यदि वह हिन्दू है तो संस्कृत जानना चाहिए, यदि मुसलमान है तो अरबी, यदि पारसी है तो फारसी और इन सबको हिन्दी जानना चाहिए। उनका अनुभव था कि एक भाषा को अच्छी तरह सीख लेने पर अन्य भाषायें सीखना सरल होता है। अंग्रेजी माध्यम का बोझ हट जाने से कई भाषायें सीखना कठिन न होगा। अतएव वे उच्च शिक्षा में प्रादेशिक भाषा के अतिरिक्त हिन्दी, संस्कृत, फारसी, अरबी और अंग्रेजी पढ़ाने की व्यवस्था चाहते थे।[२०]

धर्म-शिक्षा : गाँधी जी का कहना था कि "मेरे लिए धर्म का अर्थ सत्य और अहिंसा है या यों कहिए केवल सत्य है क्योंकि अहिंसा सत्य की खोज का आवश्यक एवं अनिवार्य साधन होने के कारण सत्य में समाई हुई है।"[२१] धर्म शिक्षा के पाठ्यक्रम में अपने धर्म को छोड़ कर अन्य सभी धर्मों के सिद्धांत होना चाहिए जिन्हें विद्यार्थी श्रद्धा भावना और उदार सहिष्णुता से समझे और सराहे। उन्हें किसी विरोधी अलोचक के भाषान्तर से न पढ़ा जाय वरन् किसी भक्त की रचना के अध्ययन द्वारा समझा जावे। गांधी जी नीति को धर्म की सार वस्तु मानते थे और उसी की शिक्षा पर बल देते थे। सब धर्मों के इन समान तत्वों की शिक्षा वे शिक्षक के दैनिक जीवन एवं आचरण से प्राप्त करना चाहते थे। भारतवर्ष में अनेक धर्म और अनेक

---

१९. नई तालीम की ओर, पृष्ठ ८५

२०. नई तालीम की ओर, पृष्ठ ६४

२१. नई तालीम की ओर, पृष्ठ ५८

सम्प्रदाय होने के कारण एकता के बजाए झगडा खडा होने का डर था। अतएव उन्होंने अपनी वर्धा शिक्षा योजना मे धर्म शिक्षा की कोई व्यवस्था नही रखी थी, "कौन कहता है कि इस शिक्षा मे धार्मिक शिक्षा का अभाव है। मैंने इस योजना के द्वारा स्वावलम्बन के महान धर्म को पढाने का प्रबंध किया है।"

स्त्री शिक्षा: स्त्रियो के लिए महात्मा गांधी के मन में बडा आदर था और वे उनकी शिक्षा के हामी थे। उनका मत था कि स्त्रियों का प्रमुख कार्य क्षेत्र घर का जीवन होता है अतएव उन्हें एक सफल गृहिणी और सतति के पोषण एव प्रशिक्षण की पूरी शिक्षा दी जानी चाहिए।

आरम्भ में उनके और बालको के विषय उभयनिष्ठ हो सकते हैं किन्तु, आगे चलकर स्त्रियो के उपयुक्त विशिष्ठ शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए। सह-शिक्षा के प्रश्न पर वे उदार दृष्टि रखते थे और आठ वर्ष तक उसे उचित मानते थे, उसके उपरात यदि बालक और बालिकाएं चाहे तो सोलह वर्ष तक साथ-साथ पढ सकते हैं। वे इसकी कठिनाइयों से अवगत थे इसीलिए चाहते थे कि बालिकाओ को आत्म-सुरक्षा का प्रशिक्षण अनिवार्य रूप से दिया जाय जिससे वे दुष्टो की छेड़-छाड से अपनी रक्षा कर सकें तथा दहेज के भूखे नवयुवकों को अच्छा सबक सिखा सके। छोटे बच्चो को पढाने के लिए वे पुरुषों की अपेक्षा माताओ को अधिक उपयुक्त समझते थे।

सेक्स-शिक्षा: सेक्स शिक्षा पर गांधीजी के विचार आधुनिकतम थे। वे किशोरो को प्रजनन अंगों तक का ज्ञान कराने के पक्ष में थे किन्तु वे इस शिक्षा का उद्देश्य सेक्स भावना का शोधन, उसका पूर्ण नियत्रण तथा उस पर विजय प्राप्त करना मानते थे। इस विषय के अध्यापन के लिए वे ऐसे ही शिक्षकों को उपयुक्त समझते थे जिन्होंने आत्म संयम और अपने भावावेगो पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त कर लिया हो।

शारीरिक शिक्षा यह शरीर को स्वस्थ रखना परम आवश्यक समझते थे और उनका यह विश्वास था कि उद्योग करने में बालकों को पर्याप्त शारीरिक परिश्रम करने का अवसर मिलेगा। वे अर्थसाध्य खेलो के पक्ष मे न थे वरन् भारतीय खेलो को जो बिना खर्च के खेले जा सकते हैं उचित समझते थे। वे स्त्रियो के लिए टहलने जाना

और वाहनों के प्रयोग की अपेक्षा पैदल चलना लाभप्रद मानते थे। इसमें वे सरलता और आत्मनिर्भरता पर विशेष बल देते थे।

वयस्क शिक्षा: वयस्कों की निरक्षरता दूर करने पर गांधी जी इतना बल नहीं देते थे जितना उनकी अज्ञानता दूर करने पर। अतएव ग्रामीणों के मस्तिष्क को शिक्षित करने के लिए वे ऐसी शिक्षा की व्यवस्था चाहते थे जो उनके सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा स्वास्थ्य संबंधी जीवन से सम्बद्ध हो। वह उन्हें बुरे आचार-व्यवहार जैसे बालविवाह, मद्यपान, छुआछूत, अंधविश्वास आदि को त्यागने की प्रेरणा दे। वह उनके दैनिक कार्य-कलापों को आधार मानकर दी जावे, जिससे उनके मन में और अधिक ज्ञान प्राप्ति की जिज्ञासा बढ़े और साक्षरता को स्थायी बना सके। उनकी दो प्रमुख समस्यायें भोजन और कपड़े की होती हैं। उनके हल के लिए गांधी जी बेसिक शिक्षा की भांति किसी जीवन संबंधी उद्योग द्वारा उन्हें शिक्षा देने के पक्ष में थे। इस शिक्षा से वे उनमें परिवर्तन और सुधार की भावना उत्पन्न करना चाहते थे जिससे वे स्वस्थ नैतिक जीवन सहकारिता पूर्वक व्यतीत कर सकें।

उच्च शिक्षा: गांधी जी उच्च शिक्षा का भार शासन पर न डालना चाहते थे वरन् उसे जनता तथा निजी संस्थाओं का उत्तरदायित्व मानते थे। वे जनता के करों से विश्वविद्यालय चलाने के पक्ष में न थे। विश्वविद्यालयों को केवल परीक्षण संस्थायें होना चाहिए जो अपने प्राप्त शुल्क पर स्वावलंबी बने। उनका पक्का विश्वास था कि कला विषयों को पढ़ाना नितांत अपव्यय है क्योंकि इससे शिक्षित वर्ग में बेकारी बढ़ती है और यह छात्रों के मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य को भी नष्ट करते हैं। "समस्त व्यावसायिक शिक्षा को वे राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुरूप करना चाहते थे और उसका उत्तरदायित्व औद्योगिक संस्थानों पर डालना चाहते जो अपनी आवश्यकताओं के अनुसार व्यक्तियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करें। टाटा को अपने लिए यांत्रिकों का प्रशिक्षण करना चाहिए, विरला को अपने कामगारों को प्रशिक्षित बनाना चाहिए। अस्पतालों को अनुदान प्राप्तकर डाक्टरों की शिक्षा देनी होगी और बड़े बड़े फार्मों को कृषि शिक्षा का भार लेना होगा। सैद्धान्तिक परीक्षा उत्तीर्ण हो जाने के बाद क्षेत्रीय अनुभव देने की वर्तमान पद्धति उन्हें मान्य न थी। वे अनुभव द्वारा

ज्ञान प्राप्त कराने पर बल देते थे। उच्च शिक्षा के लिए विदेशों मे पढाना उन्हे पसद न था क्योकि विदेशी शिक्षा प्राप्त कर लेने पर नवयुवक देशीय आवश्यकताओं के काबिल नही रहते।

गाधी जी के ऐसे विचारो के कारण कभी-कभी लोग उन्हे वैज्ञानिक शिक्षा का विरोधी कह बैठते हैं। किन्तु यह असत्य हैं क्योकि उन्होंने कहा है "मैं विभिन्न विज्ञानो की शिक्षा की महता को मानता हूँ। मगर हमारे बच्चो को भौतकी और रसायन को ज्ञान की अति नही करना चाहिए। हम खर्चीली प्रयोगशालायें और ऊँचे भव्य भवन बनवाने की हैसियत में नही हैं। हमे सुगमता से देश मे प्राप्य यंत्रों और औजारो से ही काम चलाना होगा। मेरी योजना के अन्तर्गत अधिक अच्छे पुस्तकालय, उत्तम प्रयोगशालाये तथा उच्च अनुसधानालय होगे। इनमे ऐसे वैज्ञानिक, यान्त्रिक और विशेषज्ञ काम करेंगे जो दूसरो की नकल न करके वास्तविक सच्ची शोध करेंगे जिसका राष्ट्रीय आवश्यकताओ से सीधा सबध होगा।'[२२]

उनका स्पष्ट मत था कि 'विश्वविद्यालयों को शानदार इमारतो और सोने चांदी के भण्डारो की कभी आवश्यकता नही है। उसे तो सुबुद्ध जनता की सद्‌भावना और सजग अध्यापको की कार्य शीलता चाहिए जो सत्य की खोज मे निरन्तर लगे रहे। उनका उद्देश्य भारत की विभिन्न सस्कृतियो का सामजस्यीकरण और सश्लेषण करके राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ बनाना है।'[२३]

गांधी जी का शिक्षा दर्शन

शिक्षा की इतनी सुन्दर और सम्पूर्ण योजना प्रस्तुत करने के कारण जिसमे आधुनिकतम शिक्षा सिद्धान्तो का निचोड हो, प्राय लोग यह कहते है कि गाधीजी पर पाश्चात्य शिक्षाविदो का प्रभाव पड़ा है। किन्तु गाधीजी ने स्वयं कहा है, "मैं कोई शिक्षा शास्त्री नही हूं। अपने अनुभवों और प्रयोगो के आधार पर मैंने यह योजना सुझाई है।" टालस्टाय और रस्किन के प्रभाव को उन्होने स्वय स्वीकार किया है। जिस व्यक्ति ने सशक्त साम्राज्यवादियो से भिड़ने मे कभी किंचित झूठ का सहारा न लिया हो उसके उस कथन को

---

२२. नई तालीम की ओर, पृष्ठ ३०,९८,९९

२३. नई तालिम की ओर, पृष्ठ १०५

अवहेलना करके कुछ लोग अज्ञान और प्रमादवश ड्यूई आदि के प्रभाव की ओर सकेत कर वैठते हैं। वे यह नहीं समझते कि शिक्षा समाज का एक कम (फंक्शन) होती है। और शिक्षा की एकमात्र विषय सामग्री अपनी समस्त अभिव्यक्तियों युक्त जोवन होता है। जो समाज की अंतरंग जानकारी रखता हो, जो जीवनकला का मर्मज्ञ हो, उसे शिक्षा के तत्वों को पहचानने में क्या कठिनाई हो सकती है? दूसरे गांधी जी के हर क्षेत्र के कार्य और योजनायें उनके जीवनदर्शन से अनुप्राणित होती थीं। उनकी शिक्षा योजना में भी उनका जीवनदर्शन स्पष्ट मुखरित होता है। हम पहिले उनके जीवन दर्शन का ही संक्षेप में उल्लेख करेंगे जिससे उनका शिक्षादर्शन उद्भूत हुआ है।

गांधीजी के सारे जीवनदर्शन का निचोड़ दो शब्दों में निहित है-सत्य और अहिंसा। गांधीजी सत्ता के स्वरूप को सत्य के रूप में मानते थे कि "सत्य ही ईश्वर है।" सत् का अभिप्राय अस्तित्व से है अतएव सत्य के विना किसी भी वस्तु का अस्तित्व सम्भव नहीं। सत् की ओर जव चित् अथवा चेतन अग्रसर होने में आनन्द का अनुभव करे तो वह सव सत्य की शोध मानी जायगी। अतः सत्य की शोध आनन्दानुभूति का पर्याय है और यह किसी अन्तंप्रेरणा के विना प्रस्तुत नहीं होती। गांधीजी इस अन्तंप्रेरणा को ईश्वर के अस्तित्व की अनुभूति मानते थे।

भौतिक मोहजाल और संवेगों के कारण मनुष्य सत्य को स्पष्ट नहीं देख पाता। उस जाल को काटने के लिए तथा संवेगों को संयत वनाने के लिए शक्ति की आवश्यकता होती है यह शक्ति अहिंसा है। इसे मन, वचन, कर्म में समाविष्ट होना चाहिये। वैदिक कर्म काण्डों में जीवों की वलि-वध करना प्रचलित था और उस जीवहिंसा के विरोध में पहिले भी कुछ धर्मो ने अहिंसा के सिद्धांत पर वल दिया था। किन्तु गांधीजी ने अहिंसा की उस कड़ी को विकास की चरम सीमा तक पहुंचाया जिसमें उन्होंने मन, वाणी, कर्म और आत्मा में भी अहिंसा का सृजन अनिवार्य कर दिया। अहिंसा के इस क्रान्ति-कारी भाष्य ने एक अपूर्व अलौकिक शक्ति का प्रतिपादन किया।

गांधीजी कहते थे कि प्रत्येक जीवधारी में ईश्वर का निवास है। यदि हम प्रयत्न करें तो हम प्रत्येक प्राणी में ईश्वर को पहिचान

सकते है। यह प्रयत्न सम्भव बनता है प्रेम के द्वारा जिसमे "वसुधैव कुटुम्बकं" की भावना जागृत होती है। जगत के समस्त प्राणियो के साथ एकात्मीयता ही अहिंसा है जिसे हम सत्य का व्यवहारिक रूप कह सकते हैं। अतएव सत्य प्राप्ति के लिए अहिंसा, विश्वप्रेम और मानव सेवा ही साधन है। अहिंसा साधन से पूरा लाभ उठाने के लिए यह आवश्यक है कि कुछ व्रतो का पालन किया जावे। यह व्रत है ब्रह्मचर्य, अस्वाद, अस्तेय, अपरिग्रह, अभय, आत्मसयम आदि। अहिंसा का अर्थ केवल इतना ही नही कि किसी की हिंसा न की जाय। बुरे या निरर्थक विचार मन मे लाना, द्वेष, घृणा तथा अहंकार करना, अन्य का अशुभ चेतना, आवश्यकता से अधिक वस्तु संग्रह करना, दूसरो का शोषण करना, डरना आदि भी हिंसा के ही रूप हैं जो सत्य की साधना मे विघ्न उत्पन्न करते है। गाधीजी श्रीपद्‌भगवत गीता के अनन्य अनुयायी थे और 'योग. कर्मसु कौशलम्" मे विश्वास करते थे, अत. उनके लिए सत्य ही ईश्वर था और अहिंसा थी कर्मयोग की साधना।

ऐसी पृष्ठभूमि मे गाधीजी जीवन का परम लक्ष्य सत्य अथवा ईश्वर की खोज द्वारा मोक्ष की प्राप्ति मानते थे। वे मुक्ति के अन्तिम स्वरूप की चिन्ता इतनी नही करते जितनी इस बात की कि संसार मे कैसे सर्वोत्तम जीवन यापन किया जावे जो मनुष्य को मुक्ति-पथ पर अग्रसर करे। अत वे नीतिशास्त्र को शिक्षा का केन्द्र मानते थे। उनका कहना था कि "आत्मा का विकास करना, चरित्र-निर्माण करना मनुष्य को ईश्वरीय ज्ञान और आत्मबोध की ओर ले जाने मे सहायता पहुंचाता है। मेरा विश्वास है कि बालक के प्रशिक्षण का यह एक सारभूत अ ग है और आत्म सस्कार के बिना सभी प्रकार के प्रशिक्षण व्यर्थ और हानिकारक भी हो सकते हैं।"[२४] वे वास्तविक शिक्षा उसे मानते थे जो मुक्ति प्रदान करे और इसीलिए उन्होने अपने गुजरात विद्यापीठ का निर्देश वाक्य (मोटो) 'सा विद्या या विमुक्तये' रखा था। इस वाक्य की व्याख्या करते हुए उन्होने कहा था, "शिक्षा का तात्पर्य केवल आत्मिक ज्ञान नही है और न मुक्ति का मतलब है मृत्यु के बाद की मुक्ति। ज्ञान मे वे सभी प्रकार के प्रशिक्षण सम्मिलित हैं जो मानव-सेवा के लिए लाभप्रद हैं, और मुक्ति का अर्थ सभी

---

२४. यग इण्डिया २०-३-१६३०

प्रकार की दासता से मुक्ति, यहां तक कि इसी जीवन में।"[२५] आत्मा की स्वतन्त्रता सर्वश्रेष्ठ है, इसके लिए अन्य प्रकार की स्वतन्त्रताओं, बौद्धिक, आर्थिक, राजनीतिक की प्राप्ति आवश्यक है।

गांधीजी ही एक ऐसे अनोखे शिक्षा दार्शनिक हुए हैं जिन्होंने शिक्षा के एक नहीं अनेक उद्देश्य निर्धारित किए हैं। किन्तु इनमें कोई भी अनन्य उद्देश्य नहीं, सब इसी शाश्वत उद्देश्य में सम्मिलित हैं।

गांधीजी का कहना था कि "समस्त ज्ञान का उद्देश्य चरित्र-निर्माण होना चाहिए। सारा अध्ययन, समस्त ज्ञान और सभी कुछ-यदि वह हमारे हृदय को शुद्ध नहीं बनाता तो हमारे लिए व्यर्थ है।" अतएव आत्म संस्कार के लिए चरित्र-निर्माण पर गांधीजी बड़ा बल देते थे। दूसरे शिक्षा में सांस्कृतिक विकास के उद्देश्य को वह महत्व-पूर्ण बताते थे। किन्तु पाश्चात्य शिक्षाविदों को भांति वे संस्कृति को बौद्धिक कार्य की उपज नहीं मानते थे, उसे तो वे आत्मा का गुण बताते थे जो सभी मानव-व्यवहार में व्याप्त रहता है। शिक्षा का तीसरा उद्देश्य है जीविकोपार्जन। उनका मत था कि जब तक मनुष्य, भोजन, वस्त्र, निवास की बुनियादी आवश्यकताओं से मुक्त नहीं होता, वह भौतिक, नैतिक एवं बौद्धिक प्रगति नहीं कर सकता। अतएव विद्यालय छोड़ते समय उसमें इतनी क्षमता अवश्य आ जानी चाहिए कि वह अपनी जीवका कमाने में आत्मनिर्भर बन सके।

गांधीजी शिक्षा के वैयक्तिक और सामाजिक उद्देश्यों में कोई विरोध नहीं समझते थे। बिना किसी भेदभाव के वे प्रत्येक मनुष्य के व्यक्तित्व के प्रति सम्मान का भाव रखते थे। उसके शरीर, मन और आत्मा के सभी गुणों को विकसित करना चाहते थे। वे उसकी मूल प्रवृतियों और इच्छाओं के दमन के पक्ष में न थे वरन् उन्हें दिशान्तरित कर देना चाहते थे। वह उसकी मूल प्रेरणाओं और संवेगों को अन्तर्प्रेरणा के अनुकूल ढालना चाहते थे। उनका विश्वास था कि आत्मबोध की प्राप्ति आत्मत्याग के बिना नहीं हो सकती। अतः आत्मनिग्रह तथा समाज सेवा को व्यक्तिगत उद्देश्य के अन्तर्गत मानते थे। व्यक्ति का ऐसा विकास किसी समूह या समाज के माध्यम में ही सम्भव है, वह शून्य में तो नहीं हो सकता। अतएव वे

---

२५. यंग इण्डिया २०-३-१९३०

अनेकता में एकता की उपलब्धि आवश्यक समझते थे। इसीलिए वे वैयक्तिक विकास और सामाजिक विकास को अन्योन्याश्रित मानते थे। व्यक्ति के विकास मे समाज का विकास सम्भव बनता है और समाज के विकास में व्यक्ति का। व्यक्ति की उन्नति राष्ट्र की प्रगति पर निर्भर करती है और राष्ट्र की व्यक्ति की उन्नति पर। इस राष्ट्रीयता का अन्तिम लक्ष्य वे विश्वमानवता मे लय हो जाना मानते थे।

स्पष्ट है कि शिक्षा से गाधीजी का तात्पर्य बालक के सर्वोत्तम गुणों का विकास था—उसके शरीर, मन और आत्मा का पूर्ण विकास। मनुष्य की सम्पूर्णता उसके व्यक्तित्व के पूर्ण विकास मे है और यह विकास सर्वतोमुखी, सगतिपूर्ण एव सतुलित होना चाहिए जिससे उनमे पूर्ण सामंजस्य स्थापित हो सके। गाधीजी शक्तिशाली बुद्धि का विकास चाहते थे किन्तु हृदय की शिक्षा के साथ। मस्तिष्क और हृदय की शिक्षा के साथ-साथ वह सुन्दर स्वस्थ शरीर के विकास को भी आवश्यक समझते थे।

अतएव शिक्षा शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा अध्यात्मिक शक्तियों और योग्यताओं की पूर्णतम और सर्वतोमुखी वृद्धि और विकास है जिससे कर्तव्यनिष्ठ, उपयोगी नागरिक बनाये जा सकें। इस अर्थ मे गाधीजी एक क्रान्तिकारी विचारक थे जो शिक्षा द्वारा एक नवीन आदर्श सामाजिक व्यवस्था निर्माण करने की कल्पना करते थे।

गाधीजी शिक्षा का बड़ा व्यापक अर्थ लगाते थे और मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन को ही शिक्षा काल मानते थे। विद्यार्थी का अर्थ वे आत्म-साक्षात्कार अथवा ईश्वर दर्शन का अभिलाषी मानते थे। अतएव उसके लिये वह नित्य प्रार्थना करना अनिवार्य समझते थे। उनका निर्देश था-"खाना छूटे, पर प्रार्थना न छूटे। खाना छोड़ना कितनी ही बार लाभदायक होता है। प्रार्थना का छूट जाना कभी भी लाभ-दायक नहीं हो सकता।"[२६] वे व्यक्तिगत एवं सामूहिक दोनों ही प्रकार की प्रार्थना में विश्वास करते थे और प्रत्येक कार्य के आरम्भ मे ईश्वर को साक्षी कर लेना चाहते थे। गाधीजी शिक्षा में पर्यावरण को बड़ा

२६. आत्मकथा, पृष्ठ, ३३६

महत्वपूर्ण समझते थे। बालक की शक्तियों को पूर्णरूप से विकसित करने के लिए वे उत्तम पर्यावरण आवश्यक मानते थे। इसीलिए अपने शिक्षात्मक प्रयोगों को करने के लिए वे आश्रम का निर्माण करते थे जहाँ प्राकृतिक, सामाजिक और नैतिक पर्यावरण शिक्षा के सर्वथा उपयुक्त होता था। गांधीजी सरल जीवन में विश्वास करते थे। सात्विक भोजन और प्राकृतिक उपचार के सम्बन्ध में उन्होंने बहुत कुछ लिखा है। वे चाहते थे कि विद्यार्थी 'सरल जीवन और उच्च चिन्तन' का आदर्श अपने सम्मुख रक्खे। उसे अपनी सहायता खुद करनी चाहिए और बहुत सी बातों में आत्मनिर्भर, आत्मनियंत्रित होना चाहिए। अपने अध्ययन में ही वह पूर्ण आनन्द प्राप्त करने का प्रयत्न करे।

पाठ्यक्रम के विषय में गांधीजी का कहना था कि "जिस पाठ्यक्रम से और शिक्षा सम्बन्धी जिन विचारों से वर्तमान शिक्षा का ढांचा बना है, वे आक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज, एडिनबरा और लंदन से लाए गए थे। पर वे मूलतः विदेशी हैं और जब तक उनका त्याग न किया जाय, राष्ट्रीय शिक्षा असम्भव है। अंग्रेजी स्कूल कालेजों की इस घटिया नकल से हमारी राष्ट्रीय शिक्षा की व्यवस्था नहीं की जा सकती।"[२७] भारतीय शिक्षा का आदर्श बताते हुए उन्होंने कहा है कि "सच्चा विद्याभ्यास वह है जिसके द्वारा हम आत्मा को, अपने आपको, ईश्वर को, सत्य को पहचाने। इस पहिचान के लिए किसी को साहित्य ज्ञान की आवश्यकता हो सकती है. किसी को भौतिक शास्त्र की, किसी को कला की, पर विद्या मात्र का उद्देश्य आत्मदर्शन होना चाहिए। सारे उद्योग मेरे अर्थ में शुद्ध विद्याभ्यास हैं। आत्मदर्शन के उद्देश्य के बिना भी यह धंधे चल सकते हैं इस रीति से चले तो वे आजीविका के या दूसरे साधन हो सकते हैं, पर विद्याभ्यास न होंगे। विद्याभ्यास के पीछे समझ, कर्तव्यपरायणता, सेवाभाव विद्यमान होता है।"[२८] इस कथन से स्पष्ट है कि गांधीजी साहित्यिक वैज्ञानिक, कलात्मक तथा

---

२७. मो० क० गांधी : 'धर्मनीति' (सस्ता साहित्य मंडल, १९६२) पृष्ठ २३६

२८. यंग इण्डिया २०-३-१९२८

रचनात्मक विषयो को पढाने के पक्ष में थे किन्तु वे उन्हें आध्यात्मिक एव जीवकोपार्जन दोनो ही लक्ष्यों को दृष्टिगत करके पढाना चाहते थे। उनका कहना था कि वे विभिन्न विज्ञानो के अध्यापन का महत्त्व मानते हैं किन्तु उन्हें पढ़ाने का उद्देश्य रचनात्मक होना चाहिए ध्वसात्मक नही। उनका उपयोग हमारे दैनिक ग्रामीण जीवन को उन्नत बनाने में करना होगा गाधीजी वर्तमान साहित्यिक शिक्षा का विरोध करते थे और सारा ज्ञान किसी जीवनोपयोगी उद्योग के माध्यम से देने पर जोर देते थे।

आजकल की पाठ्य पुस्तको के सम्बन्ध में उनका मत था कि उनमें उन बातो की चर्चा नही होती जिनसे छात्रो का अपने घरो मे काम पडता है परन्तु उन वस्तुओ की होती है जो उसके लिए सर्वथा अजनबी हैं। "आज के विद्यार्थी को इन किताबो के ढेर में ऐसा गडा रहना पडता है कि वह उनक, दम घोटने को काफा है। अगर मेरा वश चले तो मैं अवश्य ही अधिकाश वर्तमान पाठ्य पुस्तको को नष्ट कर दूं और ऐसी पाठ्य पुस्तकें लिखवाऊ जिनका गृह-जीवन से सवध और मेल हो, ताकि जैसे-जैसे लडका सीखता जाय वैसे-वैसे वह आस-पास के जीवन से हिलता-मिलता जाय और उसमें सक्रिय हिस्सा लेने लगे।"[२९] पुस्तको की आवश्यकता विद्यार्थियों की अपेक्षा शिक्षको के लिए अधिक है। और प्रत्येक शिक्षक को, यदि अपने विद्यार्थियो के प्रति वह पूरा न्याय करना चाहता है, उपलब्ध सामग्री से अपना दैनिक पाठ खुद तैयार करना होगा। इसे भी उसे अपनी कक्षा की विशेष आवश्यकताओ के अनुकूल बनाना होगा।"[३०]

गाधीजी शिक्षण पद्धतिया मनोवैज्ञानिक आधार पर निरुपित करते थे। उनका कहना था कि बच्चो में अनुकरण शक्ति प्रबल होती है। अतएव जैसा भी उनसे कराना चाहते हैं वैसा हम स्वय करें। केवल कहने मात्र से उन पर उतना प्रभाव न पड़ेगा। उनके सम्मुख विभिन्न आदर्शो पर चल उन्हे उनका अनुकरण करने दें। बालको को पढाने में माता-पिता और शिक्षको को इस सिद्धात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए। बालको को सिखाने मे स्नेह और सहानुभूति

---

२९ यग इण्डिया १-९-१९२१

३०. हरिजन १-१२-१९३३

वड़ा काम करता है। जो वात उन्हें वताना हो वह उनके मानसिक स्तर तक उतार कर वताई जावे। पाठ्य पुस्तकें ऐसा करने में असमर्थ हैं इसी से गांधीजी वालकों द्वारा उनका प्रयोग करना उचित नहीं समझते थे। शिक्षक उन्हें पढ़ कर सामग्री को वालकों के स्तर पर उतार उनके घनिष्ट पर्यावरण में ढाल कर वतला सकता है।

गांधीजी का मत था कि शिक्षण पद्धति ऐसी होनी चाहिए कि वालक केवल निष्क्रिय सूचनाओं के संचय एवं स्मरण रखने का यंत्र न वन जाय वह उसे पठित सामग्री पर विचार एवं मनन करने के लिए प्रोत्साहित करे और उसे व्यवहार में लाने की प्रेरणा दे। उनके शब्दों में "वहुतेरे पढ़ते हैं पर गुनते नहीं, विचारते नहीं। फलतः पढ़ी हुई चीज पर अमल क्यों करने लगे? इससे हमें चाहिये कि थोड़ा पढ़ें उस पर विचार करें, उस पर अमल करें। अमल करते वक्त जो ठीक न जान पड़े उसे छोड़ दें और आगे वढ़े। मेरी दृष्टि में विचार करने की कला सच्ची शिक्षा है। यह कला हाथ आ जाय तो दूसरी सारी कलायें उसके पीछे सुन्दर रीति से सज जांय।"[३१]

कर्म करना देह का गुण है। कार्य करने से ज्ञान प्राप्त होता है आत्मोन्नति होती है। पशुओं में कर्म यंत्रवत् होता है, मानव में विवेक संचालित। विवेकपूर्ण कार्य से क्षमता आती है, ज्ञान वढ़ता है, शान्ति और आनन्द मिलता है। वह समाजहित, परमार्थ तथा कर्तव्य की भावना से प्रेरित रहता है अतएव वह एक यज्ञ के समान है। ऐसे ही कर्म के माध्यम से मनुष्य वंधन मुक्त होकर परम गति पा जाता है। यही अनासक्त योग मार्ग है।

वाल-प्रकृति में क्रियाशीलता प्रधान होती है। अतएव गांधी जी ने करने द्वारा सीखने (लर्निंग वाई डूइंग) के सिद्धांत पर वल दिया। उन्होंने एक उपयोगी हस्तकला को शिक्षा का माध्यम निरूपित किया जो समस्त साहित्यिक एवं वौद्धिक प्रशिक्षण का साधन वनाया गया। हस्तकला में व्यवसायिक कुशलता के अनुरूप ही उनमें अन्य विषयों की योग्यता आती रहेगी। विभिन्न विषयों और उद्योग के समवाय पर जोर देकर गांधीजी ने शिक्षा को सार्थक, व्यावहारिक सप्रयोजन तथा जीवन से सम्वन्धित वनाने का मार्ग प्रशस्त किया।

---

३१. धर्मनीति, पृष्ठ २४९–२५०

उद्योग के कारण शारीरिक श्रम के प्रति आदर भावना जागृत होगी जो श्रमजीवी और बुद्धिजीवियों के बीच की अहितकर खाई को पाटेगी। इससे धनार्जन की शक्ति बढ़ेगी, जो अवकाश के समय का सदुपयोग ही सम्भव न बनाएगी वरन् राष्ट्रीय आय मे भी वृद्धि करेगी। यह पद्धति शिक्षा को बाल केन्द्रित बनाने के साथ ही बालको की वैयक्तिक भिन्नता का ध्यान रखते हुए उन्हे अपनी अपनी रुचियो और योग्यताओ के अनुसार प्रगति एव विकास करने का अवसर प्रदान करेगी। इस प्रकार आत्मक्रियाशीलता द्वारा बालक सप्रयोजन और उत्पादक क्रिया द्वारा शिक्षा प्राप्त करते रहेगे।

पाश्चात्य शिक्षाविद् रूसो, पेस्टालॉजी और फ्रोयबेल ने भी ज्ञानार्जन में बालक की क्रियाशीलता द्वारा अनुभव प्राप्त करने पर बल दिया है। किन्तु गाधीजी की विशेषता यह थी कि वे एक निर्धारित हस्तकला के आधार पर बालक में समन्वित क्रियाशीलता और अनुभव का उदय करना चाहते थे। ड्यूई की प्रोजेक्ट पद्धति में क्रियाशीलता एक साधन के रूप में मानी गई है; किन्तु गाधीजी की बेसिक शिक्षा मे क्रियाशीलता साध्य और साधन दोनो ही है। एक मे वह शिक्षा उपकरण के रूप में है तो दूसरे में शिक्षा के माध्यम के। एक में उत्पादन का केवल शैक्षिक मूल्याकन होता है तो दूसरी मे शैक्षिक और व्यावसायिक दोनो मूल्याकन अनिवार्य हैं। प्रोजेक्ट में उत्पादन का मापदण्ड कोई विशेष नही परन्तु बेसिक शिक्षा में उसका सामाजिक मापदण्ड है जो शाला प्रभाव से दूर है। स्वावलंबन पर विशेष बल देकर गाधीजी ने क्रियाशीलता के माध्यम को अधिक सार्थक और सप्रयोजन बना दिया है।

गाधीजी वर्तमान शिक्षात्मक पर्यावरण से असन्तुष्ट थे। ऋषि *गुरू आश्रम के पवित्र वातावरण और उनके वात्सल्य स्नेहमयी देख-रेख के स्थान पर आज बालक* आधुनिक शिक्षा द्वारा निर्मित भव्य गृहो और कृत्रिम पर्यावरण में शिक्षा पाते हैं। गाधीजी का विश्वास था कि प्रकृति और ग्रामीण परिवेश शिक्षा के बडे प्रभावकारी साधन हैं। शाला के विद्यार्थियो और शिक्षकों में वात्सल्य प्रेम, परस्पर आदर एव आपसी विश्वास होना चाहिए। उसमें बालक-बालिकायें *भाई-बहिन की तरह रहे और उसका समस्त पर्यावरण प्रफुल्लता,* सामूहिक प्रयत्नशीलता, नैतिकता, सहानुभूति एवं सद्भावना से ओत-

स्रोत हो। वह शाला में बालकों के विकास के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता चाहते थे। निरोधात्मक निर्देश, जो मुक्त अभिव्यक्ति में बाधक होते हैं, उन्हें स्वीकार न थे। वे आत्म-अनुशासन और आत्मनियंत्रण पर बल देते थे। वे बाहर से अनुशासन लादने के पक्ष में न थे वरन् स्वतः नियमन तथा विनयन द्वारा आत्म-अनुशासन को सर्वोपरि मानते थे। शारीरिक दण्ड के वे विरोधी थे। फीनिक्स में एक बार उन्होंने एक उद्दण्डी बालक की रूल से पिटाई की थी किन्तु बाद में उन के मन में बड़ी ग्लानि उत्पन्न हुई कि वे उसका नियंत्रण अपने आत्म बल से क्यों न कर सके?

ऐसा था महात्मा गांधी का शिक्षा-दर्शन। यद्यपि उन्होंने शिक्षा में किसी दर्शन के प्रतिपादित करने का कभी प्रयत्न नहीं किया किन्तु शिक्षा के विभिन्न तत्वों एवं अंगों की व्याख्या अपनी मान्यताओं के आधार पर करने में उसमें एक दर्शन परिलक्षित होता है। गांधीजी के इस शिक्षा-दर्शन में लगभग शिक्षा के आधारभूत सभी दर्शनों का किसी न किसी सीमा तक प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। मानवतावादी दृष्टिकोण को ही लीजिए। उन्हें मानव की महत्ता, पवित्रता सम्भाव्यता में बड़ा विश्वास था। इस विश्वास के आधार पर ही वे नई सामाजिक व्यवस्था निर्मित करना चाहते थे। वे मनुष्य को पूर्ण स्वतन्त्रता दिलाने के हामी थे जिसके लिए वे आर्थिक स्वतन्त्रता आवश्यक समझते थे और उसके चरम विकेन्द्रीकरण पर बल देते थे। गांधीजी आदर्शवादी तो थे ही। ब्रह्मचर्य, आत्मसंस्कार, नैतिकता चरित्रनिर्माण, मानवसेवा, परममुक्ति का शाश्वत उद्देश्य तथा प्रत्येक का शिक्षा प्राप्त करने का जन्मसिद्ध अधिकार और उसके लिए अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा योजना प्रस्तुत करना आदि ऐसे विचार हैं जो आदर्शवादिता के अन्तर्गत आते हैं।

परन्तु आदर्शवादी होते हुए भी वे यथार्थ से मुंह नहीं मोड़े हुए थे। उनका यह कहना था कि पाश्चात्य शिक्षा केवल साहित्यिक है जो भारतीय जनमानस के अनुकूल नहीं पड़ती। शिक्षा को मूलोद्योग के माध्यम से स्वावलम्बी बनाना चाहिए, उनका ऐसी योजनायें प्रस्तुत करना जो जन साधारण द्वारा व्यवहृत हो सकें, शिक्षा का तात्कालिक उद्देश्य शरीर, मन और आत्मा का संतुलित, समन्वित एवं संगीत पूर्ण विकास बताना आदि बातें उनके यथार्थ जीवन की परिस्थितियों की सूझ-बूझ का प्रमाण हैं। जीवन द्वारा जीवन की

शिक्षा का उद्‌घोष, करने द्वारा सीखने का सिद्धान्त, बाल क्रियाशीलता की महत्ता, उद्योगकेन्द्रित शिक्षा व्यवस्था आदि विचारो को सुनकर कौन कहेगा कि वे प्रयोजनवादी न थे ? जब गाधीजी रूसो की भांति भारतीय बालको के वर्तमान सामाजिक पर्यावरण तथा शैक्षिक संस्थान को दोषपूर्ण बताते हैं, पाठ्य पुस्तको को निकाल फेंकना चाहते हैं, प्रकृति की गोद मे बिखरे ग्रामीण वातावरण को उत्तम समझते है और बालविकास की स्वतन्त्रता तथा आत्म-अनुशासन पर बल देते हैं तो उन्हे कौन प्रकृतिवादी मानने को तैयार न होगा ?

महात्मा गांधी के शिक्षा-दर्शन मे उत्तम तत्त्वो का समावेश होने से तथा दर्शनों के श्रेष्ठ पार्श्वों के ताने-बाने आ जाने से किसी को आश्चर्य नही होना चाहिए। उसके निर्माण मे किसी प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभाव की किंचित आवश्यकता न थी। जैसा कि पहिले कहा जा चुका है तथ्य यह है कि शिक्षा का जीवन और समाज से घनिष्ठ सम्बन्ध है और गाधीजी जीवन कला के मर्मज्ञ थे तथा सामाजिक पतिस्थितियो के सुविज्ञ। इसी कारण उनके शिक्षा सबधी विचार ऐसे उच्चकोटि के बन सके। शिक्षा क्षेत्र मे उनकी देन अनन्यतम एव विशिष्ट भारतीय थी।

बालक की आँखें जैसे जीवन मे दूसरी चीजें देखेंगी, उसी तरह वे अक्षरो और शब्दो के चित्र देखेंगी और पढेंगी; कान वस्तुओ के नाम और वाक्यो के अर्थ सुनेंगे और उन्हें पकडेंगे। सारी तालीम स्वाभाविक और रसप्रद होगी और इसलिए दुनिया मे सब से सस्ती तथा अधिक से अधिक तेज गति वाली होगी।

—हरिजन

२८–६–३६

भारतीय शिक्षा में गाँधीजी का योगदान—एक मूल्यांकन

डा० डी० वी० चिकरमण

भारतीय जीवन के कई क्षेत्रों को गांधी जी ने प्रभावित किया और इनमें विचार तथा कार्य के ढंग में क्रान्ति उत्पन्न की। शिक्षा का क्षेत्र भी ऐसा ही एक क्षेत्र है जिस ओर इस गांधी शताब्दी वर्ष में पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है। भारतीय शिक्षा के इतिहास में

गाधी जी का नाम बुनियादी तालीम के साथ जुडा है । प्रस्तुत लेख में इस प्रणाली का न तो विस्तृत वर्णन करने और न ही इसके गुण-दोषों पर विचार करने का अभिप्राय है, हम तो केवल इसकी मुख्य बातों की ही विवेचना करेंगे जिसके कारण गाधी जी इस शताब्दी के महान शिक्षा-शास्त्री माने गए है ।

गाधी जी की बुनियादी तालीम के दो आधार भूत पक्ष हैं :

(अ) शिक्षा नि शुल्क एव सर्वजन-सुलभ हो

(आ) शिक्षा का आधार क्षेत्र विशेप मे रहने वाले लोगो द्वारा जीवन-यापन के लिए अपनाया गया उद्योग हो ।

दोनो ही पक्ष एक दूसरे पर आधारित है । पहले पक्ष से तो सभी सहमत है और हमारे सविधान मे भी इसे स्थान दिया गया है । परन्तु शिक्षा किस प्रकार की हो इसका निर्धारण दूसरा पक्ष करता है । भारत मे अ ग्रेजो द्वारा आरम्भ की गई शिक्षा-प्रणाली के सदर्भ मे वह अत्यत महत्व पूर्ण हो उठता है । अ ग्रेजो को अपने दफ्तरो के लिए बाबू और छोटे अधिकारी चहिये थे अत उन्होने पूर्णतया किताबी शिक्षा पर ही बल दिया । उनके द्वारा आरम्भ की गई शिक्षा प्रणाली आज भी उसी रुप मे चली आ रही है । हमारी शिक्षा-प्रणाली अधिकाशत किताबी है । और हमारे विश्वविद्यालयो से निकलने वाले नवयुवक और नव-युवतियाँ अपने पैरो प खड़े होने मे असमर्थ है, वे क्लर्का या सफेद-पोश नौकरी की तलाश मे रहते हैं । अ ग्रे ज पढ़े-लिखे लोगो मे बेरोजगारी फैलाना नही चाहते थे अत उच्च शिक्षा को सुविधा बहुत ही कम लोगो को उपलब्ध थी । शिक्षा संस्थाओ को अपने निर्वाह के लिए आवश्यक धन का अभाव सदा बना रहता था । जब हम सर्व-साधारण के लिए शिक्षा सुलभ करना चाहते हैं तो हमे पढे लिखे लोगो की बेरोजगारी, लोगो का गाँव छोड कर शहर की ओर भागना, गाँवो के उद्योग-धन्धो का क्रमिक ह्रास आदि समस्याओ पर भी विचार करना पडेगा । गाधी जी के मस्तिष्क में यही विचार घूमते रहते थे । वे ऐसी शिक्षा प्रणाली खोज निकालना चाहते थे जिस के द्वारा गाँवो के कुटीर उद्योग पुनर्जीवित हो, लोगा को अपने गावो मे ही रोजगार मिल सके तथा उन्हे गाव छोड़ने के लिए बाध्य न होना पड़े । गाधी जी की शिक्षा पद्धति कुटीर उद्योगो के पुनरुत्थान तथा जीवन-निर्वाह के लिए बुनियादी उद्योग-

धन्धों जैसे कृषि, बुनकरी, और राजगीरी पर आधारित तथा इन्हीं से सम्बधित थी।

गांधीजी की शिक्षा प्रणाली का आलोचकों ने यह कह कर मजाक उड़ाया: 'बुनियादी तालीम में क्या रखा है? कातने, बुनने और श्रम-साध्य उद्योगों का ही दूसरा नाम बुनियादी तालीम है। आज के मशीनों के युग में जब मनुष्य चांद तक की सैर कर रहा है कातने बुनने की शिक्षा प्रणाली द्वारा बेचारा भारत भला क्या उन्नति करेगा ?' यह दुर्भाग्य ही समझिये कि आलोचकों ने शिक्षा में उद्योग के महत्व को नहीं जाना। एक समय था जब सोचा जाता था कि सारी शिक्षा किताबों के माध्यम से ही दी जानी चाहिए। इस पूरी तरह किताबी शिक्षा के विरुद्ध विद्रोह करने वालों में पहला व्यक्ति था रुसो। उसने शिक्षा में क्रियाशीलता तथा अनुभूति की आवश्यकता पर बल दिया। फ्रॉयबेल तथा मादाम मोन्तेसरी ने भी खेल-कूद और गीतों से जोड़कर क्रियाशीलता के इसी आन्दोलन का अपने अपने ढंग से अनुसरण किया। क्रियाशीलता और अनुभूति के आन्दोलन 'प्रोजेक्ट प्रणाली' तथा ड्यूई द्वारा प्रतिपादित 'प्रगतिशील शिक्षा प्रणाली' के प्रमुख अंग हैं। ड्यूई ने इस बात पर बल दिया कि शिक्षा का आधार अनुभव है और अनुभव का माध्यम है जीवन। बालकों के जीवन से ली गई भिन्न-भिन्न क्रियाओं को ही 'प्रगतिशील' शिक्षा में सम्मिलित किया गया है। थोड़े बहुत हाथ के काम को भी इस में शामिल किया गया है। हाथ के काम का अर्थ है हाथों, औजारों और मस्तिष्क का उपयोग। यह बालक के व्यक्तित्व के विकास में सहायक होता है। जब तक बालक अपने हाथों का प्रयोग नहीं करता उसके व्यक्तित्व के विकास की गुंजाइश कम ही रहती है। इस प्रकार ड्यूई हाथ के काम को बालक के व्यक्तित्व के विकास का साधन मानता है।

गांधी जी ने बालक के व्यक्तित्व के विकास के लिए उत्पादक कार्य पर बल दिया, और इस प्रकार वे ड्यूई से भी एक कदम आगे बढ़ गए। यही गांधी जी की बुनियादी तालीम और ड्यूई की प्रगतिशील शिक्षा का मुख्य अन्तर है। ड्यूई की प्रगतिशील शिक्षा प्रणाली में हाथ का काम बालक के व्यक्तित्व के विकास का साधन मात्र है अतः इस के चुनाव में इसके उत्पादक और सामाजिक पहलू पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। खिलौने बनाना भी एक उद्योग ही है। उद्योग के मूल्य और उसके द्वारा आमदनी में कोई सम्बन्ध नहीं।

आमदनी भले ही कुछ न हो पर उद्योग पर खूब धन व्यय किया जाता है। उद्योग जन-साधारण मे प्रचलित हो इस पर ड्यूई ने कोई विचार नही किया। परन्तु गाधी जी द्वारा उद्योग के चुनाव मे यही मुख्य शर्तें थी। उद्योग उत्पादक हो; इससे इतनी आमदनी हो कि इसे लागू करने का खर्च निकल आए। यह गाँव मे प्रचलित उद्योग हो। इस प्रकार यह शिक्षित और अशिक्षित तथा बुद्धिजीवी और श्रमकार का भेद भी दूर कर सकेगा। यही सच्ची शिक्षा है क्योकि इसके द्वारा समाजमे प्रचलित उत्पादक श्रम शास्त्रीय ज्ञान से सम्बन्धित हो जाता है। यही शिक्षा प्रणाली विदेशी शिक्षा प्रणाली द्वारा उत्पन्न शिक्षित और अशिक्षित दो वर्गो के सघर्ष को समाप्त करके सामाजिक परिवर्तन ला सकती है।

गाधी जी के योगदान का मूल्याकन ड्यूई के साथ तुलना करके सरलता से किया जा सकता है। ड्यूई के लिए उद्योग बालक के विकास का साधन है, और उद्योग का अर्थ है हाथ का काम। परन्तु गाधी जी के लिए इसका अर्थ अधिक विस्तृत है। बालक के व्यक्तित्व के विकास मे तो यह सहायक है ही, साथ ही यह शिक्षा तथा ज्ञान और श्रम के सामाजिक मूल्यो में परिवर्तन का भी साधन है। ड्यूई के लिए जीवन का अर्थ है वातावरण मे क्रियाए तथा कुछ हाथ का काम जिसे शौकिया काम भी कहा जा सकता है। जीवन की सम्पूर्णता के लिए गांधी जी उस क्षेत्र विशेष मे प्रचलित उत्पादक और सामाजिक लाभदायक उद्योग को सम्मिलित करना चाहते थे। इस प्रकार अपने शिक्षा दर्शन मे वे ड्यूई से कही आगे निकल गए थे।

इस पृष्ठभूमि के आधार पर अनुच्छेद तीन मे वर्णित आलोचक महोदय को उत्तर दिया जा सकता है। कताई, बुनाई अथवा कृषि समाज के स्थायित्व के लिए उस क्षेत्र मे प्रचलित उद्योगों का प्रतिनिधित्व करते है। विद्यालय समाज का अभिन्न अंग है। वास्तव मे यह समाज का छोटा रूप है, और समाज मे प्रचलित उद्योग की जिम्मेदारी मे बच नही सकता। आज कल की भाति जब विद्यालय जिम्मेदारी से पीछे हटने लगता है तो यहा की शिक्षा साधारण जनता से भिन्न श्रेणियो को जन्म देती है। विद्यालय मे बालक उद्योगो मे भाग लें इसके कई कारण है। उसके लिए यह व्यक्तित्व

विकास का साधन है, शास्त्रीय ज्ञान का माध्यम है, शोषक और शोषित के बीच की खाई को ...ने वाला संयोजक कारक है। अगर हम अंग्रेजों द्वारा चलाई गई शिक्षा प्रणाली ही रखना चाहते हैं तो किसी भी उद्योग की कोई आवश्यकता नहीं। परन्तु उस दशा में समाजवादी ढंग के जिस समाज की हम कल्पना करते हैं, वह सुदूर भविष्य के गर्भ में विलीन हो जायगा।

आइये हम इस पर भी विचार करें कि शिक्षा आयोग (१९६४-६६) की सिफारिशों पर गांधीजी की बुनियादी तालीम का क्या प्रभाव पड़ा है। शिक्षा आयोग ने बुनियादी प्रणाली की दो बातें अपनी रिपोर्ट में ली हैं। वे हैं :

(१) कार्य अनुभव

(२) समाज सेवा

इनमें बुनियादी तालीम से ऊपरी सादृश्य तो है पर सार कुछ भी नहीं है। कार्य अनुभव के विषय में अभी तक कोई निर्णय नहीं हो पाया है। काफी समय से समितियां इस पर विचार-विमर्श कर रही हैं। जहां तक बुनियादी उद्योग का सवाल है सारी तस्वीर आरम्भ से बिलकुल स्पष्ट थी। 'कार्य अनुभव' बुनियादी उद्योग का हल्का रूप लगता है और हल्का होने के कारण प्रभावहीन भी है। बुनियादी तालीम में बुनियादी उद्योग को शिक्षा का केन्द्र बिन्दु माना है। शास्त्रीय विषय पढ़ाने का माध्यम वे ही हैं। दूसरी ओर कार्य अनुभव इतिहास भूगोल की तरह ही एक अतिरिक्त स्कूली विषय माना गया है। टाइम टेबिल में इसके लिए दो या तीन घंटे नियत कर दिये गए हैं। बुनियादी तालीम में सामुदायिक जीवन भी शामिल किया गया है। विचार यह था कि विद्यालय एक समुदाय है और बालक वहाँ सामाजिक जीवन व्यतीत करते हैं। विद्यालय ग्राम समुदाय का एक अंग है और उसका अभिन्न अंग होने के कारण ग्राम समुदाय के प्रति उत्तरदायी है। परन्तु शिक्षा आयोग की रिपोर्ट में उल्लिखित 'सामाजिक सेवा' इस सामुदायिक जीवन का अशक्त स्वरूप है। विद्यालय समुदाय की जो सामाजिक सेवा करेगा वह कामचलाऊ ही होगी। शिक्षा प्रणाली में कहीं पर भी ये दो कारक

'कार्यानुभूति' और 'समाज सेवा' मूर्त्त रूप में नही आए है । दूसरी ओर बुनियादी उद्योग और सामुदायिक जीवन बुनियादी तालीम के अभिन्न अ ग है और सारी शिक्षा प्रणाली के आधार स्तम्भ हैं। दोनों मे यह भेद बड़ा महत्त्वपूर्ण है । अ ग्रेजी शिक्षा-प्रणाली मे दीक्षित होने के कारण हम इस शिक्षा-प्रणाली मे कोई भी ऐसा परिवर्तन करने के प्रति जो पुरानी प्रणाली के आदर्शों से मेल नही खाता उदासीन हैं। जब भी हम अपनी योजना मे कुछ जोडना या बढाना चाहते है तो उसे इतना हल्का कर देते हैं कि वह बिल्कुल निष्प्रभ हो जाता है ।

शिक्षा मे हाथ-उद्योग को दाखिल करने मे भारत जैसे गरीब देश मे दुहरा हेतु सिद्ध होगा । उससे हमारे बालको की शिक्षा का खर्च निकलेगा और उन्हें एक ऐसा धन्धा सीखने को मिलेगा, जिसका वे चाहे तो बाद के जीवन मे अपने गुजारे के लिए आधार ले सकते हैं। ऐसी शिक्षा-पद्धति हमारे बालको को अवश्य ही स्वावलम्बी बनायेगी। हम शरीर-श्रम से नफरत करना सीखेंगे, तो उसमे हमारे राष्ट्र का जितना नैतिक पतन होगा उतना और किसी बात से नहीं होगा ।

—यग इण्डिया

१-६-२६

गांधीजी और राष्ट्रभाषा
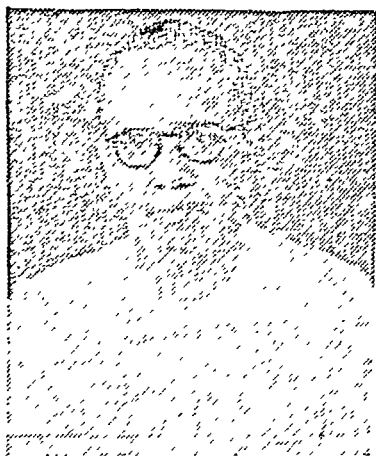
प्रो० ए० चन्द्रहासन

स्वतंत्र भारत को सुदृढ़ बनाने के लिए गांधी जी ने जितना कार्य किया उसमें से एक प्रमुख कार्य है हिन्दी का राष्ट्र भाषा बनाना। गांधीजी गुजराती थे और शायद उन्होंने बाकायदा हिन्दी नहीं पढ़ी होगी। उनको जितनी हिन्दी मिली, हिन्दी भाषी लोगों के सम्पर्क से मिली थी। गांधीजी के पहले भी भारत में और विदेशों में भारत की जनसम्पर्क की भाषा की हैसियत से हिन्दी को मान्यता मिल चुकी थी। स्वामी श्रद्धानन्द ने अपने धार्मिक प्रचार के लिए पंजाबी को न चुन कर हिन्दी भाषा को चुन लिया था। ब्रिटिश शासन के जमाने में अधिकारियों ने हिन्दुस्तानी का ज्ञान सैनिकों और कर्मचारियों के लिए अनिवार्य कर दिया था। इसी प्रकार फोर्ट विलियम कालिज में

हिन्दी की पुस्तको की रचना आरम्भ हुई थी। मिशनरी लोगों ने हिन्दी मे बाइबिल का अनुवाद कराया और सारे हिन्दी प्रदेशो मे उस का प्रचार किया। लेकिन गाधीजी को इस बात का श्रेय मिल जाता कि उन्होने हिन्दी भाषा को राष्ट्रीय महत्त्व दे दिया और इस बात की घोषणा की कि हिन्दी आजाद भारत की राष्ट्रीय भाषा होगी। गाधीजी दूरद्रष्टा थे और उन्होने इस बात का अनुभव किया कि जब हिन्दुस्तान आजाद होगा तब शासन के लिए अ ग्रेजो केस्थान पर एक ऐसी भाषा की आवश्यकता होगी और उनकी राय में वह हिन्दी ही थी। हिन्दी को चुनने का एक मात्र कारण यह था कि हिन्दी ही ऐसी भाषा थी जो भारत के अधिकाश लोग या तो बोलते थे या समझते थे।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, राजनैतिक महत्त्व प्राप्त होने के पहले भी हिन्दी को देश के प्रधान शहरो मे और विदेशो मे भारतीयो की भाषा की मान्यता मिल चुकी थी। भारत के मुख्य मुख्य व्यापार केन्द्रो जैसे . बम्बई, कलकत्ता, कोचिन, बगलौर आदि शहरो में हिन्दी चलती थी। उसी प्रकार दक्षिण अफ्रीका, बरमा, मौरिशियश आदि देशो मे जहाँ भारतीय अधिक सख्या मे रहते थे वहाँ भारतीयो की मातृभाषा हिन्दी थी। मैंने खुद देखा है कि केरल के बहुत से लोग बम्बई, बरमा आदि स्थानो से जाकर जब वापिस आते थे तो हिन्दी बोल लेते थे। इन्ही बातों के आधार पर गाधी जी ने यह निर्णय किया था कि भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी होनी चाहिए और उन्होंने हिन्दी साहित्य सम्मेलन के इन्दौर अधिवेशन मे इस बात की घोषणा की। उन्होने सम्मेलन से यह भी निवेदन किया कि दक्षिण अफ्रीका और अन्य हिन्दीतर प्रदेशो मे हिन्दी प्रचार का कार्य शुरू करना चाहिए। इस सुझाव के फलस्वरुप पीछे चलकर मद्राम मे दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की और वर्धा मे राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की स्थापना हुई, जिसकी शाखाऐ महाराष्ट्र, गुजरात, बगाल, आसाम, उडीसा में खोली गई। महात्मा जी ने ि न्दी के प्रचार के लिए अपने सुपुत्र श्री देवदास गाधी को मद्रास भेजा और मुझे इस बात का हर्ष के साथ स्मरण आता है कि मैंने भी देवदास गाधी के चरणो मे बैठ कर थोड दिन हिन्दी सीखी। हिन्दी के बारे में गाधीजी के विचार सुदृढ और स्पष्ट थे। हमारे सविधान की धारा ३५४ में हिन्दी की जो परिभाषा मिलती है असल मे वह गाधीजो के विचारों को प्रकट करती

है। यह सभी लोगों को विदित है कि गांधीजी हिन्दु मुसलमानों को एक समझते थे और हिन्दी उर्दू को भी एक ही समझते थे। लेकिन जब संविधान बन रहा था तो हमारे देश के नेताओं में हिन्दी-उर्दू को लेकर बड़ा भारी झगड़ा हुआ था। समझौते के रूप में गांधीजी ने यह बताया कि हमारे देश की राष्ट्रभाषा का नाम हिन्दुस्तानी होगा और वह नागरी लिपि में या फारसी लिपि में लिखी जा सकती है। लेकिन हमारे नेताओं में इस पक्ष के लोग ज्यादा थे कि राष्ट्रीय भाषा का नाम हिन्दी होगा और उसको लिखने के लिए नागरी लिपि का प्रयोग किया जायगा। गांधीजी को इस बात को मानना पड़ा। लेकिन गांधीजी के दिल में यह पक्का विश्वास था कि लिपि चाहे नागरी ही बनी रहे हिन्दी की शैली एक सार्वदेशिक रूप अख्तियार करेगी और उस शैली की हिन्दी हमारे सारे देश में प्रचलित होगी। बिहार भूकम्प के बाद कुछ दिन हरिजन सेवा के सिलसिले में गांधीजी ने दो सप्ताह तक केरल का भ्रमण किया। उस समय मुझे मद्रास में उन से मुलाकात करने का सौभाग्य मिला और मैंने उन्हें एक सुझाव दिया कि केरल में हिन्दी का थोड़ा बहुत प्रचार हो गया है। अगर आप केरल में अपना भाषण हिन्दी में देंगे तो अच्छा होगा। वैसे तो वे हिन्दीतर प्रदेशों में खास कर दक्षिण और पूर्व में अंग्रेजी में व्याख्यान दिया करते थे। उन्होंने मुझ से कहा कि अगर तुम मलयालम् में मेरे भाषणों का अनुवाद करने का भार उठाओगे तो मैं हिन्दी में भाषण दे दूंगा। अपनी सीमाओं को जानते हुए भी मैंने यह बड़ी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली। उन्होंने दो सप्ताह तक केरल में भ्रमण किया और पालघाट से लेकर नागरकोशल तक पहुँचते पहुँचते उन्होंने कम से कम १०० भाषण दे दिए और उन भाषणों का अनुवाद करने का सुयोग मुझे प्राप्त हुआ था। वे मुख्यतः हरिजन सेवा पर भाषण देते थे और कभी कभी राष्ट्रभाषा हिन्दी पर भी अपने विचार व्यक्त करते थे। उसी सिलसिले में उन्होंने एक बार कहा था कि हिन्दीतर प्रदेश के लोगों को हिन्दी-उर्दू के झगड़े में नहीं पड़ना चाहिए और उनको अपनी सेवा के अनुसार, अपनी परिस्थिति के अनुसार हिन्दी के पाठ तैयार करने चाहिए और हिन्दी का व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त करना चाहिए शैली के बारे में उनके शब्द अब भी मुझे याद हैं। जब तुम लोग (हिन्दीतर प्रान्त के

लोग) हिन्दी पढ़ोगे, हिन्दी में बोलोगे और हिन्दी में लिखोगे तब हिन्दी की एक ऐसी शैली निकलेगी जो सारे भारत के लिए मान्य होगी। अब मुझे यह देखकर खुशी हो रही है कि शुद्ध हिन्दी पर भारत की अन्य भाषाओं का प्रभाव पड़ रहा है और कम से कम साधारण व्यवहार में राष्ट्रभाषा की एक सर्वमान्य शैली बन रही है। मुझे आशा है कि जब हिन्दी-तर प्रान्त के लोग ज्यादा संख्या में पुस्तकें लिखने लगेंगे तब यह सार्वदेशिक शैली और भी पक्की हो जाएगी।

●

हमारे देश में विदेशी शासन ने जो अनेक बुराइयाँ पैदा की हैं, उनमें देश के नौजवानों पर हानिकारक विदेशी माध्यम लादने की जो बुराई है, उसे इतिहास बड़ी से बड़ी बुराइयों में से एक मानेगा। इस माध्यम ने राष्ट्र की शक्ति को चूसकर कमजोर बना दिया है, इसने विद्यार्थियों के जीवनों को घटा दिया है। इस माध्यम ने विद्यार्थियों को आम जनता से अलग कर दिया है और शिक्षा को अकारण मँहगा बना दिया है। अगर यह प्रक्रिया आगे भी चालू रहेगी तो इस बात की बहुत बड़ी संभावना है कि हमारा राष्ट्र अपनी आत्मा को खो देगा।

—यंग इण्डिया

५-७-१९२८

महात्मा गांधी और सामाजिक परिवर्तन
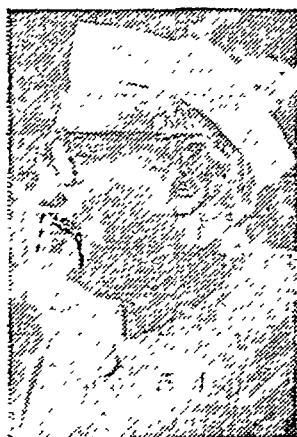
जगजीवन राम

स्वतन्त्रता के वीस वर्ष वाद भी हम इस वात का अनुभव करते हैं कि राष्ट्र के रूप में हम अभी पूरी तरह संगठित नहीं है। एक ही सरकार के अन्तर्गत एकता के सूत्र में बंधे होने के स्पष्ट तथ्य के वावजूद एक दूसरे के साथ अपनत्व तथा सहयोग की भावना जागृत करने की अभी तक जरूरत वनी है। यद्यपि पूर्वाग्रहों के कारण कुछ लोग इसमें जातीय कारकों को सम्मिलित मानते हैं, पर वास्तव में ऐसा है नहीं। अति प्राचीन काल से ही एक जाति की दूसरी जाति से मिलने और उनके योग से नई नई जातियों के उत्पन्न होने की प्रक्रिया चलती रही है। और आज संसार में कोई भी धर्म ऐसा नहीं है जिसके अनुयाइयों की त्वचा का रंग, वालों की वनावट तथा शरीर-रचना यह सिद्ध कर सके कि इसमें शुद्ध जातीय प्रकार के लोग हैं। यह निर्णायक रूप से सिद्ध किया जा चुका है कि

जातीय कारक योग्यता, उच्चता अथवा निम्नता के निर्धारक नही होते। एक ही जाति का सदस्य होने तथा एक ही पूर्वजो की सन्तान होने की भावना, एक ही धर्म और परम्पराओ की भावना, एक से रीति-रिवाजो और विचारो की आदतो की समानता, एक ही भाषा और साहित्य की भावना, समान पीड़ा-सहन और समान उपलब्धियों को भावना, समान आदर्शों एवं महत्वाकाक्षाओ की भावना जो मनुष्यो के समूह को एक साथ बाध रखने मे सहायक होती हैं कुछ काल तक परम्परा तोड़ने के आन्दोलन के चलते रहने के कारण कमजोर हो गई हैं। इसमे हिन्दु समाज विशृंखलित हुआ है; इसका कारण यह है कि हिन्दु धर्म अलगाव और एकान्तिकता, विघटन और विभाजन पर आधारित है। विकास की दिशा को देखते हुए यह आवश्यक है कि सामाजिक एकता की भावना को विकसित किया जाय और हम समानता के सिद्धात के प्रति वचनबद्ध हों। संविधान में वर्णित मौलिक अधिकारो, विवाह और उत्तराधिकार के नियमो मे सुधार, विवाह के धार्मिक स्वरूप मे परिवर्तन, दलितवर्गों के आर्थिक और राजनीतिक धरातल पर उभर कर आने से हिन्दु धर्म की जड़ें हिल उठी हैं। लोकप्रिय हिन्दु धर्म की आधार शिला जाति प्रथा ने समाज को नकारा है—उसका विघटन और विभाजन किया है। इसने समाज को ३००० समूहो मे बाँट दिया है, जो स्वतन्त्रतापूर्वक एक दूसरे से मिल जुल नही सकते; रोटी-बेटी का व्यवहार नही कर सकते और अपने को एक दूसरे से ऊंचा होने का दावा करते हैं। जाति-प्रथा और इसके फलस्वरूप उत्पन्न ऊंच-नीच के विचार ने एक ऐसे मनोविज्ञान को जन्म दिया है जो संगठित राष्ट्र के विकास मे बाधक है। सामाजिक गतिविधियों का विस्तृत क्षेत्र मे प्रसार तथा सयुक्त सामाजिक जीवन का भाव जागृत किये बिना प्रगति नही हो सकती। जाति-प्रथा के अनन्त जालो मे उलझ कर सामूहिक दायित्व की भावना नष्ट—प्रायः हो रही है। और जब तक जाति-प्रथा के भूत को उतार नही फेंका जाता, रचनात्मक सहयोगी समाज के निर्माण की संभावनाओ पर विचार ही नही किया जा सकता। बड़े ही आश्चर्य की बात है कि आज जब कि सामाजिक चेतना मे क्रान्ति लाने के लिए जाति-प्रथा का उन्मूलन एक ऐतिहासिक अनिवार्यता बन चुका है; धर्म और परम्परा को जोड़ने वाली कुछ कड़ियो के ढीले और कमजोर पड़ जाने के कारण

लोगों में मानसिक असुरक्षा की भावना पैदा हो गई है और वे जाति विशेष तथा भाषाई क्षेत्र के नाम से प्रचलित सांस्कृतिक समुदाय से चिपके रहना चाहते हैं। चुनाव के आरम्भ से ही सभी राजनीतिज्ञों और राजनैतिक दलों ने — भले ही वे जाति-प्रथा के कितने ही कट्टर विरोधी क्यों न हों-वहाँ चुनाव जीतने के लिए जाति-प्रथा का दुरुपयोग किया है। राजनैतिक प्रजातन्त्र ने दलित-वर्गों को संगठित होने का अवसर प्रदान किया है जिससे वे ऊंची कही जाने वाली जातियों के राजनैतिक और आर्थिक एकाधिकार को समाप्त कर सकें।

भारत का संविधान, वयस्क मताधिकार तथा अन्य अधिकारों और सुविधाओं के द्वारा आशा करता है कि निर्णय लेने की प्रक्रिया में सारा समाज संयुक्त रूप से भाग लेगा। यह भविष्य में होने वाले सामाजिक विकास का प्रतिमान प्रस्तुत करता है; तथा परम्परागत सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन की आवश्यकता स्वीकार करता है। यह सबको समान अधिकार देने के लिए वचनबद्ध है और आकांक्षाओं की परिधि को विस्तृत करता है। इस संदर्भ में विचारशील व्यक्तियों को यह स्पष्ट रूप से जान लेना चाहिए कि प्रजातन्त्र और जाति-प्रथा साथ साथ नहीं चल सकते। पिछले तीस वर्षों से मैं यही कहता आ रहा हूँ कि राजनैतिक और आर्थिक विकास के साथ साथ सामाजिक विकास को भी समान महत्त्व दिया जाना चाहिए। अनेक लोगों का विचार है कि सामाजिक समस्या अनुसूचित अथवा पिछड़ी हुई जातियों तथा स्त्रियों के कल्याण की समस्या है। वास्तव में यह तो बदलती हुई सामाजिक चेतना की समस्या है जिसे आज के प्रजातान्त्रिक मूल्यों और विचारों के साथ तालमेल बैठाना है। यह तो कुछ जानी मानी और विश्वासनीय लगने वाली बातों को छोड़ने की समस्या है। आधुनिक प्रजातान्त्रिक मूल्यों और हमारे विचार-दर्शन के सर्वश्रेष्ठ तत्त्वों को जोड़ने की समस्या है। यह तो प्रेरणा-प्रवृति के आरम्भ होने के स्तर में परिवर्तन की समस्या है और इसे भली प्रकार समझने के लिए हिन्दू समाज की प्रकृति को समझने और उसका मूल्यांकन करने की आवश्यकता है। क्या हम आधुनिक अर्थों में कभी एक राष्ट्र थे? क्या कभी हिन्दु धर्म में राष्ट्रीयता के सभी गुण मौजूद थे? क्या अंग्रेजी राज्य में प्रशासन की एक इकाई बन जाने से पूर्व राष्ट्रीयता एक आकांक्षा मात्र न थी? क्या अपने इतिहास के आदि काल से हम एक राष्ट्र रहे हैं? क्या हमारी परम्परायें

आधुनिक लोकतन्त्र की सरचना को सिद्ध करने वाली है ? भारत की आध्यात्मिक प्रतिभा क्या है ?

भारतीय इतिहास के रंगमच पर से जब पर्दा उठता है तो हम देखते हैं देश मे विभिन्न समुदाय बसे हैं जो एक दूसरे से सगठन के लिए प्रयत्नशील हैं। एक खुला खेतीहर समाज है, तीन वर्णों को मानने वाला आर्य समाज है, जिसका धर्म सरल है और जिसकी आरम्भिक ऋचाओ में आज के हिन्दू धर्म मे प्राप्त पवित्रता-अपवित्रता तथा पुर्नजन्म के विचारो के लिए कोई स्थान नही है। साथ ही उससे अलग पर अत्यधिक विकसित दस्यु समाज है। छोटी छोटी जातियो और कबीलो का एक समूह है जिनके मध्य प्राकृतिक बाधाओ के साथ साथ मनोवैज्ञानिक और सामाजिक बाधायें भी है। आर्यों की वर्ण चेतना तथा द्विज और अद्विज का भेद—जिनमें से प्रथम को रहस्यमय धार्मिक सस्कारो मे दीक्षित होने तथा उच्चता प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार है तथा दूसरे को इन सब अधिकारो से वचित रखा गया है-आदि जिन कारणो से उन्होने यहाँ के मूल-निवासियो को जीत लिया था, समाज को विभिन्न स्तरो मे बट जाने को प्रोत्साहन देते हैं। कालान्तर में एक नया वर्ग शूद्र अथवा मजदूर—श्रमिक वर्ग जुडता है और त्रिवर्ण समाज चतुर्वर्ण समाज बन जाता है।

समाज का चार भागो मे आकार मूलक सैद्धातिक विभाजन केवल कल्पनाजन्य विचार है। वर्गों की अपेक्षा रोटी-बेटी का सबंध करने वाले समूह सामाजिक व्यवस्था के केन्द्र बन जाते हैं। जाति सत्य होने लगती है और वर्ण कोरी कल्पना मात्र रह जाता है। स्थानीय समूहो को अपने भीतर स्वीकार करके तथा उन्हे समाज व्यवस्था में बलपूर्वक निम्न स्थान पर आसीन करके जातीय-समाज का विस्तार सम्भव होता है। जो जातियाँ इस बलपूर्वक मिलाये जाने का प्रतिरोध करने की शक्ति रखती हैं और अपनी अलग सत्ता-बनाए रखने के लिए सगठित हैं अपना अलग समूह बनाए रखती हैं तथा अन्य जातियो के अतिरिक्त केवल ब्राह्मणो की बल-पूर्वक पर स्पष्ट उच्चता को स्वीकार कर अपरिभाषित अद्विज की स्थिति के साथ समझौता कर लेती हैं। कमजोर समुदाय या असगठित कबीले चतुर्वर्ण व्यवस्था से बाहर रखे जाते हैं। उन्हें गाँवों से बाहर रहना पडता है और अमानवीय सामुदायिक दासता का जीवन व्यतीत

करना पड़ता है। शारीरिक श्रम की परेशानी से छुटकारा पाकर ब्राह्मण मस्तिष्क में ज्ञान की अदम्य प्यास जाग उठती है। अनेक परिकल्पनाओं द्वारा संसार की गुत्थी सुलझाने के प्रयत्न किये जाते हैं। एक आदि पुरुष की कल्पना की जाती है और प्रकृति के अन्य अवयव जिनके प्रतीक देवता होते हैं उसी के भिन्न भिन्न स्वरूप माने जाते हैं। भौतिक जगत से ऊपर और इसके पार उस परम सत्ता की कल्पना की जाती है और इस सत्य का ज्ञान प्राप्त करने के लिए कष्ट साध्य प्रयत्न किए जाते हैं। इस प्रकार पराभौतिकी और दर्शन शास्त्र का जन्म होता है।

ब्राह्मण-बुद्धि विकास के उच्चतर स्तरों तक उठती जाती है। दृश्यजगत को केवल मात्र मायाजाल मान लेने से हिन्दू पराभौतिकी में गहनता और सूक्ष्मता आती चलती है। माया और कर्म के सिद्धांतों के स्वरूप निर्धारण के लिए और भी बहुत सी बातों की कल्पना की जाती है जिनके अनुसार मनुष्य थोड़े से समय के लिए इस संसार में विश्राम करने आता है और अनन्त शान्ति और अनन्त विश्राम की खोज करता रहता है। अपने पूर्व जन्म के कार्यों के अनुसार कभी वह मनुष्य के रूप में, कभी पशु के रूप में तथा कभी अनेक अन्य रूपों में जन्म धारण करता है। सिद्धांत को तर्क की चरम सीमा तक पहुंचाने का अच्छा उदाहरण व्यक्ति के जीवन को ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, और सन्यास आश्रमों में बांटने में दिखाई पड़ता है। 'मानव जीवन का आरम्भ भिक्षुक से और इसका अन्त संसार के पूर्ण त्याग तथा उस परम आनन्द की प्राप्ति के उद्देश्य से जिसकी एक झलक भी इस सांसारिक जीवन में नहीं पा सकते आत्मा में पूर्णतया विलीन हो जाने में है।' जीवन का लक्ष्य त्याग है, भोग नहीं। इस प्रकार की विचार संरचना पर कर्म से संबन्धित जाति-प्रथा थोप दी जाती है और सामाजिक स्तर की भिन्नता को न्याय-संगत सिद्ध किया जाता है।

ब्राह्मण विद्या केन्द्रों से उद्भूत ये विचार भारत की विभिन्न जातियों और समूहों में जिनकी अपनी परम्परायें, अपने रीति-रिवाज, अपने विश्वास तथा भ्रम में डालने वाली अनेकों विभिन्नताऐं हैं, फैल जाते हैं और एक ऐसा सामान्य बन्धन पैदा कर देते हैं जैसा कोई लौकिक शक्ति पैदा नहीं कर सकती थी। ये विचार सूत्र विभिन्न विश्वासों को एक दृढ़ प्रतिमान के रूप में बाँध कर राष्ट्र की

न सही पर व्यवस्थित समाज को आधार शिला रखते हैं। सिन्धु घाटी के धार्मिक विचारों के अवशेष और आज के हिन्दू धर्म के स्वरूप मे यह भली भांति सिद्ध हो जाता है कि इस मिश्रण और विलय मे द्रविड़ प्रथा का उतना ही योग दान हैं जितना कि आर्य पद्धति का। आर्यों और द्रविडो के इस सगम में हिन्दू अथवा भारतीय सभ्यता की और भी कई धारायें मिल जाती हैं। उत्तर भारत का एक भाग जिसे 'ब्रह्मावर्त' कहते है कामरूप से कच्छ तक और हिमालय से कन्याकुमारी तक विस्तृत होकर भारत का नाम धारण करता है। यह मिलीजुली सभ्यता हम सब की विरासत बन जाती है।

जैसे जैसे समाज में जटिलता आती जाती है और समानान्तर गतिशीलता शिखर गतिशीलता में बदलने लगती है वैसे वैसे वाह्य और आतंरिक शुद्धि-अशुद्धि के विस्तृत नियम बनने लगते हैं। वर्ण-धर्म सबके कर्त्तव्य निश्चित करता है, विवाह, सम्पत्ति, तथा सामाजिक व्यवहार सम्बन्धी नियमो की रचना होती है। स्पर्श और निकटता पर लगे प्रतिबध अनेक ऐसे व्यवहारिक पदो के रूप में प्रतिफलित होते हैं जो जहाँ तक सम्भव हो ऊंच और नीच के सम्मिलन को रोकते हैं। कुओ, मन्दिरो और पाठशालाओं से निम्न वर्गों को दूर रखा जाता है और उनके कामो तथा कर्त्तव्यो पर ही नियन्त्रण नही किया जाता वरन् उनके बच्चो को वह शिक्षा जिसके द्वारा वे अपना सामाजिक उत्थान कर सकते हैं, प्राप्त करने से वंचित रखा जाता है। हमारा ससार बडा ही नियमबद्ध है और जीवन के निर्दिष्ट क्रम मे मनुष्य को सब प्राणियों से ऊँचा और ब्राह्मणो को मनुष्यो में सबसे ऊंचा स्थान दिया गया है। इस प्रकार ब्राह्मण मृत्यु के पश्चात नियमपूर्वक मोक्ष की कामना कर सकता है जब कि इस क्रम में निचले स्तर के प्राणी अपने से ऊंचे स्तर को प्राप्त करने की ही आशा कर सकते हैं। वर्ण धर्म व्यक्ति को सामाजिक क्रम में अपने स्तर के अनुरूप व्यवहार पद्धति का अनुसरण करने के लिए बाध्य करता है, और इस बंधन के पुरस्कार-स्वरूप उसे अगले जीवन मे सामाजिक क्रम में उच्च स्तर प्राप्त करने का अवसर देता है। इन सब कल्पनाओ में वह कल्पना जो जाति प्रथा को कर्म अथवा प्रतिकार के रहस्यमय नियम का साधन मानती है, सबसे अधिक अप्रमाणिक और भेद्य है। परन्तु यह रहस्यमयी कल्पना आज भी जीवित है।

लोग इस बात को भूल जाते हैं कि यह विश्वास, कल्पनायें और अनुमान एक विशिष्ट सामाजिक, आर्थिक पद्धत्ति की उपज हैं जिसका आविर्भाव एक विशेष ऐतिहासिक संदर्भ में हुआ था। वे किसी ऐसे स्वाभाविक मनोविज्ञान का प्रतिफलन नहीं हैं जिसका जाति-सम्बन्धों से दूर पार का भी रिश्ता हो। इनमें से अनेक कल्पनाओं का सामाजिक उद्देश्य है। वे समाज को स्थायित्व प्रदान करती हैं; प्रतिस्पर्द्धा को समाप्त करके सन्तोष और सामंजस्य उत्पन्न करती हैं। उनकी न तो दैविक उत्पत्ति हुई है और न ही कोई दैविक शक्ति उनका नियमन करती है। परन्तु उनके विषय में सोचा ऐसा ही जाता है। ये विचार और कल्पनाएं हिन्दू धर्म की अविभाज्य अंग बन गई है और हमारी चेतना में इस प्रकार गड़ गई हैं कि जीवन यापन की भौतिक परिस्थितियाँ पूर्णतया बदल जाने पर भी उनका अत्यधिक प्रभाव हम पर है।

ब्राह्मण रूढ़िवादिता के प्रति आत्मा के विद्रोह के प्रतीक महावीर और गौतम निरर्थक धार्मिक आडम्बर के पालन की अपेक्षा सदाचरण की श्रेष्ठता पर बल देते हैं। रामानन्द, कबीर, नानक, रैदास तथा अन्य संतों ने हिन्दु धर्म को प्रतिक्रिया स्वरूप इस्लाम की एकता और मनुष्य में छिपे ईश्वरत्व पर जोर दिया और उसको समाज में सम्मानप्रद स्थान न देने को अपराध ठहराया। स्वामी विवेकानन्द इस बात पर जोर देते हैं कि हिन्दु समाज की विशिष्ट संस्थाएं जाति, संयुक्त परिवार, उत्तराधिकार के नियम तथा इनसे उत्पन्न सम्बन्ध, कानूनी और सामाजिक संस्थाएं हैं, धार्मिक नहीं। उन्होंने कहा है कि बुद्ध से लेकर राममोहन तक सभी ने जाति को धार्मिक संस्था मानने की भूल की। पुरोहितों के सारे शोर गुल के बावजूद जाति एक सामाजिक संस्था है जिसने अपना कार्य पूरा कर लिया है और अब भारत के वातावरण को दुर्गन्ध से भर रही है। वे धार्मिक कर्मकाण्ड, रीतियों, अर्थहीन समारोहों, तथा कठोर व्यवहार के आलोचक थे और बदलते हुए समय के साथ सामाजिक संगठन को बदलने पर बल देते थे। राममोहन राय ने योरुपीय ज्ञान के सिद्धान्तों का उपनिषदों के दार्शनिक विचारों के साथ सम्मिश्रण कर के हिन्दु धर्म की पुर्नव्याख्या करने का प्रयास किया। स्वामी दयानन्द ने वेदों से वसुधैव कुटुम्बकम्, ईश्वर के प्रति अपराभौतिक विचार तथा उन्मुक्त समाज की प्रेरणा प्राप्त की। लोकमान्य

तिलक का कर्मयोग का आह्वान स्थितप्रज्ञ, निष्काम कर्म तथा लोक संग्रह अर्थात् सत्यज्ञान, सत्य अनासक्त कर्म, और लोक कल्याण के विचारों पर आधारित था। परन्तु इन सब के बावजूद भी हिन्दु समाज न बदला। रूढिवादिता का दुर्ग अजेय बना रहा। यह हिन्दु समाज की जन्मजात दुर्बलता थी जो साम्राज्यवाद के पहले से ही चली आ रही थी और शायद इसीने साम्राज्यवाद को यहाँ आकर्षित करने और उसे स्थायी बनाने मे योग दिया। जाति-प्रथा, क्षेत्रीयता, सामाजिक अन्याय और अज्ञान की परतें बढ जाने से इस दुर्बलता का का जन्म हुआ था। प्रचलित परिस्थितियो मे सुधारक राजनीतिक स्वतन्त्रता की तो नही सोच सकते थे पर उन्होने हिन्दु समाज को बडे पैमाने पर संगठित करने और उसमे समाजभक्ति जगाने का प्रयत्न अवश्य किया। परन्तु वे नए नए समुदाय आरम्भ करने में ही सफल हो सके। इनमें से अनेक सम्प्रदाय तो धीरे धीरे रूढिवादी हिन्दु धर्म में हा समा गए और सिख धर्म की भाति कुछ दूसरे समुदाय अलग होकर दूर हटते चले गए और उन्होने देश के राजनीतिक जीवन मे नया तत्व उपस्थित किया।

तो यह थी हमारी स्थिति जब मोहनदास करमचन्द गाधी अपने आत्म संयम, नम्रता और साधुता के साथ भारतीय रंगमंच पर अवतीर्ण हुए। विश्वास करने वाले करोडो भक्तो को वे प्राचीन काल के ऋषि अथवा भगवान के साक्षात् अवतार लगते थे। उन्होंने जान लिया था कि 'हमारी गुलामी का कारण हमारी अपनी अपूर्णतायें हैं', ब्रिटिश सरकार की तोपें नही। वे निष्ठावान हिन्दू थे और सच्चे अर्थो मे धार्मिक पुरुष थे। परन्तु उनका हिन्दुत्व आकाश के समान व्यापक था। स्मृतिकारो, कौटिल्य और मैकियावेली तथा आधुनिक राजनीतिक विचारधारा—जिनके अनुसार लौकिक और धार्मिक दो अलग अलग शाखायें हैं और राजनीति एवं शासन-नीति की नैतिकता व्यक्तिगत जीवन की नैतिकता से भिन्न वस्तु है–से ग्रस्त मस्तिष्को के लिए उनकी यह मान्यता कि जीवन एक अविभाज्य इकाई है और इसे सकीर्ण दायरो मे नही बाटा जा सकता, एक उदार विचार था। उनके उपदेश और आचरण मे तनिक भी भेद नही था। उनका प्रयास सदा ही विचार और कर्म को समन्वित करना था, इसलिए उनके लिए ज्ञान का अर्थ कर्म ही था। उनके अनुसार राजनीति और नीतिशास्त्र में न केवल अपरिहार्य सम्बन्ध था

वरन् दोनों की सीमाएं एक ही थीं। वे एक ऐसी भाषा बोलते थे जिसे भारत का जन-सामान्य भली प्रकार समझता था और क्योंकि जनसामान्य की जानकारी का स्तर अत्यन्त ही निम्न होता है इसलिए इसे ऊंचा उठाने के लिए वे स्वय नीचे झुक जाया करते थे। परन्तु वे दृढ़ विश्वास, साहस और सच्ची ईमानदारी से बोलते थे। 'सत्य' और 'अहिंसा' ये दो शब्द जिनका उन्होंने इतना अधिक प्रचार किया उनके विचारों का सार प्रकट करते हैं। वे कहते हैं 'संसार मानता है कि ईश्वर ही सत्य है, पर यह कहना अधिक उचित होगा कि सत्य ही ईश्वर है। जिस प्रकार पशु जगत का नियम हिंसा है उसी प्रकार मनुष्य जगत का नियम अहिंसा है। अच्छे उद्देश्य के लिए भी बुरे साधनों को न्यायसंगत सिद्ध नहीं किया जा सकता। हमारे भय, लालच, और दम्भ हमारे वास्तविक शत्रु हैं। दूसरों को बदलने से पूर्व अपने को बदलना आवश्यक है। सत्य, प्रेम, उदारता के नियम जिनका पारिवारिक जीवन में पालन किया जाता है: समूह, देश और राष्ट्रों के लिए भी लागू किए जा सकते हैं।' राजनीतिक क्षेत्र में ये विचार अव्यवहारिक लगते हैं, परन्तु फिर भी महात्मा गांधी ने इन सभी सिद्धातों पर अपने जीवन में अमल किया।

उन्होंने भली प्रकार संश्लिष्ट और सुदृढ़ विचारधारा का विकास करने की कभी चिन्ता नहीं की। वे तो नए अनुभवों के प्रकाश में अपने विचारों को सुधारते हुए, उनमें परिवर्तन करते हुए, उन्हें व्यापक बनाते हुए विकास की प्रक्रिया में से गुजरते रहे। असंगतियों के भय की अपेक्षा वे अपनी आत्मा की आवाज और मनुष्य के प्रति प्रेम से अधिक बंधे हुए थे। उनका यह कहना कि स्वराज्य भगवान भी नहीं दे सकता, उसे तो हमें स्वयं अर्जित करना पड़ेगा, उद्देश्यवादी दृष्टिकोण को मिथ्या सिद्ध करता है, परन्तु राजनीतिक निर्णयों के सदर्भ में उनका यह कहना कि वे भगवान के हाथ में है इसी दृष्टिकोण की स्वीकृति सिद्ध करता है। उन्होंने जब यह कहा कि बिहार का भूकम्प अस्पृश्यता के पाप का प्रायश्चित है तो टैगोर ने इसका प्रतिवाद करते हुए कहा था कि एक दैवी प्रकोप का इस प्रकार का अवैधानिक कारण बताने से असंगतता को बल मिलेगा। गांधीजी ने अविचल भाव से उत्तर दिया कि मनुष्य भगवान के विधान को नहीं समझ सकता। जब लोग उनके पैर छूते थे तो वे काँप उठते थे। एक बार उन्होंने कहा था कि 'महात्मा गांधी की

जय' का घोष, मेरे हृदय को तीर की तरह वेधता है। परन्तु जब दलितवर्गों के लिए २१ दिन का अपना दूसरा उपवास ८ मई १९३३ को आरम्भ किया तो उन्होने कहा था कि ऐसा उन्होने अपनी अन्तर-आत्मा की आवाज पर किया था। 'जब मै पिछली रात सोया तो अगले दिन सुबह को उपवास की घोषणा करने का मेरा तनिक भी विचार नही था। आधी रात को किसी ने मुझे अचानक जगा दिया और तब बाहर या भीतर की-मैं नही कह सकता-आवाज ने मेरे कान मे कहा 'तू उपवास आरम्भ कर दे।' मैने पूछा: 'कितने दिन के लिए?' '२१ दिन के लिए'। 'कब से आरम्भ करूँ?' 'कल से।' यह निर्णय करके वे सो गए। उनकी यात्रा के दौरान एक गाव के लोगो ने उनसे कहा कि उनके गाव मे आने के प्रभाव से यह चमत्कार हुआ है कि गाव का कुंआ पानी से भर गया है। उन्होने कहा अगर तुम ऐसा सोचते हो तो तुम मूर्ख हो। यह तो सयोग-मात्र है। अगर कोई कौआ खजूर के पेड़ पर उस समय बैठे, जबकि वह गिर रहा हो तो क्या तुम यह कहोगे कि कौए के बोझ से वृक्ष नीचे आ गया। अपनी आत्मकथा मे उन्होने यह स्वीकार किया है कि उनकी प्रबल इच्छा भगवान का साक्षात्कार करने तथा मोक्ष प्राप्त करने की थी और इस का मार्ग उन्होने मानवता के प्रेम और दुखियो के दुख दूर करने मे पाया। वे कार्ल मार्क्स की इस व्याख्या से सहमत थे कि मनुष्य के जड प्रकृति के साथ कार्य-व्यापार, उसके आर्थिक जीवन, उसके उत्पादन के तरीको, तथा आर्थिक माल के वितरण का प्रभाव राजनीति, आचार-विचार, तथा समुदाय के सामाजिक जीवन पर पड़ता है। परन्तु वे यह नही मानते थे कि नई सामाजिक व्यवस्था के निर्माण के लिए पुरानी व्यवस्था को नष्ट करना जरूरी है तथा जीवन मे सर्वाधिक महत्त्व आर्थिक पहलू का है। उन्होने अहिंसा को किसी संघर्ष नीति के तौर पर अंगीकार नही किया, बल्कि इसलिए अंगीकार किया कि वे उसे हिंसा से बढ कर प्रभावी साधन मानते थे। उनका विश्वास था कि सत्याग्रह के रूप मे नैतिक, मनोवैज्ञानिक तथा बाहरी साधनो का समुदाय के आचरण का नियन्त्रण करने मे उपयोग आम हड़ताल जैसे बाहरी दवाव या हिंसा के उपयोग से कही अधिक उच्च स्तर का था। वे ऐसे व्यक्ति थे जिन्होने प्रेम और सत्य के साधनो से इतिहास का पुनर्निर्माण करने का निश्चय कर लिया था; उन्होने नैतिकता मे प्रभविष्णुता पाई थी।

१६२०-३० के मध्य वे हमारी जनता को अधिक सुदृढ़ रूप से संगठित करने के उपाय खोजने में लगे रहे। उन्होंने ही सर्व प्रथम यह अनुभव किया कि जर्मनी और रूस की भांति तथा अमरीका के विपरीत भारत के विभिन्न भाषावार क्षेत्रों की परम्परा तथा इतिहास काफी प्राचीन और मूल्यवान हैं। एक सुदृढ़ राष्ट्रवाद न केवल इन अविच्छिन्न परम्पराओं तथा विकसित भाषाओं को संरक्षण दे सकेगा, वल्कि एक वार जव राष्ट्रीय हित को सहर्ष सर्वोपरि समझा जायगा, तब भाषा विशेष तथा परम्परा विशेष के प्रति गर्व के भाव का भी स्वागत किया जायगा। वे स्वयं ही भारतीय राष्ट्रवाद के साकार रूप वन गए थे, और राष्ट्रभाषा तथा भाषावार राज्यों के निर्माण के विचारों को वे उपयोगी ही नहीं अनिवार्य समझते थे।

अस्पृश्यता-निवारण तथा चतुर्वर्णिक व्यवस्था को उसके प्राचीन रूप में कायम करके वे सुदृढ़ एकता कायम करना चाहते थे। हर व्यक्ति जन्मतः समान है, परन्तु हर व्यक्ति का रुझान, स्वभाव, व्यवहार, रुचि आदि अलग अलग होती हैं। व्यक्तियों की आध्यात्मिक प्रगति में भी अन्तर होता है। उनका कहना था कि इन विभेदों को संघर्ष तथा प्रतिस्पर्द्धा से मिटाने के वजाय क्या यह सदा के लिए अच्छा नहीं होगा कि चतुर्वर्णिक तथा वंशपरम्परागत व्यवस्था को प्राकृतिक नियामक सिद्धांत के रूप में स्वीकार कर लिया जाय। प्रति सप्ताह और प्रतिमास अपने 'यंग इण्डिया' और वाद में 'हरिजन' में उन्होंने इस विषय पर विचार विमर्श किया। अस्पृश्यता अनेक फन वाला नाग है। अछूतों के वारे में उन्होंने कहा, "कि वे समाज के कोढ़ हैं, आर्थिक दृष्टि से दरिद्र हैं और धार्मिक दृष्टि से उन्हें उन स्थानों में प्रवेश करने से रोका जाता है जिन्हें हम भगवान का मन्दिर कहते हैं। अगर हमने अस्पृश्यता का उन्मूलन नहीं किया तो पृथ्वी पर से हमारा उन्मूलन हो जाएगा। वे मानते थे कि चार वर्णों का होना वुनियादी, प्राकृतिक तथा अनिवार्य है, परन्तु विभिन्न जातियों और उपजातियों का होना अभिशाप है। वर्ण मानव-शक्ति-संचय के प्राकृतिक नियम तथा सच्चे अर्थशास्त्र को पूर्ण करता है। आत्मोत्कर्ष की विभिन्न अवस्थाओं का वर्गीकरण करता है। सामाजिक स्थायित्व और प्रगति की सर्वोत्तम व्यवस्था है। जीवन की पवित्रता के विशेष स्तर के परिवारों को एक सूत्र में वाँधता है।

परिवारो के स्तर का निर्णय व्यक्ति विशेष की मनमानी पर नहीं छोड़ता। यह वश-परम्परा के सिद्धात मे विश्वास रखता है और केवल सास्कृतिक व्यवस्था होने के कारण यदि किसी परिवार को अपने जीवन को उन्नत करने के निर्णय की अपेक्षा किसी एक ही समूह मे रहना पड़ता है तो उसमे किसी प्रकार का अन्याय नही समझता। सामाजिक जीवन मे परिवर्तन बहुत धीरे धीरे होता है और जीवन में परिवर्तन के अनुरूप जाति नए नए समूहो को स्वीकार करती चलती है। बादलो की आकृति मे होने वाले परिवर्तनो की भाँति ये परिवर्तन शांत और सरल होते हैं। इससे अधिक सामजस्य पूर्ण व्यवस्था की कल्पना करना कठिन है।" जाति निम्नता अथवा उच्चता का बोध नहीं कराती, यह तो विभिन्न दृष्टिकोणो तथा जीवन-पद्धतियो की प्रतीक है। जातियो के माध्यम से आत्म-सस्कार की विभिन्न पद्धतियो का वर्गीकरण हुआ है। यह तो पारिवारिक व्यवस्था के सिद्धात का ही विस्तार है। परिवार तथा जाति दोनो मे ही मूल बात रक्त तथा वश-परम्परा की होती है। आर्थिक दृष्टि से भी इसका महत्व है। यह वश परम्परानुगत योग्यता को सुरक्षित रखती है और इससे प्रतिस्पर्द्धा कम होती है। यह तो गरीबी का निदान है और इसमें व्यावसायिक सगठन की उपयोगिता है। यह तो भारतीय समाज की प्रयोगशाला मे समाज व्यवस्था का एक प्रयोग है। यदि हम जाति-व्यवस्था की उपयोगिता सिद्ध कर सक तो विश्व को स्पर्द्धा के प्रतिरोध मे एक प्रभावशाली निदान प्राप्त हो जायगा। मानव की मूल प्रकृति ही वर्ण-व्यवस्था अनुरूप है। हिन्दु धर्म ने इसे वैज्ञानिक रूप मे प्रस्तुत किया है। आज तो जातियाँ विकृत रूप मे विद्यमान हैं, परन्तु विकृति के उन्मूलन के नाम पर कही हम मूल व्यवस्था को ही नष्ट न कर डालें। यह मनुष्य का आविष्कार नही है, वरन् न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण के सिद्धात की भाँति,सदैव विद्यमान एव क्रियाशील प्रवृति का वर्णन मात्र है, प्रकृति का अटल नियम है। इसी प्रकार की अन्य सूक्तियाँ भी उपलब्ध हैं। स्थिति के इस पहलू के सदर्भ में गाधी जी वर्ण और जाति पदों का एक दूसरे के लिए प्रयोग करते हैं और उनके अनुसार लोगो को मोटे तौर पर इन चार व्यवसायों मे बाटा जा सकता है : शिक्षण, रक्षण, सम्पत्ति अर्जन तथा शारीरिक श्रम। तो ऐसी वर्णव्यवस्था को हम पुर्नजीवित करना चाहते हैं और यह झाड़ू से महासागर उलीचने जैसा कठिन कार्य है।

श्रौर जहां तक इस पुर्नजीवन का प्रश्न है गांधीजी की भविष्यवाणी सत्य ही सिद्ध हुई।

इस आशा से कि हिन्दु चेतना इन नये विचारों को ग्रहण कर लेगी गांधी जी ने जाति और वर्ण के सम्वन्ध में अपने विचारों की व्याख्या की और उन पर वल दिया, पर साथ ही वे अस्पृश्यता उन्मूलन को सर्वाधिक आवश्यक वात मानते थे। मैकडोनल्ड के साम्प्रदायिक निर्णय के विरोध में २० सितम्वर १९३२ को आरम्भ किया गया उनका उपवास ऐतिहासिक घटना थी। शाहबाद के कांग्रेसजनों ने महात्मा जी को तार द्वारा सूचना दी कि पूना वार्ता में राष्ट्रवादी दलितवर्गों का प्रतिनिधित्व मैं करूंगा। परन्तु मेरे वड़े भाई की वीमारी आड़े आ गई। और मैंने एक क्रोध भरा पत्र उन्हें लिखा कि उपवास की कठिन परीक्षा में पड़ने के वदले गोलमेज कान्फ्रेंस में सुरक्षित स्थान प्राप्त कर लेते। परन्तु उनके सचिव ने उत्तर दिया कि गाँधीजी किसी भी प्रकार के विभेद को हिन्दुओं और अछूतों दोनों के ही लिए हानिकारक समझते हैं।

यद्यपि उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया था कि उनका उपवास सुरक्षित स्थानों के विरुद्ध नहीं है पर इस व्यवस्था को स्वीकार करने में वे प्रसन्न नहीं थे। वे पृथक निर्वाचन मण्डल भी नहीं चाहते थे। पूना समझौते में इसके समाप्त हो जाने से उन्हें वड़ी खुशी हुई। उनके उपवास ने हिन्दुओं में भावनात्मक हृदयमन्थन को जगाया। इससे अस्पृश्यता समाप्त नहीं हुई, और वह हो भी नहीं सकती थी; अलगाव और दमन का भी अन्त नहीं हुआ परन्तु अस्पृश्यता को मिलने वाली जन-स्वीकृति समाप्त हो गई। सुदूर अतीत तक फैली शृंखला टूट कर विखर गई केवल कुछ कड़ियां ही वची रह गईं पर अव कोई नई कड़ियाँ वनाकर शृंखला को फिर से नहीं जोड़ेगा।

इस भावनात्मक उथल-पुथल का परिणाम यह हुआ कि ३० सितम्वर १९३२ को 'छुआछूत विरोधी लीग' का जन्म हुआ और जव वादमें गांधीजी ने हरिजन नाम खोज निकाला तो इसका नाम 'हरिजन सेवक संघ' हो गया। अनेक सवर्ण हिन्दू इससे प्रसन्न नहीं थे। पूना समझौते के विरुद्ध एक अखिल भारतीय आन्दोलन छेड़ा गया जिसका उद्धेश्य इसे भारत सरकार एक्ट में शामिल किए जाने से रोकना था।

स्वभावतः विद्यार्थी जीवन से ही मैं अपने जाति भाइयो की दुर्दशा के प्रति चिंतित था। मैं इस बात पर बल देता था कि अवसर-निषेध तथा दासवृत्ति के अंशो के साथ अस्पृश्यता हिन्दु समाज की सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था का अभिन्न अंग है। और सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के पुनंगठन द्वारा ही इसका उन्मूलन हो सकता है। इसका अर्थ था ससार की सबसे बड़ी क्रान्ति-सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक क्रान्ति। बिहार 'छुआछूत विरोधी लीग' के उद्घाटन के अवसर पर भाषणकर्त्ताओ की उपदेशात्मक प्रवृत्ति से मुझे बडा क्लेश हुआ। अपने ही भाइयो को जो सस्कृति और उपलब्धियो में उन्ही के समान थे, बेमिसाल जुल्म और अत्याचार का शिकार बना कर दास और अर्ध-मानव के स्तर तक पहुँचा देने वालो के मुँह से 'शराब-शिकार-छोडो-सफाई-रखो' वाले भाषण सुनकर मुझे बडी पीडा होती थी। अपने भाषण में मैने कठोर शब्दो का प्रयोग किया और मेरे साहस को देखकर लोग चौंक उठे। परन्तु डाक्टर राजेन्द्र-प्रसाद ने मेरी बात बडी गम्भीरतापूर्वक सुनी, उन्होने मेरे भाषण पर कोई टीका-टिप्पणी नही की और मुझसे बिहार को कुछ समय देने के लिए कहा। मैंने कलकत्ता जाने का विचार त्याग दिया और 'छुआ-छूत विरोधी लीग' (बाद मे हरिजनसेवक सघ) का मन्त्री बन गया। इस प्रकार बिहार में मेरा राजनतिक जीवन आरम्भ हुआ।

संघ के कार्य करने के ढग से मैं प्रसन्न नहीं था। इस दुखद सत्य को तो मानना ही पडता है कि गांधीजी के उपवास के फलस्वरूप क्षणिक जोश ही आया था, इससे कोई मनोवैज्ञानिक अथवा सामाजिक क्रान्ति नही हुई और न ही जन-साधारण के विचारो में परिवर्तन हुआ। यह तो बेचारे अछूतों के लिए दया से उत्पन्न कल्याण भावना ही थी।

अगस्त १९३३ में जेल से छूटने पर गांधीजी ने अपना अस्पृश्यता विरोधी आन्दोलन फिर से सभाल लिया। हिन्दुओं की विवेक-बुद्धि जागृत करने के लिए उन्होंने मई मास मे ११ दिन का उपवास किया। परन्तु जिस बड़े परिवर्तन की वे आशा करते थे वह नही आ पाया। हजारों लाखों लोगों की भीड गांधीजी की जय जयकार से से आकाश गुंजा देती पर जब उनका भाषण सुन कर लोग घर लौटते

थे तो उनमें कोई परिवर्तन दृष्टिगत नहीं होता था। कट्टर धर्मान्ध लोगों ने काले झण्डे लेकर गाँधीजी के विरुद्ध प्रदर्शन किया। इस समय गाँधीजी ने हरिजनों को 'गाय' की संज्ञा दी। मैंने गाँधीजी को लिखा कि ऐसा कहने में मुझे 'दया' की गंध आती है। गाँधीजी ने लिखा : गाय नम्रता और कष्ट सहन करने की प्रतीक है और हरिजनों को गाय कहने में उनके प्रति कोई वैर-भाव नहीं था।

जब मार्च १९३४ में गांधीजी ने बिहार का दौरा आरम्भ किया तो मैं उनके साथ था। भूकम्प से बड़ी बर्बादी हुई थी। गांधीजी एक स्थान से दूसरे स्थान तक लोगों का सांत्वना, शिक्षा और उपदेश देते हुए घूमे। बक्सर में उनकी सभा पर लोगों ने ईंटें बरसा कर इसे भंग करने का प्रयत्न किया, परन्तु यह बिना किसी विघ्न-बाधा के चलती रही। पूना समझौते के विरोधियों ने पं० लाल शास्त्री को गांधीजी का विरोध करने के लिए नियुक्त किया। वे गांधीजी से बड़े रुष्ट थे और उन्हें आगे न बढ़ने देने का निश्चय कर के उनकी कार के आगे लेट गए। गांधीजी कार से उतर कर पैदल ही अपनी यात्रा पर चल पड़े। आरा और पटना में भी गांधीजी का विरोध हुआ पर उन पर ईंट पत्थर नहीं बरसे। रात को दो बजे जब हम देवघर पहुँचे तो स्थिति बड़ी तनावपूर्ण थी, प्रदर्शन कारियों के दो समूह-एक समझौते के पक्ष में और दूसरा विपक्ष में—स्टेशन पर जमा हो गए। कुछ हाथापाई हुई, कुछ लाठियां चलीं। जिस कार में गांधीजी को जाना था उसका पिछला शीशा तोड़ दिया गया। परन्तु वे शान्त और गम्भीर रहे। उन्होंने उस रात सोने से इन्कार कर दिया और देवघर के पंडे श्री विनोदा नन्द झा से कहा कि अगले दिन वे पैदल ही सभा-स्थल तक जायेंगे। गांधीजी किसी भी दशा में अपना निर्णय बदलने को तैयार नहीं हुए। स्वयं सेवक रास्ते पर कतार बांध कर खड़े हो गए और लाठियों के तोरण-द्वार में से हो-कर गांधीजी सभा-स्थल तक गए। उनके पीछे-पीछे ठक्कर बापा, विनोदा नन्द झा और मैं चल रहे थे। सभा आरम्भ होने से पहले भी कुछ लाठियां चलीं। गांधीजी की उपस्थिति ने चमत्कार किया। भयंकर से भयंकर आततायी शांत होकर बैठ गए और शान्तिपूर्वक उनका भाषण सुनते रहे। १९३५ में भारत सरकार एक्ट में पूना समझौते को शामिल कर लिया गया और यह आन्दोलन समाप्त हो

गया । गाधीजी अपने जीवन के अन्त तक अस्पृश्यता विरोधी आन्दोलन का सचालन करते रहे ।

गाधीजी के आन्दोलन ने एक और सुधार आन्दोलन को जन्म दिया । उत्तर भारत मे परदा-प्रथा बडी कठोर थी, पर फिर भी बहुत बडी सख्या मे स्त्रियाँ उनकी सभा में आती । बहुत सी स्त्रियो ने आन्दोलनो मे भी भाग लिया और जेल गई । आज भारत मे ससार मे सबसे अधिक स्त्री-विधायक हैं—इस क्रान्ति का बहुत अधिक श्रेय गाधीजी को है । उन्होंने जाति-प्रथा पर कोई सीधा प्रहार नही किया क्योकि आरम्भ मे उनका विश्वास था कि इस प्रथा मे कुछ सुधार करके इसके द्वारा सारे हिन्दु समाज को एक राष्ट्र के रूप मे सगठित किया जा सकेगा । परन्तु कालान्तर में उनका यह स्वप्न भग हो गया । और अन्तत वे इसी परिणाम पर पहुँचे कि उन्हे जाति-प्रथा को समाप्त ही करना पडेगा । उन्होने कहा 'जाति-प्रथा को नष्ट करने का सबसे अधिक प्रभावशाली, नम्र और शीघ्रफलदायी उपाय यही है कि सुधारक अपने से ही इसका व्यवहार आरम्भ करे; और आवश्यकता पडने पर इसका परिणाम भुगतने को भी तैयार रहे । इस बात की आवश्यकता है कि सवर्ण हिन्दू लडकियाँ हरिजन पतियो से विवाह करें । हरिजन लडकियो का सवर्ण हिन्दू पतियो से विवाह करने की अपेक्षा यह कही अधिक अच्छा है । यदि मेरी बात मानी जाय तो अपने प्रभाव मे आने वाली प्रत्येक लडकी से में यही चाहूँगा कि वह हरिजन पति से विवाह करे ।' एक अन्य अवसर पर उन्होने कहा था कि अस्पृश्यता को पूर्णतया समाप्त करने के लिए जाति-प्रथा को समूल नष्ट करना पडेगा । क्योकि गाधीजी इस परिणाम पर पहुँच गए थे अत उनसे पूछा गया : 'आप अस्पृश्यता उन्मूलन के कार्य को जाति-प्रथा समाप्त करने के आन्दोलन का भाग क्यो नही बना देते, क्योकि जब जड ही नष्ट करदी जाएगी तो शाखाएं स्वयं सूख जायेंगी ।' गाधीजी ने इसका उत्तर दिया 'मेरे लिए किसी विचार को मानना एक बात है और सारे समाज से उन विचारो को पूरी तरह मनवाना दूसरी बात है, यदि मैं १२५ वर्ष तक जीवित रहा तो सारे हिन्दू समाज को अपने विचारो मे दीक्षित कर लूंगा ।'

गांधीजी के स्वप्न को अभी साकार करना बाकी है। यदि दृढ़ता का अर्थ गुणों का अभाव है तो मैं सदा इस विषय में दृढ़ रहने का दोषी हूँ। १९३७ में बिहार के गोपाल गंज में हुई एक सभा में, जिसमें डा० राजेन्द्रप्रसाद सहित अनेक नेता उपस्थित थे, मैंने राष्ट्रीय आन्दोलन की अपूर्णता की ओर ध्यान आकर्षित किया था। मैंने कहा था कि इस आन्दोलन की प्रेरणा और दृष्टिकोण मुख्यतया राजनैतिक हैं। यदि इसका शिखरोत्कर्ष करके इसे समाज के पुर्नगठन का आन्दोलन नहीं बनाया गया तो यह प्रेरणा असमय ही समाप्त हो जायगी। प्रेरणा मूलतः अधिक उन्नत और अधिक पूर्ण जीवन के लिए थी परन्तु 'स्वराज' की कल्पना शायद जानबूझ कर अस्पष्ट रखी गयी थी जिससे राष्ट्रीय आन्दोलन के संयुक्त मोर्चे के स्वरुप को कायम रखा जा सके। मेरी समझ में यह बात नहीं आती थी कि अतीतोन्मुख कर्म-परायणता उन नए मूल्यों की, जो राजनीतिक आन्दोलन की तह में थे, किस प्रकार प्रशंसा कर सकती है, किस प्रकार उन्हें स्वीकार कर सकती है, उनके विकास और पोषण का आधार तैयार कर सकती है। इसके लिए आवश्यकता थी लोगों के दृष्टिकोण को नया मोड़ देने की; नैतिक और बौद्धिक दृष्टिकोण में परिवर्तन करने की; सदियों पुराने बंधन तोड़कर नए आदर्शों और विचारों की खोज आरम्भ करने की। इस संदर्भ में मंने स्वर्ण हिन्दुओं द्वारा किए जाने वाले हरिजन-कल्याण कार्यों का अवलोकन किया और दया के अवतार इन मसीहाओं को प्रताड़ना दी। मेरे भाषण का कटा छंटा रूप अखबारों में छपा और गांधीजी ने डा०राजेन्द्रप्रसाद को यह पता लगाने के लिए कि मैंने वास्तव क्या कहा था, लिखा। उन्होंने प्रेम-पूर्वक मेरे विषय में लिखा : 'आग में तपकर शुद्ध हुआ सोना।' उनके स्नेह में प्रति मैं आभारी हूँ। परन्तु मेरी मान्यता थी कि सुधार द्वारा न कभी परिवर्त्तन आया था और न कभी आ सकता था। बाद में जब गांधीजी के विचार में परिवर्त्तन न हुआ तो मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

सामान्यतया यह विश्वास किया जाता है कि हरिजन समस्या के अतिरिक्त शेष सामाजिक समस्या आर्थिक समस्या है। और यदि आर्थिक समस्या का ठीक ढंग से समाधान हो जाय तो फिर कोई

चिन्ता नही। पर मेरे विचार से इस दृष्टिकोण में कुछ अधिक सार नही है। मेरी सदा से यही मान्यता रही है, और जीवन को अविभाज्य इकाई मानने की गांधीजी की व्याख्या भी यही सिद्ध करती है, कि सामाजिक (समस्य) को छोड़कर केवल राजनैतिक और आर्थिक (समस्याओ) की ओर ध्यान केन्द्रित करके हम इन दो को भी खतरे मे डालते है। हमारा दृष्टिकोण समन्वित होना चाहिए।

आज तो जातिवाद का जहर हमारे राजनैतिक जीवन में बुरी तरह घुल-मिल गया है और इससे हमारे प्रजातन्त्र को ही खतरा उत्पन्न हो गया है। इस घातक रोग की किसी को चिन्ता नही। तनाव बढ़ता जा रहा है और यह प्रवृत्ति वातावरण मे व्याप्त हो रही है। सगठित राष्ट्रवाद के लिए नही अपितु जो लोग साम्प्रदायिक हितो के लिए राजनैतिक शक्ति प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं, राष्ट्रीय एकता को कमजोर कर रहे हैं; जाति-प्रथा का दुरुपयोग कर रहे हैं। आवश्यकता इस बात की है कि इस अन्यायपूर्ण प्रथा के विरुद्ध बौद्धिक और सामाजिक सघर्ष के लिए राष्ट्र के नैतिक और आध्यात्मिक स्रोतो को जगाया जाय जिससे प्रजातन्त्र के विनाश से पूर्व ही इसे नष्ट कर दिया जाय। एकता के सूत्र का विस्तार जाति और क्षेत्र की सीमा के बाहर होना चाहिए।

हिन्दु समाज व्यवस्था मे जिसने इस्लामी और ईसाई समाज व्यवस्था को भी प्रभावित किया है, गांधीजी कोई मौलिक परिवर्तन न ला सके। इसके लिए कार्य करने की उन्हें इच्छा भी न थी, परन्तु अछूतो के लिए उन्होने मुक्ति का मार्ग खोल दिया। नई व्यवस्था लाने के लिए हिन्दु चेतना को लम्बी और पीडा-दायक प्रक्रिया मे से होकर गुजरना पड़ेगा। हिन्दुओ की सामाजिक व्यवस्था इतनी जटिल है कि वर्ग की समस्या, जिसके लिए, आवास, रोजगार, अच्छे विद्यालय की न्यूनतम आवश्यकताओ की प्रतिभूति चाहिए, जाति की समस्या से जिसके लिए नैतिक और मानसिक क्रान्ति की आवश्यकता है, अलग नही की जा सकती। समय बीतता जा रहा है और जातियो के बीच अविश्वास की खाई बढ़ती जा रही है। आवश्यकता इस बात की है कि बडे पैमाने पर कार्य किए जाने के

लिए हम अपने आप को समर्पित करें; प्रजातन्त्र को समान रूप से जन-साधारण के लिए हितकर बनावें; जाति की सीमा से बाहर व्यवहार को प्रोत्साहित करें; और ध्रुवीकरण को रोकें। जो भी कार्य करें वह गांधीवादी तरीके से नैतिकता की शक्ति का उपयोग करके ही करें। आज के युग में गांधीजी के अनेक विचार समयानुकूल नहीं प्रतीत होते, शायद गांधीजी भी स्वयं उनमें परिवर्तन करते, परन्तु समूह के आचरण को नैतिकता के बल द्वारा परिवर्तित करने का विचार और इसका प्रभाव जितना आज दिखाई पड़ता है, उससे कहीं अधिक शाश्वत सिद्ध होंगे।

मेरे विचार से अस्पृश्यता हमारे जीवन को लगा हुआ एक अभिशाप है। और जब तक वह अभिशाप हमारे साथ रहता है तब तक मेरे ख्याल से हमें यही मानना पड़ेगा कि इस पवित्र भूमि पर जो भी दुःख हम भोगते हैं, वह हमारे इस घोर और कभी न मिट सकने वाले अपराध का उचित और उपयुक्त दण्ड ही है।

—एक भाषण से उद्धृत।

समानता और सामाजिक परिवर्तन

एम० एस० गुरुपदस्वामी

मानव प्रगति के इतिहास के इस मोड पर ऐसा विश्वास किया जाता है कि आज दक्षिण-पूर्वी एशिया की समस्याओ के समाधान की कुंजी भारत के पास है। आर्थिक प्रगति की उपलब्धियो की दृष्टि से देखें तो लगता है हमने काफी लम्बा सफर तै कर लिया है, पर वास्तव मे हम आज भी उस चौराहे पर खड़े है जहाँ राष्ट्रीय विकास की गति को तीव्र करने सम्बन्धी कुछ समस्याओ के विषय मे निर्णय लेना है। कथनी और करनी के बीच के अन्तर को समाप्त करने तथा आगे का मार्ग निश्चित करने के लिए आवश्यक है कि हम समानता और सामाजिक परिवर्तन के विचार, आदर्श तथा व्यवहार पक्ष का समु-

चित विश्लेषण करें। समानता और सामाजिक परिवर्तन के सिद्धांत कोरे दिखावे के लिए नहीं है, ये बड़े आवश्यक और महत्वपूर्ण हैं। अधिकाधिक आर्थिक और सामाजिक समानता की दिशा में कार्य करने वाली शक्तियों का प्रवाह आज के संसार में बड़ी तेजी से बढ़ता जा रहा है। संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणापत्र में भी इन सिद्धांतों को विधिवत स्वीकार किया गया। इसके साथ ही आज सभी सरकारें तथा राजनैतिक पार्टियाँ—भले ही वे रूढ़िवादी हों अथवा समाजवादी हों अथवा पूंजीवादी हों अथवा साम्यवादी—अपने कार्य कलाप के चरम-उद्देश्य के रूप में सामाजिक एवं आर्थिक समानता स्थापित करने की घोषणा करती हैं।

आत्म-चिन्तन

जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है, स्वतंत्रता आंदोलन में कांग्रेस ने समानता के सिद्धाँत को अपने उद्देश्यों में प्रमुख स्थान दिया और स्वतंत्र भारत में सामाजिक एवं आर्थिक क्रांति लाने वाले स्पष्ट प्रस्ताव पास किये। १९३१ में करांची में एक प्रस्ताव पास किया गया था जिसके अनुसार शोषण का अंत करने तथा भूख से तड़पते करोड़ों व्यक्तियों की सच्ची आर्थिक स्वतन्त्रता को राजनतिक स्वतंत्रता का आवश्यक अंग माना गया था। व्यक्तिगत आय के सीमानिर्धारण में न्यूनतम और उच्चतम आय के बीच एक और बीस का अनुपात रखने की बात स्वीकार की गई थी। समानता के इन आदर्शों ने गर्म और नर्म दलों के बीच की खाई को पाट दिया था।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी इन मौलिक प्रस्तावों की गूंज यत्र-तत्र वाद-विवादों में सुनाई पड़ती रही है और समय समय पर आयोगों, समीतियों और सरकारी विभागों ने अपनी सिफारिशों में इनकी पुनरावृति की है। इस प्रकार हम समानता के आदर्श के प्रति वचनबद्ध हैं और यही सिद्धांत आर्थिक क्षेत्र में हमारी योजनाओं का अभिन्न अंग है। भारतीय सामाजिक संरचना का एक आवश्यक उद्देश्य है सामाजिक समानता जिसका एक अंग है आर्थिक समानता। ये उच्च आदर्श हमारे सविधान में भी निहित हैं और विशेष ध्यान आकर्षित करने की दृष्टि से राज्यनीति के निर्देशक सिद्धांतों के रूप में स्त्रियों की समानता, अस्पृश्यता-निवारण, प्राथमिक शिक्षा आदि के क्षेत्रों का वर्णन किया गया है। सभी नागरिकों को अवसर

की समानता, सामाजिक न्याय, काम करने का अधिकार, उचित मजदूरी का अधिकार, उपलब्ध कराना तथा सामाजिक सुरक्षा की निर्धारित मात्रा पर आधारित आर्थिक एवं सामाजिक सम्बन्धो को स्थापना करना योजना आयोग की विशेष सेवा-शर्तें हैं।

असमानता का कारण एव न्यायिक अधिकार

भारतीय समाज अत्यन्त प्राचीन समाज है और सामाजिक अलगाव की प्रणाली में असमानतायें जन्मजात हैं। देश मे व्याप्त इन असमानताओं ने हमारी आर्थिक प्रगति और इसके फलस्वरूप सामाजिक परिवर्तन में बाधायें खडी की हैं। उदाहरण के लिए जाति-प्रथा को लें। भले ही राष्ट्र की सृजनात्मक शक्ति का कितना ही ह्रास हो, इस प्रथा ने शारीरिक श्रम के प्रति अरुचि एव असतोष को उभाड़ कर प्रचलित असमानताओं को और भी कठोर एवं सुदृढ बनाने मे सहायता की है। सामाजिक-आर्थिक प्रगति तथा विकास कार्य-क्रमो मे जनता का अधिकाधिक सहयोग प्राप्त करने के लिए इन असमानताओं को यथाशीघ्र समाप्त करना अत्यन्त आवश्यक है। इस सम्बन्ध में किसी अपवाद को स्थान नही दिया जा सकता।

जहाँ तक आर्थिक असमानता का प्रश्न है विचारणीय बात यह है कि क्या आर्थिक समानता और आर्थिक प्रगति एक दूसरे की विरोधी है, अथवा आर्थिक समानता प्राप्त करने के लिए आर्थिक प्रगति को कुछ समय के लिए स्थगित करना आवश्यक है। परन्तु *आवश्यक तथ्यो के अध्ययन से पता चलता है कि समानता विकास के* मार्ग में बाधक न होकर उल्टे उसे प्रोत्साहित करती है। आदर्श रूप में सामाजिक विषमता आर्थिक विषमता की जननी है पर कभी कभी आर्थिक विषमता भी सामाजिक विषमता का कारण बन जाती है। आर्थिक विषमताओं में कमी करके सामाजिक विषमता को भी कम किया जा सकता है। सामाजिक विषमता अपने सभी रूपो में उत्पादकता के लिए हानिकर है अतः इसे दूर करने से आर्थिक विकास पर अच्छा प्रभाव पडेगा। हमारे देश को जनसंख्या का एक बहुत बडा भाग अपर्याप्त भोजन तथा प्रारम्भिक स्वास्थ्य और शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं के अभाव से पीडित है, अतः निम्न आय वाले वर्गों के जीवन-स्तर में किसी भी प्रकार की गिरावट का श्रम की पूर्ति और कुश-

लता तथा इसके परिणाम-स्वरूप उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। दूसरी ओर निम्न आय वाले वर्गों के आवश्यक उपयोग को प्रोत्साहित करके,—भले ही ऐसा करने में हमें उच्च वर्ग वालों की आय पर अंकुश ही क्यों न लगाना पड़े—हम उत्पादकता में वृद्धि कर सकते हैं। तीसरे यह भो सर्वसम्मत तथ्य है कि भारत में उच्च आय वाले वर्ग दिखावटी वस्तुओं के उपभोग पर अत्यधिक व्यय करते हैं और उन वस्तुओं में पूंजी निवेश करते हैं जो किसी भी प्रकार राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि करने में सहायक नहीं होती। पहले से ही धनी व्यक्तियों की वृद्धि को रोकने का कार्यक्रम जनता के उसी भाग तक सीमित है जो अपनी आय के बड़े भाग को बचाकर उत्पादक कार्यों में निवेश करता है। आमदनी की असमानता बनाए रख कर प्राप्त होने वाले लाभप्रद प्रभाव की तुलना उन विकास सम्बन्धी कार्यों से की जानी चाहिए जिन्हें बढ़ती हुई आय के कुछ भाग को राजकोप के लिए प्राप्त करके और नए राजकोय उद्योगों के लिए ऊपरी सुविधायें उपलब्ध करके अथवा निम्न आय वाले वर्गों में उत्पादकता वृद्धि करने वाले उपभोग पर व्यय करके प्राप्त किया जाता है। चौथे बढ़ती हुई आर्थिक और सामाजिक समानता का मूल्यांकन निम्न आय वाले वर्गों के पीड़ाकरक निम्नस्तर की तुलना द्वारा किया जा सकता है। पश्चिमी देशों में साधारणतया आय ऊंची होती है और जनता को सामाजिक सुरक्षा के अधिक अवसर प्रदान किये जाते हैं, अतः यह मूल्यांकन उनकी अपेक्षा कहीं अधिक होना चाहिए। इस प्रकार हम इस निष्कष पर पहुंचते हैं कि भारत जैसे निर्धन देश में असमानता का अर्थ है अत्यधिक उत्पीड़न और बिना समानता लाए सामाजिक परिवर्तन करना मूल्यहीन है।

दोहरी विचारधारा

इस विषय में भारतीय परिस्थितियों में कई विरोधाभास हैं। यद्यपि योजना, नीति, तथा सामाजिक परिवर्तन का सन्निहित उद्देश्य अधिक समानता घोपित किया गया है, फिर भी सब जगह घोर असमानता दृष्टिगोचर होती है। विचारों के सम्बन्ध में तो हम बहुत अधिक मौलिक रहे हैं, पर जहाँ तक उन पर व्यवहार करने का प्रश्न है हम पूरे रूढ़िवादी हैं। हमारो पंचवर्षीय योजनाओं की भूमिका में समानता के आदर्श को प्रतिपादित करने वाले बड़े प्रभा-

चोत्पादक वक्तव्य हैं, परन्तु अधिकाधिक समानता प्राप्त करने के लिए विकास की क्या दिशा होनी चाहिए यह बताने का हमने गभीरता-पूर्वक प्रयत्न नही किया है। योजना का सारा आकार वित्त अथवा राजकर सम्बन्धी रहा है और इसमें कुल उत्पादन की वृद्धि पर ही जोर दिया गया है। इस उद्देश्य को अधिक समानता के सर्वमान्य उद्देश्य से किस प्रकार सम्बन्धित किया जाय योजना की केन्द्रीभूत नीति मे इस पर विचार ही नही किया गया। कही उत्साह पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े इस कारण इस पर व्यवहार स्थगित रखा गया।

सीमा निर्धारित करने के विचार को अर्थ-व्यवस्था के विशिष्ट क्षेत्रो में समानता स्थापित करने की नीति के विरुद्ध तर्क के रूप में प्रयुक्त किया गया है। उदाहरण के लिए क्रान्तिकारी भूमि सुधारो का विरोध इसी आधार पर किया गया है कि शहरी क्षेत्र की सम्पत्ति और आय की सीमा निर्धारित किए बिना भू-स्वामित्व की सीमा निर्धारित करना असगत रहेगा। कराधान द्वारा सम्पत्ति और आय में समानता लाने के आदर्श करो की चोरी तथा कर-वचना द्वारा निरस्त कर दिए जाते हैं।

अन्य विकासशील देशो को भाति स्वास्थ्य और प्रारम्भिक शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने का दूरगामी प्रभाव हमारे देश मे भी अधिक समानता लाने वाला सिद्ध होगा। पर इस क्षेत्र मे भी सरकार जरूरतमन्द लोगों के लिए अपने व्यय का अत्यन्त अल्प भाग देती है और हमारी शिक्षा प्रणाली निम्न वर्ग के लिए अधिक लाभ प्रद भी नही है।

समद ने १६५५ में एक कानून बना कर अस्पृश्यता को दण्डनीय अपराध घोषित कर दिया है। विधानसभाओ, सरकारी नौकरियो स्कूल-कालिजो मे पिछडी जातियो के प्रवेश को संवैधानिक तथा अन्य उपायो द्वारा सुरक्षित कर दिया है। सभी पचवर्षीय योजनाओ मे परिगणित एवं पिछडी हुई जातियो के कल्याण कार्यों के लिए अलग से धन राशि नियत की गई है। इस प्रकार सैद्धान्तिक दृष्टि से तो लगता है इस समस्या का समाधान हो गया पर इसके व्यवहार में सबसे बडी बाधा यह है कि निम्न वर्ग के लोग उच्च वर्ग वालो पर पूरी तरह आश्रित हैं। अत जब तक उन्हे आर्थिक स्वतन्त्रता नही मिल जाती तब तक सविधान द्वारा दिए गए अधिकारों का व्यवहार

में कोई मूल्य नहीं है। इसीलिए दण्डनीय अपराध होने पर भी ग्रामीण एवं नागरिक क्षेत्रों में अस्पृश्यता का खूब बोल बाला है।

जहाँ तक स्त्रियों की कानूनी स्थिति का प्रश्न है संविधान ने उन्हें भी पूर्ण समानता का अधिकार दिया है। बहु-विवाह-प्रथा रोकने, उन्हें सम्पत्ति में उत्तराधिकार, संरक्षकत्व तथा तलाक का अधिकार दिलाने के लिए हिन्दु कानून में संशोधन कर दिया गया है। परन्तु अभी तक स्त्रियों के लिए बिना शोरगुल मचाए काम करने तथा सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार प्राप्त करना अपवाद ही है। उनकी स्थिति में वास्तविक परिवर्तन करने में अभी कई पीढ़ियाँ लग जायंगी।

समस्या का समाधान कैसे किया जाय ?

तेजी से सामाजिक परिवर्तन करने के साधन के रूप में जब समानता पर विचार करते हैं तो बहुधा उच्चवर्ग के नागरिकों, अर्थात् आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक दृष्टि से उच्च स्तर के लोगों के हृदय परिवर्तन की बात कही जाती है। पर उन पर दबाव डालने और नैतिक समर्थन प्राप्त करने के लिए कोई सुदृढ़ संगठन नहीं है। साथ ही कोरे नैतिक उत्साह से ही सदियों पुरानी असमानता से छुटकारा नहीं पाया जा सकता। हमारे शासक उच्च वर्ग के ही लोग हैं और अपनी अधिकार सम्पन्न स्थिति बनाए रखने के लिए वे राजनीतिक शक्ति का उपयोग करते हैं। हमें दृढ़तापूर्वक इस स्थिति का सामना करना हैं। कल्याण कारी प्रजातन्त्र की दिशा में हमारी अत्यल्प प्रगति इस बात को सिद्ध करती है कि हमने आम जनता को संगठित करते और समानता पर आधारित सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के निर्माण में उनकी क्या भूमिका है इसे बताने की चेष्टा ही नहीं की। संसदीय लोकतन्त्र का भव्य प्रासाद इस बात को नहीं छिपा सकता कि राजनीतिक गतिविधियाँ थोड़े से उच्च वर्ग के लोगों तक ही सीमित हैं, आम जनता का राजनीतिक व्यवहार तो उन थोड़े से व्यक्तियों द्वारा नियंत्रित होता है जो उनकी धार्मिक, क्षेत्रीय, तथा जातीय भावनाओं को उभारते रहते हैं। हमारी संसदीय प्रणाली स्थायी सिद्ध हुई है पर यह स्थायित्व अवरूद्ध प्रवाह का ही द्योतक हैं।

सुधार का उपाय

यदि सामाजिक परिवर्तन के राजनैतिक अर्थ को इतिहास के महापुरुष वाले सिद्धान्त की अपेक्षा जनसामान्य के आन्दोलन के रूप में

समझा जाना है तो असमानता के विभिन्न रूपो द्वारा उत्पन्न होने वाले तनाव और असन्तोष को देर सवेर दूर करना ही होगा। सामाजिक मनोवैज्ञानिक आधार पर परिवर्तन की विरोध करने की आदत-सी बन गई है। व्यक्ति, समूह और समुदाय एक विशेष ढग से रहने के और बन जाते हैं, उन्हे तनिक-सा भी परिवर्तन बडा कठिन लगता है। रहन-सहन का यह ढग जितना हो पुराना होता है इसे बदलने मे उतनी ही कठिनाई महसूस होती है। सुसगठित, सुस्थापित और अधिकार प्राप्त समूहो—जिन्हे निहित स्वाथ के नाम से जाना जाता ह और जो यथा स्थिति बनाए रखने मे ही अधिकतम लाभ प्राप्त करते है—की स्वार्थ भावना परिवर्तन का सबसे अधिक विरोध करती है।

हम प्रजातान्त्रिक मूल्यो के प्रति वचनबद्ध हैं इसलिए ऐसे क्रान्तिकारी कानून बना कर जिनसे बचने का कोई मार्ग न रह जाय जैसा कि प्रचलित ग्रामीण सम्पत्ति सम्बन्धी नियमो मे है-परम्परागत समाज व्यवस्था में सुधार कर सकते हैं।

सामाजिक आर्थिक व्यवस्था में आमूल परिवर्तन करने के जो साधन हमने अपनाए है वे काफी तेज और कारगर हैं। परन्तु संवैधानिक धाराओं और कानूनी उपायों जैसे इन साधनों का ठीक से उपयोग करने की इच्छा और योग्यता हममें होनी चाहिये। संविधान के चौथे खण्ड मे, जहा राज्य के निर्देशक सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है, ४४ वें अनुच्छेद मे कहा गया है कि राज्य सरकार सारे भारत के नागरिकों के लिए एक समान सामाजिक नियम लागू करने का प्रयास करेगी। समानता प्राप्त करने तथा सामाजिक परिवर्तन की गति तेज करने के लिए ऐसे साधन बडे लाभकारी सिद्ध हो सकते हैं।

सामाजिक परिवर्तन की समस्या के लिए इच्छानुसार योजना के आवश्यक अंगों—भावभगिमा, सस्थाओ तथा जीवन, एवं कार्य प्रणाली—जो वैचारिक योजना के आवश्यक अ ग हैं तथा तर्क-सगत समन्वित नीति एव विकास की दिशा की ओर ले जाने वाले परिवर्तन के अध्ययन की आवश्यकता पडती है। लागत और उत्पादन के अनुपात के बदले हमारी योजना समानता पर आधारित सामाजिक परिवर्तन को शिक्षा की ओर उन्मुख होनी चाहिए।

पिछली एकाध पीढ़ी से आय में समानता लाने के लिए हमने कराधान के उपाय का सहारा लिया है। परन्तु यह अपने आप में पर्याप्त नहीं है। और आज के युग में पुराना पड़ चुका है। इसके साथ ही नागरिक सम्पत्ति की सीमा निर्धारित करना भी आवश्यक है। जिन थोड़े से व्यक्तियों के हाथों में शक्ति केन्द्रित होती जाती है उन्हीं से सामाजिक न्याय को लागू करने की भी अपेक्षा की जाती है। इस विरोधाभास को उपर्युक्त साधन अपना कर दूर किया जा सकता है।

साथ ही यह भी दीखने योग्य है कि आधुनिक शासन पद्धति और समाज-व्यवस्था आपसी अविश्वास पर आधारित हैं। इन परिस्थितियों में नई आवश्यकताओं की पूर्ति असंभव है। इसमें सन्देह नहीं कि हमने इस तथ्यको जान लिया है, परन्तु प्रशासनिक सुधारों के अध्ययन, विश्लेषण, परीक्षण, स्वीकृति और उन पर अमल करने की प्रक्रिया बहुत ही धीमी है। इसमें तेजी लाये जाने की आवश्यकता है।

देश में समृद्धि बढ़ रही है परन्तु जीवन-स्तर में असमानता अभी भी बनी हुई है। इससे वर्ग-संघर्ष तीव्र हो कर भारतीय जीवन में भयंकर विस्फोट कर सकता है। जनता के उत्साह और लगन को विकसित करने और बनाए रखने की आवश्यकता है। इसी के माध्यम से विकास की प्रक्रिया को तीव्र किया जा सकता है। इस परिवर्तन से जनता को लाभ होना चाहिए और आर्थिक एवं सामाजिक समानता के आदर्शों पर ईमानदारी से व्यवहार करके ही इसे लाया जा सकता है।

भारत की जनसंख्या— समस्या और गांधीजी का सन्देश

डा० एस० चन्द्रशेखर

भारतीय विचार एव संस्कृति के सर्वोत्कृष्ट व्याख्याता एवं हमारी स्वतंत्रता के देवदूत-महात्मा गाधी जनसख्या वृद्धि के महत्व को समझते थे और इस समस्या के समाधान हेतु उन्होने ब्रह्मचर्य और सयम पर बल दिया।

गांधीजी स्त्रियों के अधिकारों के प्रबल समर्थक थे और चाहते थे कि स्त्रियाँ दृढ़तापूर्वक अपने पतियों को मनमानी करने से रोक कर अपनी इच्छानुसार बच्चे उत्पन्न करें।

गांधीवादी उपाय

इस बात को कौन नहीं जानता कि गांधीजी अपने जीवन में कठोर संयम का पालन करते थे और दूसरों को भी इसकी सलाह देते थे। उन्हें लगता था कि स्त्रियाँ पुरुषों के अत्याचार का शिकार हो रही हैं। इसलिये उनके अधिकारों की सुरक्षा के लिए तीव्र सुधारों का समर्थन करते हुए उन्होंने कहा, 'मनुष्य आक्रामक है अतः उसके इच्छापूर्वक वंध्याकरण पर भी मुझे आपत्ति नहीं है।'

गांधीजी ने जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण रखने के लिए दो उपाय सुझाए हैं: संयम और वन्ध्याकरण। पहला उपाय तो मनुष्य की संकल्प शक्ति और उसके आदर्शों पर निर्भर करता है और अपने स्वःनियंत्रण एवं आत्मानुशासन की भावनाएं जगाकर हमारे नव-युवक और नवयुवतियाँ इसे लाभप्रद बना सकते हैं। यह उपाय इस दृष्टि से तनिक कठिन लगता है और इसमें चूक हो सकती है।

'नियमित चक्र' का उपाय भी कोई अधिक प्रभावशाली नहीं है और जन्म दर नियंत्रित करने की दृष्टि से मूल्यहीन है। परिवार नियोजन कार्यक्रम के प्रथम दशाब्द में हम 'नियमित चक्र' के उपाय पर अत्यधिक निर्भर रहे। 'मासिक धर्म चक्र' प्रत्येक स्त्री में बदलता रहता है और इस पर विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता होती है। इसलिए देहाती क्षेत्रों में जहाँ साक्षरता की कमी है यह उपाय अधिक व्यवहारिक सिद्ध नहीं हुआ। इस प्रकार संयम, 'नियमित चक्र' और बंध्याकरण के बीच का मार्ग चुनने को आवश्यकता है।

पुरुषों के लिए इच्छापूर्वक वन्ध्याकरण का गांधीजी ने भी समर्थन किया है। गांधीजी भारतीय पुरुष वर्ग की मनोवृत्ति से परिचित थे। वन्ध्याकरण की प्रगति इस बात की सूचक है कि हमारे पुरुष वर्ग ने परिवार के सदस्यों की संख्या नियमित करने के अपने दायित्व को समझा है। अभी तक वंध्याकरण के ४० लाख ७० हजार ऑपरेशन हुए हैं; इनमें से स्त्रियों की संख्या केवल ४ लाख ७० हजार हैं। यदि पुरुष वर्ग की मनोवृत्ति इसी प्रकार बनी रही तो १९७५ तक जन्म दर ४१ से २५ प्रति हजार और १९७८-७९ तक २३ प्रति

हजार लाना समव हो सकेगा। वन्ध्याकरण पूर्णतया प्रभावकारी होने के साथ-साथ जन्मदर में इतनी कमी कर देता है जितनी लूप स्वीकार करने वाली तीन स्त्रियाँ कर सकती हैं।

विवाह की आयु

गाधीजी बाल-विवाह के विरुद्ध थे। बाल-विवाह के बहिष्कार का भी जन-सख्या नियमित करने पर बडा प्रभाव पडता है। हमारे समय मे विवाह योग्य आयु बढाने के सम्बन्ध में जनमानस की प्रतिक्रिया पहले पहल 'शारदा एक्ट' के रूप में प्रकट हुई थी। स्त्रियो की विवाह योग्य आयु १८ वर्ष और पुरुषो की २१ वर्ष कर देने का एक विधेयक आजकल विचाराधीन है। इस प्रकार विवाह योग्य आयु बढा कर अगले दस वर्ष में जन्म दर मे लगभग १५ प्रतिशत कमी की जा सकती है। यह विचाराधीन विधेयक गाधीजी के विचारो और सिद्धान्तों के अनुरूप ही होगा।

विज्ञान और टेक्नालॉजी का प्रभाव

विज्ञान और टेक्नालॉजी दिन—दूनी रात—चौगुनी प्रगति कर रहे हैं और आज विश्व में ऐसे अनेक चमत्कार हो रहे हैं जिनके विषय में हमारे आदरणीय नेताओ ने सुना तक भी न होगा। गाधीजी के समय में 'लूप' का आविष्कार नहीं हुआ था अत' यह कहना कठिन है कि इसके प्रयोग को उनकी स्वीकृति मिलती अथवा नही। गांधीजी चाहते थे कि स्त्रिया अपने पतियो की सभोग सम्बन्धी इच्छा का प्रतिरोध करने का साहस जुटा सकें अतः इस बात का सरलता से अनुमान लगाया जा सकता है कि वे उन्हे अपने पतियो की सहमति से लूप लगवाने की सलाह देते जिससे गर्भ धारण का खतरा उठाये बिना वैवाहिक जीवन का सामजस्य बनाया रखा जा सके।

व्यक्तिगत कार्य के लिए मार्ग-दर्शन

गाधीजी के विचारो को मानने वाले यहाँ यह तर्क उपस्थित कर सकते हैं कि वैवाहिक जीवन का उद्देश्य सन्तानोत्पत्ति ही है। कैथोलिक सम्प्रदाय वालो की भी यही मान्यता है पर कैथोलिक देशों में जन्म दर ससार में सबसे कम है। इससे पता चलता है कि जिस बात का प्रचार किया जाता है उस पर अमल करना कितना कठिन होता है। आज के युग में केवल धर्म ही मानव जीवन को नियंत्रित

नहीं करता, अपितु सामाजिक आर्थिक विचार भी उसके आचरण को निर्धारित करते हैं।

वास्तव में आदर्श स्थिति तो वही होगी जब सभी लोग उच्च नैतिक जीवन व्यतीत करते हुए संयम का पालन करें, परन्तु संसार का अनुभव यही सिद्ध करता है कि ऐसा होना बड़ा ही दुष्कर है। यह आदर्श अव्यवहारिक है अतः जो कुछ व्यवहारिक है उसी को आदर्श मानकर चलना चाहिए।

व्यक्तिगत तथा राष्ट्रीय हित

गांधीजी ने अपने एक पत्र में स्वर्गीय प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू को लिखा था कि किसी भी योजना को हाथ में लेते समय यह ध्यान रखा जाय कि इससे निर्धन किसानों को किसी प्रकार की हानि न हो। किसानों की दशा सुधारने के लिए सभी संभव उपाय किए जाने चाहियें।

गांधीजी के विचार और कार्यों में सत्य का प्रमुख स्थान था। हमें विश्वास है कि परिवार-नियोजन के विभिन्न उपायों का प्रसार करते हुए हम गांधीजी की सलाह से ही निर्देश प्राप्त कर रहे हैं। हमारा कार्यक्रम व्यवहारिक एवं सर्वसुलभ है, इसमें व्यक्तिगत एवं राष्ट्रीय हित को ध्यान में रखा गया है अतः यह निश्चयपूर्वक आज की सारी समस्याओं की जननी परिवार-नियोजन की समस्या का समुचित समाधान कर सकेगा।

काम-वासना की विजय किसी पुरुष या स्त्री के जीवन का सबसे ऊंचा पुरुषार्थ है। काम-वासना पर विजय प्राप्त किए बिना मनुष्य अपने पर शासन करने की आशा नहीं रख सकता। और आत्म-शासन के बिना स्वराज्य या रामराज्य की स्थापना नहीं हो सकती।

—हरिजन

२१-११-१९३६

महात्मा गांधी और नारियों की मुक्ति

तमारा देव्यात्किना

महात्मा—रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने गाधी जी को यही सज्ञा दी थी-भारत के प्रमुखतम राजनीतिक कार्यकर्ता और महान् मानवतावादी थे। अपने समय के अनेक विचारको और राजनीतिज्ञो से वे इसीलिए ऊचे थे कि उपनिवेशवाद के विरुद्ध सघर्ष से सम्वन्धित जटिल राजनीतिक, सैद्धान्तिक और सामाजिक प्रश्नों में से उन्होने समाज में लोगों की असमानता के विरुद्ध सघर्ष के प्रश्न को प्रमुखतम स्थान दिया। भारत की परिस्थितियो मे यह सामाजिक असमानता के विरुद्ध ही नही, वल्कि जात-पाँत सम्वन्धी असमानता और धार्मिक असहिष्णुता के उन्मूलन और नारियो की मुक्ति का भी संघर्ष था।

निःस्वार्थ भावना से सदियों पुरानी परम्पराओं को तोड़ते हुए उन्होंने नारियों के अधिकारों और उनके कानूनी समानाधिकार को मान्यता देने की माँग की। उन्होंने बार-बार यह दोहराया कि नारियों की शिक्षा और विस्तृत सामाजिक कार्य-क्षेत्र में उनका सामने आना स्वतन्त्रता-प्राप्ति और 'सर्वोदय' समाज की स्थापना के लिए एक जरूरी शर्त है।

गांधी जी ने परिवार में नारी के समानाधिकार की दृढ़ता-पूर्वक माँग की। उनके द्वारा अहमदाबाद के निकट स्थापित ग्राम-संस्था 'सत्याग्रह-आश्रम' में विभिन्न जातियों और वर्णों के नर नारी और बच्चे पूर्ण और समानाधिकार की स्थिति में रहते थे और प्रत्येक अपनी शक्ति तथा क्षमता के अनुसार काम करता था। यह सही है कि आर्थिक कठिनाइयों के कारण आश्रम की हालत अक्सर बहुत पतली हो जाती थी और वह मुख्यतः उन धनी व्यापारियों और उद्योग-पतियों की सहायता से ही कायम रह सका था, जो भारतीय समाज में असमानता और नारियों की अधिकारहीनता की बदौलत ही बहुत हद तक पूंजी जुटाते थे। इसलिए यह स्पष्ट है कि गांधी जी की मानवीय भावनायें गम्भीर सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों के बिना असमानता की समस्या को हल नहीं कर सकती थीं। किन्तु उनकी दृढ़ता, ध्येयपूर्ति की निःस्वार्थ लगन और अपनी खोजों की सचाई में निष्ठा ने भारतीयों के दिल-दिमागों को अत्यधिक प्रभावित किया।

नारियों को समानाधिकार बनाने के उनके आह्वानों ने भारत की राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिए संघर्षरत राजनीतिक और सामाजिक संगठनों को इस दिशा में सक्रिय होने में सहायता दी। इसके परिणाम स्वरूप १९१९ में ही भारतीय चुनाव-प्रणाली के अनुसार भारतीय नारियों के एक छोटे भाग को चुनाव-अधिकार मिल गया। आगे चलकर भारतीय समाजिक हलकों ने नारियों के अधिक बड़े भाग को यह अधिकार दिलाया।

"नारियों के समानाधिकार के प्रश्न पर मैं किसी तरह की ढील देने को तैयार नहीं हूं," गाँधी जी ने लिखा। "...नारियों को मताधिकार और कानून के सम्मुख पुरुषों जैसी समानता मिलनी चाहिए।" उन्होंने सती और बाल-विवाह की कड़ी निन्दा की और मुसलमान नारियों के घरों में बन्द रहने के विरुद्ध आवाज उठायी।

नारियो द्वारा राजनीतिक और कानूनी अधिकारों की प्राप्ति को गाधी जी उनकी स्वतन्त्रता का आरम्भ मानते थे। समानाधिकार प्राप्त करने के बाद उन्हे "राष्ट्र के राजनीतिक भाग्य-निर्णय को प्रभावित करना चाहिए।" ऐसा करने के लिए उनका भारत की समृद्धि से सम्बन्धित सभी सम्मेलनो, सभाओ और आयोगो मे भाग लेना आवश्यक है।

सामाजिक कार्यों मे नारियो के बडे पैमाने पर भाग लेने का आह्वान करते हुए गाधी जी ने उन्हे औपनिवेशिक सत्ता के दमन से यत्नपूर्वक सुरक्षित रखने की कोशिश की। उन्होने माग की कि नारियो को उग्र मुठभेडो से दूर रखा जाये, ताकि उनके लिए गिरफ्तारी और सजा की नौबत न आये। गाधी जी के मतानुसार ऐसी मुठभेडो के समय मर्दों को ही आगे जाना चाहिए। किन्तु भारतीय नारियो ने साम्राज्यवाद विरोधी आन्दोलन के नेता गाधी जी का अनुकरण करते हुए उनकी इस बात पर कान नही दिया और सावधानी की अवहेलना की। उपनिवेशवाद के विरुद्ध सघर्ष मे वे अपने पतियो, भाइयो और बेटो के साथ साहस-पूर्वक आगे बढी और कई बार स्वतन्त्रता-संग्राम की अग्रणी पक्तियो में रहते हुए मौत का शिकार हुई।

गाधी जी द्वारा प्रस्तुत सिद्धातो को आधार मानते हुए भारतीय राष्ट्रीय संस्थाओ ने नारियो को बडे पैमाने पर सक्रिय कार्यों के लिए आकर्षित किया। उपनिवेश-वाद विरोधी सघर्षकाल मे नारियाँ (सरोजिनी नायडू, नेल्ली सेन गुप्ता) इण्डियन नेशनल कांग्रेस की प्रधान चुनी गयी, उन्होने प्रान्तो मे पार्टी-सगठनो का सचालन किया, जुलूसों और सभाओं का नेतृत्व किया, जिनमें अक्सर गांधीजी भाषण देते थे।

१६३० मे नमक-कानून भग करने के प्रसिद्ध कूच के समय सरोजिनी नायडू गाधी जी के साथ थी।

भारत के राष्ट्रीय स्वन्त्रता-संघर्ष में नारियो के योगदान का गाधी जी ने बहुत ऊँचा मूल्यांकन किया। "भारतीय स्वन्त्रता-सघर्ष में नारियो की भूमिका का उल्लेख सुनहरे अक्षरो में किया जायेगा" गाधी जी ने कहा था।

गाधी जी ने अपनी सभी गति-विधियो से नारियो की मुक्ति प्राप्ति तथा सामाजिक और उत्पादनकार्यों तथा स्वन्त्रता के सजग और

लक्ष्य-निष्ठ संघर्ष में उनकी सक्रियता वढ़ाने में सहायता की। भारत में शानदार नारियों प्रमुख राजनीतिक कार्यकर्त्रियों का सामने आना काफी हदतक गांधी जी की सरगर्मियों का परिणाम है। भारत के प्रधानमंत्री के पद के लिए नारी का चुनाव भी किसी हद तक गांधी जी के अथक नारी-मुक्ति संघर्ष का फल है।

यह सही है कि स्वतन्त्र भारत में भारतीय नारियों की कानूनी समानाधिकारिता को सुनिश्चित करने वाले अनेक क़ानून वनाये गये हैं, फिर भी इस समस्या के अनेक ऐसे पहलू हैं जिनकी ओर क़ानूनों में ध्यान नहीं दिया गया। इनके अलावा पास किये गये कानूनों को अमली शकल देना भी जरुरी है। इसलिए नारियों की मुक्ति सम्वन्धी गांधी जी के विचार आज भी न केवल भारत के लिए वल्कि उसकी सीमाओं के परे भी फौरी महत्व रखते हैं।

मेरा मत है कि स्त्री आत्म-वलिदान की मूर्ति है लेकिन दुर्भाग्य से आज वह अपने इस जवरदस्त लाभ को नहीं समझती, जो पुरुष को प्राप्त नहीं है। जैसा कि टालस्टॉय कहा करते थे, स्त्रियां पुरुष के जादुई प्रभाव का शिकार वनी हुई हैं। अगर वे अहिंसा की शक्ति को पहचान लें तो वे अवला कहलाना स्वीकार नहीं करेंगी।

यंग इन्डिया

१४-१-३२

गांधीजी : एक सन्तुलित विवेचन

रविशेखर वर्मा

गांधीजी हमारे अत्यधिक समीप रहे हैं और लगभग २५ वर्षों तक भारतीय जीवन पर उन्होने ऐसी अमिट छाप छोडी है कि उनके सामाजिक एव राजनैतिक कार्यों का निष्पक्ष मूल्याकन करना अत्यन्त कठिन है। उनके अहिंसा के सिद्धात, सरल धार्मिक जीवन, उद्देश्य के प्रति निष्ठा और आत्मत्याग ने जनता के हृदय मे उनके प्रति श्रद्धा और प्रेम को जन्म दिया और वडी सख्या में लोग उनके अनुयायी वन गए। प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात भारतीय जन जीवन मे अभूतपूर्व जागृति लाने के लिए वे ही उत्तरदायी हैं और इस जन जागृति ने उन्हें एक अतुलनीय शक्तिसम्पन्न अस्त्र—एक समर्थन जैसा उनके पूर्व राष्ट्रीय सग्राम के किसी अन्य नेता को नही मिला था—उन्हे सौंप

दिया। परन्तु दुर्भाग्यवश वे उस अस्त्र का भली भांति उपयोग न कर सके और भारत को स्वतन्त्रता प्राप्ति में विलम्ब हो गया।

उनके प्रति जनता की इतनी अधिक श्रद्धा थी कि उसने उन्हें अवतार मानकर महावीर और बुद्ध की श्रेणी में स्थान दिया। राजनीतिक क्षेत्र में उनकी असफलताओं को भुलाकर जनता ने उनके व्यक्तिगत चारित्रिक गुणों को सर्वाधिक महत्त्व दिया। लोग उन्हें अभ्रांत अवतार समझते थे जिसका उदय भारत को दासता के बंधन से मुक्त कराने के लिए हुआ था, इसीलिए उनके लक्ष्य की अस्पष्टता एवं अनिर्णय तथा निश्चित योजना और चिंतन के अभाव का वे दार्शनिक एवं रहस्यवादी विवेचन करते थे। और विवेकशून्य प्रवृत्तियों की इस विशाल पृष्ठभूमि में 'रामराज्य' के रूप में अभिव्यक्त अपने अतीत से अवलम्ब ग्रहण कर गांधीजी ने अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की।

गांधी जी आधुनिक जीवन और आधुनिक विचारों से तीव्र घृणा करते थे। आधुनिक राजनैतिक ढंग से विचार और कार्य करने में असफल होने के कारण उनकी उपलब्धिया क्षणिक ही सिद्ध हुईं। आधुनिक विचारों के प्रति आकृष्ट बुद्धिजीवी वर्ग ने उनकी छिद्रान्वेषी आलोचना की है। उसने उनकी भूलों और कमजोरियों का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन कर उन पर प्रतिक्रियावादी होने का दोषारोपण किया जिसने जगद्गुरू और शान्ति दूत वनने की इच्छा के वशीभूत हो अपने देश की प्रगति में वाधा उपस्थित की।

वे व्यक्तिगत, राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाओं से शून्य थे परन्तु भारत की स्वतन्त्रता के नियामक वनने और विना किसी घरेलू अवरोध के उसे अपने ही ढंग से, अपने ही नेतृत्व में प्राप्त करने की उनकी वड़ी प्रवल इच्छा थी। कांग्रेस का नेतृत्व संभालते समय जो लक्ष्य उन्होंने निर्धारित किए थे उनमें से वे एक भी प्राप्त न कर सके; इसी कारण भारतीय राजनैतिक जीवन में गांधी युग अनुर्वर (उपलब्धि शून्य) युग कहा गया है। हिन्दू-मुस्लिम समस्या सहित किसी भी समस्या का, जिसके लिए उन्होंने अपने राजनीतिक जीवन के आरम्भ से ही निष्ठापूर्वक कार्य किया समाधान प्रस्तुत करने में वे असफल रहे। हिन्दू-मुस्लिम समस्या को उन्होंने अत्यधिक महत्त्व दिया और इसे ऐसा धार्मिक रंग दे दिया कि इसका संवैधानिक समाधान असंभव

हो गया। इस प्रकार अनजाने ही वे इन दो सम्प्रदायों की फूट और भारत के विभाजन के लिए उत्तरदायी बन गए। आगे चलकर हम देखेंगे कि देश के विभाजन के लिए केवल वे ही उत्तरदायी नही हैं; उनके विश्वस्त सहयोगियो ने देश पर विभाजन लादने मे काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

इस प्रकार गाधीजी के महान व्यक्तित्व के प्रति श्रद्धालु, सुहृद और अ ध अनुयायी तथा छिद्रान्वेषी आलोचक दोनो का ही दृष्टिकोण प्रतिवादी है। आवश्यकता इस बात की है कि इस महापुरुष के जिसने अपना सारा जीवन देश के अत्यत चतुर और कुशल उपनिवेशवादी विदेशी शासको के प्रति शान्तिमय एव अहिंसात्मक आन्दोलन का सचालन करने मे लगा दिया, कार्य कलाप का निष्पक्ष, सतुलित, एव तटस्थ विवेचन किया जाय। इस लेख मे उनके कार्यों का उचित परिप्रेक्ष्य मे निष्पक्ष मूल्याकन करने का प्रयास किया गया है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रो मे उनके द्वारा किए गए अनेक कार्यों को न लेकर हमने स्पष्ट कारणो से राष्ट्रीय मुक्ति सग्राम मे उनकी भूमिका तक ही अपने को सीमित रखा हैं।

भारतीय मुक्ति सग्राम की पृष्ठभूमि

दिसम्बर १९१४ मे गाधीजी दक्षिण अफ्रीका से, जहाँ उन्होने प्रवासी भारतवासियो के अधिकारो के लिए सफलतापूर्वक सघर्ष किया था, भारत लौटे। परन्तु वे तुरन्त ही देश के राजनैतिक जीवन में नही उतर पड़े। वे धैर्यपूर्वक उचित अवसर की प्रतीक्षा करते रहे और राजनीतिक जीवन अपनाने से पूर्व अपनी स्थिति सुदृढ करने में लगे रहे। कांग्रेस के अमृतसर अधिवेशन (१९१९) मे वे एक साधारण सदस्य के रूप मे सम्मिलित हुए।

आइये तत्कालीन भारतीय परिस्थिति का अवलोकन करें। प्रथम विश्व युद्ध ने सारे योरोप को झकझोर दिया था और यद्यपि ब्रिटेन और फास विजयी रहे थे, उनकी शक्ति समाप्त हो चुकी थी। भारत और दूसरे ब्रिटिश उपनिवेशो पर इस युद्ध का बड़ा प्रभाव पड़ा था।

आयरलैण्ड के ईस्टर आन्दोलन (१९१६) ने ब्रिटिश शासन को दूसरा आघात पहुँचाया और अनेक दिशाओ से दबाव पडने के कारण अन्ततः १९२१ में आइरिश प्रजातत्र का जन्म हुआ।

पंजाव से लेकर बंगाल तक सारे उत्तरी भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन चरमोत्कर्ष पर था और क्रान्तिकारी सशस्त्र आन्दोलन की तैयारी कर रहे थे। सशस्त्र क्रांति तो सफल न हो सकी पर कुछ क्रान्तिकारी पुलिस की आँखों में धूल झोंक कर विदेशों में चले गए और वहीं से भारतीय स्वतंत्रता के आन्दोलन का संचालन करते रहे।

एक सफल क्रान्ति द्वारा रूस की जारशाही का तख्ता पलट दिया गया था और वहाँ सर्वहारा वर्ग की प्रभुसत्ता स्थापित हो गई थी। इसने एक नई समाज व्यवस्था को जन्म दिया। भारत के शासक भी अक्तूवर क्रान्ति को नजरअन्दाज न कर सके।

वढ़ते हुए भारतीय असन्तोष का शमन करने तथा अपनी आत्म-रक्षा के विचार से ब्रिटेन में भारत के शासकों ने पहली वार उत्तरदायित्व के सिद्धान्त को स्वीकार किया। दमन और सांत्वना की ब्रिटिश सरकार की परम्परागत नीति के अनुरूप ही 'रौलट एक्ट' के तुरन्त वाद 'मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार' आए। यद्यपि सुधार वहुत अधिक आशाजनक नही थे फिर भी कांग्रेस जो भारतीय नेतृत्व का प्रतिनिधित्व करती थी, इन्हें स्वीकार करने के पक्ष में थी। गाँधीजी ने उन्हें अंग्रेजों की भारत के प्रति न्याय करने की भावना का प्रतीक समझा और उन्हें स्वीकार करने पर वल दिया। उन्होंने देश को 'उन पर शान्तिपूर्वक अमल करने और उन्हें सफल वनाने की सलाह दी।'

१९२० के मध्य तक गांधीजी का यह मोह भंग हो गया और ब्रिटिश सरकार के प्रति सहयोग की भावना असहयोग में वदल गई। पंजाव के हत्याकाण्ड और उसके वाद की घटनाओं ने उनके हृदय में विद्रोह की अग्नि प्रज्वलित करदी और वे ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए शक्ति-संचय करने लगे। सुरेन्द्रनाथ वनर्जी ने 'रौलट एक्ट' को असहयोग आन्दोलन का जनक कहा है। पर सच वात तो यह है कि गांधीजी में कभी परिवर्तन नहीं हुआ और अन्त तक वे ब्रिटिश सरकार से सहयोग करते रहे। असहयोग अपनाकर तो उन्होंने एक नई राजनीतिक तकनीक को ही जन्म दिया क्योंकि वे जानते थे कि जनता के दवाव के विना ब्रिटिश सरकार को कभी भी भारत को स्वतंत्र करने के लिए वाध्य नहीं किया जा सकता।

इस प्रकार आकस्मिक उल्कापात की भांति गांधीजी निर्विरोध राजनीतिक नेता के रूप में उभर कर जनता के सम्मुख आए।

गांधीजी के नेतृत्व का उदय

१६२० में लोकमान्य तिलक की मृत्यु हो जाने के पश्चात भारत में कोई शीर्षस्थ नेता नही रहा। गाधीजी ने, जिन्होने अमृतसर कांग्रेस में प्रमुख भूमिका निबाही थी, उन परिस्थितियो मे जिनके भविष्य के बारे में कुछ भी नही कहा जा सकता था, कांग्रेस की बागडोर संभाली। देश में असन्तोप बढ रहा था और स्वतन्त्रता की इच्छा सार्वभौम थी। राजनैतिक और औद्योगिक अशान्ति का वातावरण फैल रहा था और जनता का दमन करने के लिए सरकार बेलगाम हिंसा का प्रयोग कर रही थी। देश एक साहसी नेता की प्रतीक्षा कर रहा था और इसी समय गांधीजी मच पर अवतीर्ण हुए। उन्होने सही नारे, राजनीतिक कार्य की सही तकनीक और जनसहयोग देकर लोगो को राजनीति के क्षेत्र मे उतारा। अपने सरल जीवन, शाकाहारी भोजन, बकरी के दूध, साप्ताहिक मौन, कुर्सी के बदले फर्श पर बैठने और लंगोटी धारण करने के कारण वे अतीत थे विलक्षण महात्माओ जैसे ही लगते थे और ये ही सब बातें उन्हें जनता के समीप ले आई। उन के मस्तक के चारो ओर सिद्धजनोचित प्रकाश-मडल बन गया और उस देश मे जहा लोग करोड़पति अथवा शासक की अपेक्षा सत-महात्माओ का अधिक आदर करते हैं, यह अत्यन्त मूल्यवान सिद्ध हुआ। उनके आत्म-त्याग और कार्य की नई प्रणाली ने जनता को आकर्षित किया और बड़ी सख्या मे लोग उनके अनुयायी बनगए। वे जनता की भाषा मे-रामायण और गीता का भाषा मे, जिसे जनता भली-भाति समझती थी—बोलते थे और स्वराज्य का जिक्र करते हुए वे रामराज्य का स्मरण कराया करते थे। जनता के लिए वे भगवान के भक्त थे, सत-महात्मा थे जिसका जन्म देश को विदेशी शासन के बन्धनों से मुक्त कराने के लिए हुआ था।

१६१४ से १६२० के मध्य गाधीजी ने बडी सख्या मे लोगो का समर्थन प्राप्त किया। पंजाब के अत्याचार और खिलाफत आन्दोलन के दुहरे मामलो पर अली-बन्धुओ और दूसरे मुस्लिम नेताओ का सहयोग प्राप्त करके उन्होंने अपनी स्थिति को सुदृढ बनया। और इसमें आश्चर्य नही कि उनके द्वारा प्रतिपादित तिहरे बहिष्कार की

योजना जिसका अन्त टैक्स अदा न करने में होना था, कलकत्ता कांग्रेस के अवसर पर बहुमत से स्वीकार कर ली गई।

इस प्रस्ताव की पुष्टि नागपुर कांग्रेस (१९२०) में की गई और इस प्रकार गांधीजी ने देश का एक छत्र नेतृत्व प्राप्त कर लिया। कांग्रेस ने एक नया विधान स्वीकार किया जिसके निर्माण में गांधीजी ने प्रमुख भूमिका निवाही थी। कांग्रेस का लक्ष्य स्वराज्य—संभव हो तो ब्रिटिश साम्राज्य के अंतंगत और यदि आवश्यकता हो तो इसके वाहर भी-निर्धारित किया गया और स्वराज्य प्राप्ति के लिए संघर्ष में शान्तिमय एवं न्यायोचित उपायो का ही प्रयोग किया जाना था।

गांधीजी का कार्यक्रम और कार्य विधि

अब गांधीजो ने अपना समय और ध्यान कांग्रेस को संगठित करने की ओर लगाया और इसे एक शक्तिशाली जन संगठन का रू। देकर अपने राजनैतिक दर्शन और कार्य का विश्सनीय साधन वना लिया भले ही कांग्रेस का विधान लोकतंत्रीय और संसदीय था गांधीजी इसके एकमात्र अधिनायक के रुप में उभर कर आए।

गांधोजी ने अपनी योजना पर व्यवहार आरंभ किया। विदेशी वस्त्रों और कचहरियों का वहिष्कार किया गया, नशावंदी के प्रोत्साहन के लिए आन्दोलन किया गया और हाथ की कताई-बुनाई को पुर्न-जीवित किया गया। कांग्रेस की अग्रिम पक्ति को सुदृढ़ वनाने के लिए विद्यार्थियों ने स्कूल और कालेज छोड़ दिये। मुस्लिम समुदाय के पूरे समर्थन, असहयोग आन्दोलन की नवीनता, तथा 'एक वर्ष में स्वराज्य' के नारे ने अनेक लोगों को आर्कपित किया और आन्दोलन की शक्ति में वृद्धि की। पर इसका यह तात्पर्य नहीं कि अपनी योजना पर व्यव-हार करने में गांधीजी को किसी विरोध का सामना ही नहीं करना पड़ा। वुद्धिजीवियों ने असहयोग और क्रान्तिकारियों ने अहिंसा की नीति के कारण उनका विरोध किया। वुद्धिजीवियों में विशिष्ट गुरु-देव रवीन्द्रनाथ टैगोर को अपने पक्ष में करके उन्होंने उनके विरोध को निरस्त कर दिया तथा क्रान्तिकारियों से खुले मन से वातचीत करके उन्होंने उनसे समझौता कर लिया।

अपने राजनैतिक कार्यो के लिए अहिंसा के अस्त्र का चुनाव करके उन्होंने सच्ची प्रतिभा का परिचय दिया। उन्होंने किसी भी परिस्थिति में अहिंसा का त्याग नहीं किया। ईसा-मसीह की

शिक्षाओं और लियो टालस्टाय के विचारों का उन पर गंभीर प्रभाव पडा था। इन सिद्धान्तों पर व्यवहार करके गाधीजी ने संसार को दिखा दिया कि स्वतन्त्रता का सघर्ष बिना हिंसा का सहारा लिए भी किया जा सकता है। वे इसके औचित्य एव आवश्यकता से भलीभाति अवगत थे क्योंकि तत्कालीन परिस्थितियो मे हिंसा का केवल प्रतीकात्मक महत्त्व ही था। जनता को भयकर सकट मे डालने के अतिरिक्त इससे कुछ लाभ होने वाला नही था।

आरम्भ में तो ब्रिटिश सरकार को इस नए उपाय की शक्ति में सन्देह ही था, पर एक बार जब उसने इसकी सामर्थ्य को परख लिया तो राजनैतिक नेता के रूप मे वह गाधी जी को और गम्भीरता से ध्यान देने लगी। और इस बात का आधार तैयार होने लगा कि अन्तत. सत्ता के हस्तान्तरण के लिए उनसे या उनके प्रतिनिधि से ही व्यवहार करना पडेगा। अहिंसा की इस प्रणाली ने एक संगठित जन-आन्दोलन को जन्म दिया और भारत को अपने लक्ष्य की ओर बढने मे सहायता दी।

राजनीति का आध्यात्मीकरण करने की गाधी जी की बड़ी आकाक्षा थी। धर्म और राजनीति को सयुक्त करने के उनके प्रयास ने भारतीय राजनीति मे अयथार्थ और पाखण्ड को स्थान दे दिया जिसके कारण भारतीय मस्तिष्क राजनीति पर यथार्थ रूप मे विचार करने के अयोग्य हो गया। गाधीजी के नैतिक नेतृत्व और भारतीय काग्रेस को स्वतत्रता का अनुपम अस्त्र बनाने की उनकी असाधारण सफलता से इ कार नही किया जा सकता, पर साथ ही इस बात को स्वीकार करने मे भी सकोच नही करना चाहिए कि अंग्रेजो जैसे *सुलझे हुए उपनिवेशवादी शासको से व्यवहार करने के लिए* आवश्यक राजनीतिक सूझबूझ और अनुभव का उनके पास सर्वथा अभाव था। परिणाम यह हुआ कि भारत के हित मे ब्रिटिश सरकार के साथ समझौता करने के कई अवसर उन्होने खो दिए। राजनीतिक दृष्टि से विचार करने वाले अंग्रेजो और भारतीयो दोनो के ही लिए गाधी जी एक पहेली थे। लार्ड एटली उनमे संत और कुशल राजनीतिज्ञ का सयोग देखते थे पर राजनीतिज्ञ की अपेक्षा वे सत कही अधिक थे और "सर्वाधिकार—संपन्न सत उतना ही खतरनाक हो सकता है जितना कि सर्वाधिकार सम्पन्न दुष्ट, विशेष रूप से जब, जबकि वह सोचे कि उसके अतिरिक्त और सभी दुष्ट हैं।"

गांधीजी की गलती और अन्तिम प्रयत्न

१९२१ में जब प्रिंस ग्राफ वेल्स भारत पधारे तो सर्वत्र उनकी यात्रा का बहिष्कार किया गया और सरकार के दृष्टिकोण से स्थिति काबू से बाहर जाने लगी। भारत में राजकुमार की उपस्थिति के समय सरकार इस ग्रान्दोलन को कठोर हिंसा और बल प्रयोग द्वारा कुचलने से डरती थी। कांग्रेस की शक्ति और प्रभाव इस समय अपने चरमोत्कर्ष पर थे और सरकार उससे समझौता करने की इच्छुक थी। गांधीजी की स्थिति बड़ी सुदृढ़ थी, वे एक प्रकार से कांग्रेस के तानाशाह ही थे पर दुर्भाग्य से वे अपनी शक्ति का बुद्धिमतापूर्वक प्रयोग करने में असफल रहे।

इस शर्त पर कि यदि कांग्रेस अपना आन्दोलन तुरन्त वापस ले ले और युवराज की यात्रा का विरोध न करे तो सरकार सारे राजनीतिक बन्दियों को मुक्त करने पर सहमत हो गई और उसने निकट भविष्य में गोलमेज कान्फ्रेंस बुलाने का भी आश्वासन दिया। परन्तु महात्मा जी परिस्थिति का ठीक से आकलन न कर सके; उन्होंने यह प्रस्ताव ठुकरा दिया। इस भूल के परिणाम भविष्य के विकास के लिए बड़े ही हानिकरक सिद्ध हुए। जब निर्णायक घड़ी आई तो महात्मा जी पर्याप्त कूटनीति और समझदारी बरतने में असफल रहे। कांग्रेस ने जीवन भर का अवसर खो दिया। आन्दोलन के चरमोत्कर्ष पर पहुंचते ही महात्मा जी घबरा गए, उनके पाँव लड़खड़ाने लगे।

अवसर के अनुकूल कार्य न कर पाने के कई कारण हैं। महात्माजी ने अपनी शक्ति का अतिशयोक्तिपूर्ण अनुमान लगाया था। थोड़े समय पश्चात जब उन्होंने स्वयं गोलमेज कांफ्रेस का प्रस्ताव रखना चाहा तो इसकी वास्तविकता का पता लग गया। जगद्गुरू बनने की आकांक्षा छोड़ने को वे प्रस्तुत न थे। वे नहीं चाहते थे कि दूसरों के द्वारा रखा गया गोलमेज कान्फ्रेंस का प्रस्ताव सफल हो, वे तो स्वयं इसे रख कर सफल होते देखना चाहते थे। दूसरे उनके द्वारा स्थापित नेतृत्व की परम्परा में सामूहिक नेतृत्व के लिए कोई स्थान न था। अपने ज्ञान और योग्यता की सीमाओं को जानते हुए वे संवैधानिक विचार-विमर्श से सदा कतराते थे।

ब्रिटिश सरकार के साथ व्यवहार करने के अपने अनुभव से उन्होने कुछ भी नही सीखा और १६२२ मे एक और गलती की। जनता का उत्साह अपनी चरमसीमा पर था तथा वायसराय को दिए गए गांधी जी के अल्टीमेटम और टैक्स न देने के आन्दोलन को आरंभ करने के निश्चय ने देश मे उत्तेजनापूर्ण वातावरण पैदा कर दिया था। इसी समय चौरी-चौरा की घटना का समाचार आ गया। हिंसा भडक जाने से महात्मा जी भयभीत हो उठे और उन्होने अपना आन्दोलन वापस ले लिया। सविनय आज्ञा भग आन्दोलन की सफलता के लिए देश की परिस्थिति अत्यन्त अनुकूल थी। अत गाधी जी के इस निर्णय से जनता मे क्रोध की लहर फैल गई। अपने "भारतीय सघर्ष" मे सुभाष चन्द्र वास कहते हैं 'प्रत्यावर्तन का यह आदेश राष्ट्रीय दुर्भाग्य से तनिक भी कम न था।'

देश की तत्कालीन युद्धोन्मुख प्रकृति मे हिंसा भडक उठने से गाधीजी अत्यधिक भयभीत थे। इसे नियत्रित करने की अपनी अक्षमता से भी वे भली भाति परिचित थे और आकुलतापूर्वक इस आन्दोलन को वापस लेने के लिए किसी बहाने की प्रतीक्षा कर रहे थे। चौरी-चौरा के क्रूर हत्याकाण्ड का समाचार सुनकर उन्होने सुख की सास ली।

परन्तु महात्माजी के इस निर्णय का साम्प्रदायिक स्थिति पर बडा दूषित प्रभाव पडा और इस उत्तेजित स्थिति का लाभ उठाकर ब्रिटिश सरकार दमन के अस्त्र मजबूत करने और विघटन के बीज बोने लगी।

'१६२२ तक ब्रिटिश सरकार ने काग्रेस के नेतृत्व को परख लिया था। उसने इस बात को समझ लिया था कि जब तक महात्मा जी की प्रमुखता है भारत मे ब्रिटेन के स्वार्थ सुरक्षित है; साथ ही जब तक काग्रेस महात्मा जी का निष्क्रिय शस्त्र तथा उनकी दुर्बोध चालों का साधन मात्र है, ब्रिटेन और भारत के बीच कोई सवैधानिक समझौता नही हो सकता।'

१६२३ मे चित्तरजन दास ने शक्ति सचय कर ली और विधान सभाओ मे प्रवेश कर वहा मे सविधान का विघटन करने का निश्चय किया। गाधी जी उस पुष्ट और दृढनिश्चयी राजनीतिज्ञ का विरोध करने का साहस न कर सके। राजनीति से सन्यास ले कर

उन्होंने अपना ध्यान गांवों में रचनात्मक कार्यों की ओर केन्द्रित कर दिया। १९२५ में चित्तरंजन दास की मृत्यु हो जाने से देश एक वार फिर नेता-विहीन हो गया और सर्वत्र निराशा का वातावरण छा गया। घटनाओं के इस मोड़ पर यदि गांधीजी अपने स्वेच्छित एकांत-वास से वाहर निकल आते तो घटनाओं का स्वरूप कुछ और ही होता, परन्तु उन्होंने कलकत्ता कांग्रेस (१९२८) तक ऐसा नहीं किया। परम्परागत व्यवस्था में गांधी जी का विश्वास था और वे ब्रिटेन के मित्र थे; अतः जब पुनः उन्होंने देश का नेतृत्व संभाला तो परम्परावादियों और देश के शासकों दोनों ने ही सुख की सांस ली।

१९२८ में सारे देश में साईमन कमीशन का वहिष्कार किया जा रहा था और मजदूर जगत में गहरी अशांति व्याप्त थी। राज-नीतिक आन्दोलन आरम्भ करने के लिए यह अत्युत्तम अवसर था। परन्तु उस समय महात्मा जी को प्रकाश नहीं दिखाई पड़ा और १९३० में जब उन्होंने आन्दोलन आंरम्भ किया तो उत्साह मन्द पड़ चुका था। गांधी जी ने स्वयँ इस विलम्व पर पश्चात्ताप किया पर अवसर एक वार फिर हाथ से निकल चुका था।

महात्मा जी को वामपक्ष से भीषण विरोध का सामना करना पड़ा, परन्तु दूरदर्शी राजनीतिज्ञ होने के कारण उन्होंने यह स्पष्ट रूप से देख लिया था कि कूटनीतिक उपायों द्वारा ही वे विरोधियों का दमन करके अपने नेतृत्व को सुरक्षित रख सकते हैं। इस समय उन्होंने सर्वोत्तम कुशलता का परिचय दिया। गांधी जी ने युवक जवाहरलाल नेहरू को जो १९२७ से अपने को समाजवादी कहने लगे थे कांग्रेस का राष्ट्रपति नियुक्त कर दिया। वामपक्ष के एक अन्य नेता सुभाष चन्द्र वोस ने कहा है : 'महात्मा जी के लिए यह चुनाव अत्यन्त विवेकपूर्ण था। परन्तु कांग्रेस वामपक्ष के लिए यह वड़ा ही दुर्भाग्य-पूर्ण सिद्ध हुआ। गांधी जी के इस कदम ने वामपक्ष के विरोध को तोड़ दिया और उन्हें कांग्रेस में निर्विवाद प्रमुखता प्राप्त हो गई। अपने एकांतवास के समय में उन्होंने यह स्पष्ट रूप से समझ लिया था कि विरोध को सिर नहीं उठाने देना चाहिए; सामूहिक नेतृत्व और समाजवादी आदर्श को कोई प्रोत्साहन नहीं दिया जाना चाहिए तथा अहिंसावादी विचारधारा से भिन्न किसी अन्य विचार-धारा को कांग्रेस में सहन नहीं किया जाना चाहिए।'

गाधी जी के तीव्र विरोध के बावजूद जिस स्वतन्त्रता-प्रस्ताव को मद्रास कांग्रेस दो वर्ष पूर्व पास कर चुकी थी, उसे ही लाहौर कांग्रेस में स्वय प्रस्तुत करके उन्होने विरोधियो को बुरी तरह कुचल दिया असगतियो की महात्मा जी को कभी चिन्ता नही हुई। अपने द्वारा प्रस्तावित प्रत्येक पग में वे कुछ ऐसी अस्पष्टता छोड देते थे जिससे भविष्य मे मनमाना परिवर्तन करने और व्याख्या द्वारा उसे पूर्णतया बदल डालने में कोई परेशानी न हो।

पूर्ण स्वतन्त्रता की माग का महात्मा जी दिल से समर्थन नही करते थे, इसे तो उन्होने जनता के दबाव के कारण स्वीकार कर लिया था। अत इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए नए वर्ष में उनके पास न तो कोई योजना थी, न कोई कार्यक्रम। परन्तु उन्होने इस बात का पूरा ध्यान रखा कि कोई वामपक्षी नेता कार्यकारिणी में न आ जाय। इस प्रकार 'अपने अधीनस्थ कार्यकारिणी की सहायता से उनके लिए मार्च १९३१ मे लार्ड इरविन से समझौता करना, गोलमेज सभा के लिए अपने आपको (भारत का) एक मात्र प्रतिनिधि नियुक्त कराना, १९३२ मे पूना समझौता करना तथा जनहित को हानि पहुंचाने वाले अनेक कार्य करना सम्भव हो गया।' इन सब घटनाओं से यह पूरी तरह स्पष्ट हो गया कि महात्मा जी को यदि किसी बात की आवश्यकता थी तो वह थी अपनी नीतियो और कार्यों की स्पष्ट और रचनात्मक आलोचना। परन्तु अपनी लोकप्रसिद्धि और प्रचार के कारण वे आलोचना से बहुत ऊपर उठ गए थे और उनकी आलोचना करने का सीधा अर्थ था अपने को खतरे मे डालना। अपने आलोचको को वे कभी क्षमा नही करते थे।

जनता मे आशा और विश्वास का तनावपूर्ण वातावरण देख कर महात्मा गाधी ने १९३० मे सविनय आज्ञा भग आन्दोलन आरभ करने और अपने को राष्ट्रीय सघर्ष के शीर्ष पर रखने का निश्चय किया; परन्तु उन्होने अभी भी यह कह कर कि वे स्वतंत्रता के सार-जिसे उन्होने पूर्ण स्वराज की सज्ञा दी और जिसकी व्याख्या राजनीतिक के बदले दार्शनिक शब्दो मे की—को प्राप्त करके ही सन्तुष्ट हो जायेंगे, समझौते का द्वार खुला रखा।

नमक कानून भग करके उन्होने आन्दोलन का आरम्भ कर दिया और सरकार ने, जिसे इस आन्दोलन की सफलता मे पूर्ण सन्देह

था, इसके विश्वव्यापी प्रचार और विज्ञापन में पूरी सहायता दी। परन्तु शीघ्र ही इस आन्दोलन ने विशाल रूप धारण कर लिया और सारे देश को अपनी लपेट में ले लिया। महात्माजी और सरकार दोनों ही आश्चर्य चकित देखते रह गये। वास्तव में भारतीय जनता अपने नेता और मार्गदर्शक से कहीं अधिक आगे निकल आई थी। सनसनीपूर्ण वातावरण में जहाँ रोमांचक घटनाएं घट रही थीं गांधीजी की गिरफ्तारी ने देश में जन-व्यापी उत्तेजना फैला दी। परन्तु १९३१ के आते आते एक वार पुनः वातावरण सरकार और कांग्रेस के बीच समझौते के अनुकूल हो गया। गांधीजी बुर्जुआ लोगों के शुभचिंतक थे अतः धनी-प्रतिष्ठित व्यक्तियों और सरकार से समझौते के लिए मरे जा रहे राजनीतिज्ञों के दबाव में आकर उन्होंने गांधी इरविन समझौता कर लिया। 'इस समझौते में कुछ भी तथ्य न था और वरदान की अपेक्षा यह अभिशाप ही अधिक था।' नमक कर हटाने (जिसके लिए यह सत्याग्रह किया गया था) सहित किसी भी ज्वलंत समस्या का समाधान इस समझौते से नहीं हुआ। इस अभूतपूर्व विशाल जन-आन्दोलन का संवैधानिक विवादों के समाधान हेतु प्रयोग करने में गांधीजी असफल रहे। इससे स्पष्ट हो गया कि उनमें राज-नीतिक सूझबूझ की कितनी बड़ी कमी थी। व्यक्तिगत प्रार्थनाओं से सहज ही प्रभावित हो जाने की प्रवृत्ति तथा स्वभाव की हठधर्मिता और मृदुता ने गांधी जी के मार्ग में बाधाएं उत्पन्न कर दीं और अच्छी सौदेबाजी द्वारा वे सरकार से कुछ अधिक प्राप्त न कर सके। सच कहा जाय तो राजनीति उनके लिए अंत तक व्यक्तिगत राजनीति—ब्रिटिश सरकार और उनके बीच एक घरेलू मामला—बनी रही। इस समझौते ने एक विनाशकारी अध्याय की समाप्ति और इससे भी कहीं अधिक विनाशकारी दूसरे अध्याय के आरम्भ का सूत्रपात किया।

राजनीति से अनभिज्ञ जनता ने गांधी-इरविन समझौते को महात्माजी की व्यक्तिगत विजय माना। वे लोकप्रियता और प्रतिष्ठा के चरम शिखर पर पहुँच गए और दूसरी गोलमेज कान्फ्रेंस समाप्त होने तक लोगों ने उन्हें पूरी छूट देने का निश्चय कर लिया। परिणामतः कांग्रेस ने उन्हें भारत के एक मात्र प्रतिनिधि के रूप में गोलमेज कान्फ्रेंस में भाग लेने लन्दन भेजा। जैसा कि लन्दन में बाद में सिद्ध हुआ यह कांग्रेस की सबसे बड़ी भूल थी।

बडी आशा और उत्साह से गांधी जी १२ सितम्बर १९३१ को लन्दन पहुँचे पर राष्ट्र के प्रतिनिधियो के रूप में सरकार के मोहरो को सजा हुआ देख कर उनका मोह भग हो गया। 'आज का भारत' मे में रजनी पाम दत्त ने लिखा है. 'वेस्टमिनिस्टर (ब्रिटिश पार्लमेंट) के विधायको का अपनी उलझन और विघटन द्वारा मनोरजन करने के लिए साम्राज्यवादी रोम के बन्दियो की भाति लाकर सजाई गई कठपुतलियो की इस बेमेल भीड मे शामिल हो जाने से काग्रेस के सम्मान को बडा आघात लगा।'

जगद्गुरू बनने की उनकी अ-राजनीतिक आकाक्षाओ ने एक बार फिर गोलमेज कान्फ्रेंस में प्रकट होकर देश को चिरस्थायी क्षति पहुँचाई। कोई भी व्यक्ति एक पूरे उपमहाद्वीप का प्रतिनिधित्व नही कर सकता अत 'भारत का एकमात्र प्रतिनिधि' होने के उनके दावे का शीघ्र ही खण्डन कर उन्हे सार्वजनिक रूप से अपमानित किया गया। लन्दन प्रवास काल मे गाधीजी भारत के प्रति सहानुभूति जाग्रत करने के उद्देश्य से अनेक प्रकार के लोगो से मिलते रहे पर उन्होने कान्फ्रेंस पर, जिस के लिए वे बिना किसी तैयारी के आ गए थे, ध्यान केन्द्रित नही किया।

यदि गाधीजी कान्फ्रेंस में शामिल होना ही चाहते थे तो उन्हे ऐसा १९३० मे करना चाहिये था जबकि काग्रेस की स्थिति सुदृढ थी और सरलता से वह कान्फ्रेंस के कुल स्थानो मे से आधे प्राप्त कर सकती थी, लन्दन मे श्रमदलीय मत्रिमन्डल और दिल्ली मे लार्ड इरविन की उपस्थिति मे काग्रेस कान्फ्रेंस को निश्चयपूर्वक एक नया मोड दे सकती थी। १९३१ मे राष्ट्रीय सरकार के नाम पर अनुदार दल के सत्ता संभाल लेने पर स्थिति बदल चुकी थी। गांधीजी के लिये एक और असुविधा यह थी कि प्रतिक्रियावादियो की एक पूरी सेना का उन्हे अकेले सामना करना पडा। सकट के समय परामर्श देने के लिये यदि वे राष्ट्रवादी मुसलमानो और अपने सहयोगियो के दल के साथ आते तो उनकी स्थिति अधिक सुदृढ होती। महात्मा जी की असफलता से अनुदार दल वालो ने यह निष्कर्ष निकाला कि यदि दिल्ली और इन्डिया आफिस मे सुदृढ व्यक्ति रख दिये जाय तो भारत में सब मामला ठीक हो सकता है। जगद्गुरु बनने की महात्मा जी की इच्छा एक बार फिर उनके अपने देशवासियो के लिये अनिष्टकर सिद्ध हुई।

जब गांधी जी भारत लौटे तो सारा देश आतंकवादियों के कार्यों की लपेट में था। उन पर नियंत्रण करने के लिए गांधीजी ने सविनय आज्ञा भंग आन्दोलन को पुनः आरंभ करने का निश्चय किया। परन्तु देश के दुर्भाग्य से जब आन्दोलन पूरे जोश में था परिस्थिति गांधीजी के हाथ से बाहर निकलने लगी और उन्होंने साम्प्रदायिक प्रस्ताव के दोषों का विरोध करने के लिए आमरण अनशन करके लोगों का ध्यान आन्दोलन की ओर से हटा दिया। सुभाष चन्द्र बोस कहते हैं: "उनके द्वारा सविनय आज्ञा भंग आन्दोलन को एक ओर हटा देना उस व्यक्तिवाद का परिणाम था जो समय समय पर उन पर छा जाता है और उन्हें वास्तविकता और यथार्थ की ओर से आँखें मूंद लेने पर विवश कर देता है।'

१९३३ में बिना शर्त सविनय आज्ञा भंग आन्दोलन को स्थगित करने का अर्थ नौकरशाही के सामने आत्म-समर्पण करना था और इससे सारे देश में रोष की लहर छा गई। विट्ठलभाई पटेल और सुभाष चन्द्र बोस ने गांधीजी के निर्णय की आलोचना करते हुए कहा कि इसने पिछले १३ वर्षों के किए कराए पर पानी फेर दिया; राजनीतिक नेता के रूप में गांधीजी की असफलता को सिद्ध कर दिया।

इसके कुछ समय पश्चात गांधीजी ने सारी कांग्रेस समितियां भंग कर दीं और व्यक्तिगत आज्ञा भंग आन्दोलन का सूत्र प्रस्तुत कया। उनके इस व्यवहार से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अपने राजतनीतिक अस्त्र के रूप में वे जनता का उपयोग तो करते थे पर उस पर कभी पूर्ण विश्वास नहीं करते थे। वास्तव में वे उससे भय-भीत रहते थे। उनके इस अनुपयुक्त कार्य ने स्थिति को और बिगाड़ दिया। के० एफ० नरीमान ने अपनी पुस्तक 'कांग्रेस किधर?' में गांधीजी के इस काल के कार्यों का सुन्दर विश्लेषण किया है।

कांग्रेस में अपनी स्थिति असुरक्षित और डांवाडोल देख कर उन्होंने विधान-सभा-प्रवेश के विचार का, जिसका दस वर्ष पूर्व उन्होंने घोर विरोध किया था, समर्थन करके स्वराजवादियों को अपनी ओर मिला लिया और इस प्रकार पुनः अपनी स्थिति दृढ़ कर ली।

महात्माजी स्वेच्छाचारी नेता थे। उनके कार्यो का मुख्य उद्देश्य अपने विचारों के, जिनकी सत्यता में उन्हें तनिक भी सन्देह

नही था, विरोध को व्यक्तिगत और सामूहिक स्तरो पर समाप्त करना था। विचारो और कार्यों की स्वतन्त्रता से गाधीजी को स्वभाविक चिढ थी और जिस किसी ने भी उनका या उनके विचारो का विरोध करने का साहस किया उसे उन्होने बडी चतुरता और आवश्यकता पड़ने पर क्रूरता से भी अपने मार्ग से हटा दिया। अपनी स्वतन्त्र चेतना और गाधीजी के विचारो और कार्यों पर सन्देह प्रकट करने के कारण श्रीनिवास आयगर, के० एफ० नरीमान और सुभाष चन्द्र बोस को एक एक करके काग्रेस छोडने पर विवश होना पड़ा।

१६३४ तक पहुँचते पहुँचते गाधीजी की गतिशीलता समाप्त हो गई और वे लोकतन्त्र की शक्तियो—जो १ २० से ही उनके साथ थी—से डरने लगे। भले ही १६३४ मे उन्होने काग्रेस से त्याग पत्र दे दिया, आज्ञापालक कार्य कारिणी के माध्यम से वे इस पर पूर्ण नियत्रण बनाए रखने मे समर्थ रहे। उनका त्यागपत्र प्रत्यावर्तन की एक चाल था जिसका उपयोग वे देश मे राजनैतिक शिथिलता आ जाने पर किया करते थे।

गाधीजी की युद्ध—कालीन अनिश्चतता

काग्रेस में गाधीवादी गुट का प्रभाव १६३८ मे क्षीण होने लगा परन्तु विघ्नकारी प्रवृत्तियो द्वारा इस गुट ने सुभाषचन्द्र बोस को कांग्रेस के राष्ट्रपति पद से त्यागपत्र देने पर विवश कर दिया। देश आतरिक रूप से क्राति के लिए पहले से कही अधिक परिपक्व हो रहा था, परन्तु गाधीजी यही तर्क करते रहे कि निकट भविष्य में संघर्ष की कोई सभावना नही। सुभाष बोस कहते हैं. 'अहिंसा से बधा होने के कारण गाधीवाद अशक्त पड चुका था और ब्रिटिश सरकार से समझौते की सोच रहा था। दूसरे इसे अ तरराष्ट्रीय सक्ट और भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए उसके समुचित उपयोग का भी ज्ञान न था।

यदि हम युद्धकालील काग्रेस नीति पर विचार करें तो सुभाष बोस के इस कथन की सत्यता स्वय सिद्ध हो जाती है। कांग्रेस अनिश्चय की स्थिति मे थी। एक ओर तो यह प्रजातान्त्रिक मूल्यो की सहायता करना चाहती थी और दूसरी ओर बिना शर्त ब्रिटेन के युद्ध कार्यों मे भाग लेने से डरती थी। इस प्रकार युद्ध अथवा भारत की

संवैधानिक समस्याओं के सम्बन्ध में कांग्रेस की कोई स्पष्ट नीति नहीं थी।

३ सितम्बर १६३६ को विश्वयुद्ध आरंभ हुआ और गांधीजी ने एक वक्तव्य प्रसारित किया कि ब्रिटेन के संकट की घड़ी में भारत को उसका साथ देना चाहिए। '१६२७ से ही कांग्रेस के नेता भारतीय जनता को यह बताते आ रहे थे कि भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए अगला विश्वयुद्ध अभूतपूर्व अवसर होगा अतः गांधीजी के इस वक्तव्य ने भयकर विस्फोट का कार्य किया।'

सुभाष बोस और उनके फारवर्ड ब्लाक के युद्ध और ब्रिटिश सरकार विरोधी तीव्र प्रचार के सम्मुख अपनी लोकप्रियता और प्रभाव को क्षीण होते देख कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार से युद्ध का उद्देश्य घोषित करने का प्रस्ताव रखा और यदि वह (ब्रिटिश सरकार) भारत को स्वतन्त्रता दे दे तो उसकी सहायता करने का वायदा किया। इस प्रस्ताव के उत्तर में ब्रिटिश सरकार ने १६३५ का संविधान रद्द कर दिया और सारी शक्ति वायसराय के हाथ में केन्द्रित हो गई! यदि आरंभ से ही कांग्रेस युद्ध के प्रति दृढ़ रुख अपनाती तो ब्रिटिश सरकार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता। परन्तु इस पर निर्णय स्थगित करने से अप्रत्यक्ष रूप से ब्रिटिश सरकार को सहायता ही मिली। गांधीजी को देश संघर्ष के लिए तैयार नहीं दिखाई पड़ा और यह सोच कर कि जल्दी करने से देश को लाभ के बदले हानि अधिक होगी वे असहयोग आन्दोलन के लिए आगे नहीं आये। उन्हें अभी भी ब्रिटेन से समझौते की आशा थी और उसके विनाश से वे भारत की स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त करना चाहते थे। उनके अनुसार यह अहिंसा का मार्ग नहीं था। देश की स्वतन्त्रता की अपेक्षा अहिंसा के सिद्धान्त पर अत्यधिक बल देना एक स्वयं पराजित प्रस्ताव था।

अक्तूबर १६४० में घटनाओं ने ऐसा मोड़ लिया कि गांधीजी कांग्रेस का नेतृत्व संभालने को विवश हो गए। उन्होंने ब्रिटिश सरकार के युद्ध प्रयत्नों का विरोध करने का निश्चय किया पर सामूहिक रूप से बड़े पैमाने पर नहीं। व्यक्तिगत असहयोग की छुटपुट घटनाएं निश्चयपूर्वक व्यर्थ थीं और उन्होंने भारतीय समस्या के समाधान की दिशा में कोई योग दान नहीं किया। सामूहिक असहयोग आन्दोलन इस समय अधिक उपयुक्त होता पर महात्माजी और उनके सहयोगी ब्रिटिश सरकार को संकट में डालना नहीं चाहते थे।

कांग्रेस से समझौता करने के विचार से जब ब्रिटिश सरकार ने सारे कांग्रेसी नेताओ को रिहा कर दिया तो उसने (कांग्रेस ने) युद्ध प्रयत्नों में सहयोग करने का प्रस्ताव पास कर दिया (१६ जनवरी १९४२) और सर स्टैफर्ड क्रिप्स अपने प्रस्ताव लेकर भारत आ पहुँचे।

सम्प्रदायिक स्थिति पर इन प्रस्तावो के दुष्प्रभाव का विचार करते हुए गांधीजी ने इन्हे ठुकरा दिया, परन्तु सच बात तो यह है कि अब गांधीजी को मित्र राष्ट्रों के युद्ध मे विजयी होने की आशा *नही रही थी। गाधीजी के नेतृत्व मे कांग्रेस वास्तविक स्थिति का* सामना करने और उसका सवैधानिक स्तर पर समाधान करने के अयोग्य हो गई थी। जब देश में जनमत उत्तेजित होने लगा और ब्रिटेन के विरुद्ध ईर्ष्या भाव तेजी से भडकने लगा तो कांग्रेस ने 'भारत छोडो' का प्रस्ताव पास कर दिया और गांधीजी ने सारे ससार के विरुद्ध अकेले ही अन्त तक लडने के अपने निश्चय की घोषणा की।

यह जान लेना रूचिकर होगा कि 'भारत छोडो' का नारा उस समय बुलन्द किया गया था जब कांग्रेस अपना अभीष्ट प्राप्त करने में पूर्णतया असफल हो चुकी थी। सुदूर पूर्व में 'आजाद हिन्द फौज' का गठन हो चुका था और वह भारत की ओर बढ रही थी। कांग्रेस नेतृत्व सहम उठा और अपनी देश भक्ति का प्रमाण प्रस्तुत करने के लिए उसने यह भयकर कदम उठाया। इसका उद्देश्य बाह्य न होकर आंतरिक विरोध के सागर को नियत्रित करना था। 'अंग्रेजो की अपेक्षा आजाद हिन्द फौज का सामना करने के लिए यह कदम उठाया गया था।' इसके परिणाम बड़े विनाशकारी सिद्ध हुए। सहस्रो व्यक्ति या तो गोलियो से भून दिए गए या जेलो मे ठूस दिए गए, असीमित सम्पत्ति की हानि हुई, देश नेतृत्व से वचित हो गया और ब्रिटिश सरकार को राष्ट्रीय आन्दोलन कुचलने और विघटनकारी शक्तियो को प्रोत्साहित करने का पूरा अवसर मिल गया।

हिन्दु–मुस्लिम विभेद और गांधी युग का अंत

आइऐ अब जरा यहा ठहर कर हिन्दु-मुस्लिम विभेद पर विचार करें जिसका ब्रिटिश शासन मे कभी समाधान न हो सका और जिसका बहाना लेकर ब्रिटिश सरकार भारत की स्वतन्त्रता को इतने समय तक टालती रही। राजनैतिक नेता के रूप मे गाधीजी ने

सदियों पुरानी इस समस्या के समाधान को अपना प्रमुख लक्ष्य निर्धारित किया।

अली-बन्धुओं तथा अन्य मुस्लिम नेताओं के साथ-साथ साधारण मुसलमानों का समर्थन प्राप्त करने के लिए गांधीजी ने खिलाफत आन्दोलन में उनका साथ दिया। परन्तु खिलाफत समितियों को स्वतन्त्र संगठन बने रहने देकर उन्होंने बड़ी भूल की। १९२४ में जब मुस्तफा कमालपाशा ने खलीफा का पद समाप्त कर दिया तो खिलाफत सगठन के मुस्लिम सदस्य मुस्लिम लीग में शामिल हो गए क्योंकि अब उन्हें कांग्रेस की मित्रता और सहयोग की आ'व-श्यकता नहीं रह गई थी। यदि स्वतंत्र खिलाफत समितियाँ न बनी होतीं तो वे लोग कांग्रेस में ही शामिल होते।

मौलाना आज़ाद ने अपनी पुस्तक "भारत की आजादी" में लिखा है : 'मि० सी० आर० दास पक्के यथार्थवादी थे और उन्होंने तुरन्त भांप लिया था कि हिन्दु—मुस्लिम समस्या मूलतः आर्थिक समस्या है। राजनैतिक और धार्मिक प्रश्नों को इसमें शामिल करके उन्होंने हिन्दु-मुस्लिम समझौते का एक प्रस्ताव तैयार किया, परन्तु कांग्रेस ने इसे यह कह कर कि इसमें मुसलमानों को बहुत अधिक रियायतें दी गई हैं ठुकरा दिया। इस समझौते की अस्वीकृति ने विभा-जन के बीज बो दिए।' अली-बन्धु जिन्हें गांधीजी प्रकाश में लाए थे, १९२६ से ही उनसे विरक्त हो गए थे और १९२८ में उन्होंने कांग्रेस पूरी तरह छोड़ दी।

१९३१ में गोलमेज कांफ्रेंस में जाने से पहले गांधी जी ने यह कहना आरम्भ कर दिया कि हिन्दु-मुस्लिम समस्या के समाधान पर ही उनका वहां जाना निर्भर करता है। इन वक्तव्यों का प्रभाव बड़ा ही दुर्भाग्यपूर्ण हुआ। गांधी-इरविन समझौते के पश्चात प्रतिक्रियावादी मुसलमान कांग्रेस की शक्ति से भयभीत हो कर उससे तर्क संगत आधार पर समझौता करने को तैयार हो गए थे। परन्तु महात्मा जी के इन मूर्खतापूर्ण वक्तव्यों ने उनकी मनोवृत्ति में परिवर्तन करके उन्हें यह विश्वास करने पर विवश कर दिया कि देश की समस्याओं में उनकी स्थिति निर्णायक है और यदि उन्हें राष्ट्रवादी मुसलमानों का सहयोग मिल जाय तो वे गांधी जी को गोलमेज कांफ्रेंस में जाने से भी रोक सकते हैं। प्रतिक्रियावादी मुसलमानों से बार बार मिलना

भी नासमझीपूर्ण कदम था और एम० ए० जिन्ना ने १४ मांगें प्रस्तुत की जिन पर समझौता होना असम्भव था। महात्मा जी इस समय इतने निराश हो गए कि वे प्रथक निर्वाचन तक को स्वीकार करने को प्रस्तुत थे। राष्ट्रवादी मुसलमानों के दवाव के कारण किसी प्रकार वे इस दुखद मन स्थिति से त्राण पा सके।

गांधी जी ने 'हृदय परिवर्तन' के दार्शनिक साधन द्वारा मुसलमानों को अपनी ओर आकर्षित करना चाहा। परन्तु यह उपाय राजनीति के क्षेत्र मे नहा चलता इसलिए सदा असफलता ही उनके हाथ लगी। महात्मा जी परम्परागत हिन्दु वर्ण-व्यवस्था के कट्टर पक्षपाती थे और भारतीय समाज व्यवस्था मे कोई भी क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने से डरते थे। हिन्दु-मुस्लिम समस्या के समाधान में उनकी यह विचारधारा घातक कमजोरी सिद्ध हुई।

१९३७ मे जव काग्रेस उत्तर प्रदेश में मन्त्रिमण्डल बना रही थी तो मुस्लिम लीग ने मिले-जुले मन्त्रिमण्डल के लिए दवाव डाला। यदि उस समय लीग का यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाता तो आने वाली घटनाओ का स्वरूप कुछ और ही होता। एक प्रकार से लीग काग्रेस मे ही विलीन हो जाती। इस सम्बन्ध मे मि० पेन्डेरल मून कहते हैं : 'दूसरे शब्दों में कह सकते है कि काग्रेस उन मुस्लमानो को जो मुख्यतया हिन्दु सगठन मे विलय के लिए सहमत थे शासन सत्ता मे साझीदार वनाने के लिए प्रस्तुत थी। ... यह घातक भूल सिद्ध हुई ..और पाकिस्तान के निर्माण का मूल कारण(वनी)।' लखनऊ समझौते द्वारा सयुक्त कार्य क्रम के आधार पर हिन्दू मुस्लमान एक मच पर आ गए थे परन्तु महात्मा जी ने आदान-प्रदान की इस प्रवृत्ति का न तो अनुगमन किया और न ही इसे कांग्रेस संगठन का अंग वनाने का प्रयास किया जैसा कि केवल वे ही कर सकते थे। उत्तर प्रदेश के मुसलमानो के साथ काग्रेस का समझौता न होने के कारण वे काग्रेस के कट्टर शत्रु और विभाजन के दृढ समर्थक वन गए।

मुस्लिम लीग को इससे नवजीवन प्राप्त हो गया और अपने लक्ष्यो की पूर्ति के लिए वह काग्रेस की डावाडोल स्थिति का लाभ उठाने लगी। 'गाधीवादी रहस्यवाद तथा अप्रजातान्त्रिक नेतृत्व और प्रक्रिया ने काग्रेस को किसी भी महत्वपूर्ण मामले पर तुरन्त निर्णय

करने के अयोग्य वना दिया। उसने हर मामले को अधर में लटकाए रखा। गांधोजी के नेतृत्व में कांग्रेस राजनीतिक समस्याओं पर तर्क-संगत और वौद्धिक दृष्टिकोण की क्षमता खो चुकी थी। यदि महात्मा जी राजनीति राजनीतिज्ञों के हाथ में सौंप देते तो शायद वे देश की अधिक सेवा कर सकते थे। उस दशा में भारत की स्वतन्त्रता न केवल शीघ्र प्राप्त होती वरन् उनके हृदय की अभिलाषाओं के भी अधिक समीप होती।'

रचनात्मक नीति का अभाव होने के कारण युद्धकाल में किए गए ब्रिटिश सरकार के अन्तरिम समझौते के किसी भी प्रयास का लाभ उठाने में कांग्रेस सर्वथा असमर्थ रही। यदि महात्मा जी उतावली में क्रिप्स के प्रस्ताव न ठुकरा देते तो भविष्य में होने वाली अनेक अप्रिय घटनाओं को रोक सकते थे। युद्धकाल में हिन्दु-मुस्लिम समस्या के समाधान के छुट-पुट कार्य व्यक्तिगत स्तर तक ही सीमित रहे। मि०जिन्ना से वारवार मुलाकातें करके उन्होंने उनके मूल्य को वढ़ा दिया। निस्सन्देह यदि गांधीजी ऐसा न करते तो मि०जिन्ना कभी भी इतनी प्रभुता प्राप्त न कर पाते। गांधीजो के अदूरदर्शिता-पूर्ण कार्यों ने राजनीतिक स्थिति को विगाड़ दिया। शिमला प्रस्ताव-जो क्रिप्स के प्रस्तावों से तनिक भी भिन्न न थे-स्वीकार करने में उन्होंने अत्यधिक उतावली दिखाई क्योंकि अव कांग्रेस शक्तिहीन हो चुकी थी। परन्तु परिषद के साम्प्रदायिक गठन के विषय में मि० जिन्ना की हठधर्मी ने समझौता भंग कर दिया।

इसके पश्चात् घटनाक्रम तेजी से घूमने लगा। यूरोप का युद्ध समाप्त हुआ, श्रमदल ने इंग्लैण्ड में वहुमत से विजय प्राप्त करके सत्ता संभाली, ब्रिटेन की सैनिक और आर्थिक शक्ति क्षीण हो गई,—इन शुभ मुहुर्त्तों में लार्ड एटली की सरकार ने भारत को सत्ता सौंपने का निर्णय किया। पहले तो मुस्लिम लीग ने कैबिनेट मिशन के प्रस्ताव स्वीकार कर लिए परन्तु वाद में कांग्रेस के तत्कालीन राष्ट्रपति जवाहरलाल नेहरु के कुछ असावधान वक्तव्यों का वहाना लेकर इन्हें ठुकरा दिया। इससे भारत की अखंडता का अन्त हो गया और विभाजन की नींव पक्की हो गई।

अन्तिम दृश्य : भारत का विभाजन

भारत का विभाजन न तो अवश्यम्भावी था और न ही हिन्दु-मुस्लिम विभेद के कारण आवश्यक। गांधी युग में भारतीय नेता यदि

रहस्यवादी दृष्टिकोण की अपेक्षा तनिक अधिक राजनतिक दृष्टिकोण अपनाते तो इस अप्रिय घटना से बचा भी जा सकता था। काग्रेस और लीग दोनो मे प्रभावशाली गुट अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए इसे चाहते थे, इसीलिए भारत का विभाजन हुआ।

१९४७ के उन घटनापूर्ण महीनो में जब शक्ति के लिए भूखे उनके सहयोगियो ने उन्हे विभाजन मे भागीदार बनने के लिए विवश किया तो गाधीजी को अग्नि परीक्षा मे मे गुजरना पड़ा। "महात्माजी अखड भारत को अपने नेतृत्व में स्वतन्त्रता दिलाने के इच्छुक थे अत. विभाजन से उन्हे गम्भीर आघात लगा और देश के अनेक धर्म और जाति के लाखों निर्दोष नर-नारियो के लिए तो यह अभिशाप ही सिद्ध हुआ।"

लगता है अपने जीवन के अन्तिम दिनो में महात्माजी ने अपनी भूलो और भारत के भविष्य पर उनके प्रभाव को पहचान लिया था। घोर निराशा के वशीभूत हो वे यह कहकर कि अब काग्रेस की भूमिका समाप्त हो गई है और इसकी कोई आवश्यकता नही हैं इसे भग करने पर जोर देते रहे। पर उनकी इस निराशा भरी सलाह को अब कौन सुनता था। काग्रेस पर गाधीजी का नियत्रण समाप्त हो चुका था और सत्ता एव शक्ति नेहरूजी के हाथो केन्द्रित हो चुकी थी। ऐसी परिस्थितियो में गाधीजी ने एक बार फिर राजनीति से सन्यास लेने का निर्णय किया।

निश्चय ही अब महात्माजी के जीवन का उद्देश्य पूरा हो चुका था और कुछ ही माह पश्चात उन्हे शान्ति से विश्राम करने और अपने प्रभु की अपने ढंग से सेवा करने के लिए बुला लिया गया। उनका नश्वर शरीर हत्यारे की गोली का शिकार बन गया पर आज भी वे भारतीय राजनीति पर छाए हैं, और उन महान राजनीतिज्ञो के, जिन्हे गाधीजी ने अपने जीवन काल मे तैयार किया था, विचारो की अपेक्षा उनके विचारो पर जनता की अधिक आस्था है।

संदर्भ सामग्री

१. अबुल कलाम आजाद : भारत की आजादी (१९५९)
२. सुभाषचन्द्र बोस : भारतीय सघर्ष (१९४८)
३. रजनी पाम दत्त : आज का भारत (१९४०)

४. महात्मा गांधी : हिन्द स्वराज (१९४६)

५. महात्मा गांधी : आत्म कथा (१९४८)

६. पेन्डेरल मून : बांटो और छोड़ो (१९६१)

७. जवाहरलाल नेहरू : मेरी कहानी (१९३८)

८ जवाहरलाल नेहरू : भारत की खोज (१९५६)

९. फ्रांसिस विलियम्स : प्रधानमंत्री की स्मृतियां (लार्ड एटली के संस्मरण)] (१९६१)

१०. शशधर सिन्हा : भारतीय स्वतन्त्रता के परिप्रेक्ष्य* (१९६४)

* उपर्युक्त सभी ग्रंथों के मूल अंग्रेजी संस्करणों का ही उपयोग किया गया है। उद्धरणों के अनुवाद स्वयं लेखक द्वारा किए गए हैं।

गांधीजी के आर्थिक विचार

प्रो० प्रेमनारायन माथुर

गाधीजी के आर्थिक विचारो को लेकर तरह तरह की बातें सुनने को मिलती हैं। कई अर्थशास्त्री भाई गाधीजी के इन विचारों को आज के युग के लिए अनुपयुक्त और अव्यवहार्य मानते हैं, तो कइयो की दृष्टि मे गाधीजी के विचारो के अनुरूप चलने वाली अर्थव्यवस्था में ही समाज का हित और व्यक्ति की स्वतंत्रता संभव है। लेकिन इस बहस को हम बाद मे उठाएंगे। गाधीजी के आर्थिक विचारो को आज के युग के लिए अनुपयुक्त तथा अव्यवहार्य सिद्ध करने से पहले "आज के युग" की परिभाषा करनी होगी, "आज" की सीमा निर्धारित करनी होगी कि वह "आज" समय की किस सीमा तक फैला

हुआ माना जाए और इसी के साथ "कल" के चित्र की कल्पना भी करनी होगी। इसके अलावा अमुक बात का आज के युग से मेल नहीं बैठता या आज के युग के वह अनुपयुक्त है और उसका व्यवहार संभव नहीं है, इससे यह निर्णय नहीं होता कि दोष किसका है— आज के युग का या उन विचारों का जिनसे उनका मेल नहीं बैठता या जिनका व्यवहार संभव नहीं। गुण-दोष का निर्णय, मैं इस बात को जानता हूं, दो दृष्टियों से किया जा सकता है— पूर्व-स्थापना आधारित दृष्टि ("नार्मेटिव" दृष्टि) से और ऐतिहासिक दृष्टि ("पाजिटिव" दृष्टि) से। आदर्शवादियों की मान्यता पहली दृष्टि की है और समाजवादियों की मान्यता दूसरी दृष्टि की है। पर इस विवाद का विस्तार किये बिना, मैं अपना मत इस विषय में संक्षेप में इस रूप में प्रकट करना चाहूँगा कि सही दृष्टि में "है" (पाजिटिव) और "होना चाहिये" (नार्मेटिव) दोनों को स्थान होगा। इसलिये इन दोनों दृष्टियों में— व्यवहार और आदर्श में, आत्मगत् और वस्तुगत् में ("सब्जेक्टिविटी - आवजेक्टिविटी" में)— कोई तात्विक विरोध नहीं मानता। इसी प्रकार समाज हित और व्यक्ति की स्वतंत्रता को परिभाषाएं किये बिना हम गांधीजी के आर्थिक विचारों संबंधी दूसरे मत का विवेचन नहीं कर सकेंगे। इस सब में नहीं जाकर, पहले मैं गांधीजी के आर्थिक विचार क्या थे इस विषय में अपनी समझ के अनुसार विवेचन करूंगा।

इस संबंध में याद रखने की पहली बात यह है कि गांधीजी ने अपने आर्थिक विचारों का लक्ष्य अर्थशास्त्र को वास्तविक विज्ञान के रूप में प्रस्तुत करना नहीं माना। उनकी रूचि ऐसे किसी शास्त्र का निर्माण करने में नहीं थी। गांधीजी एक नैतिक पुरुष थे और उनका एकमात्र लक्ष्य यह था कि मनुष्य का प्रत्येक व्यवहार, सामाजिक तथा व्यक्तिगत, जीवन के किसी भी पक्ष से उसका संबंध क्यों न हो, नीतिप्रधान होना या नैतिक माप दण्ड की मर्यादा में रहना चाहिए। इसलिए उनके आर्थिक विचारों के पीछे भी यही दृष्टि थी, वे मनुष्य के उस आर्थिक व्यवहार का ही समर्थन करते थे जो नैतिक हो। इसीलिये उन्होंने कहा है कि वे अर्थशास्त्र और नैतिकता में कोई विरोध नहीं देखते। जो आर्थिक व्यवहार नैतिक सिद्धान्तों के विरूद्ध जाता है वह अनुचित है और जो अर्थशास्त्र ऐसे आर्थिक व्यवहार को स्वीकार करता है वह झूठा अर्थशास्त्र है।

गांधीजी के उपरोक्त मत की मैं थोड़ी टीका यही पर करना चाहूँगा। अगर हम अर्थशास्त्र को एक वास्तविक विज्ञान के रूप मे देखना चाहते हैं तो उसका आधार मनुष्य का सामान्य व्यवहार वही हो सकता है। ऐसे अर्थशास्त्र के साथ झूठे और सच्चे के विशेषण जोड़ना उचित नही। वास्तविक विज्ञान मे उचित-अनुचित की दृष्टि को लाना सही नही है। बल्कि यह विचार-भ्राति का लक्षण कहा जा सकता है। मनुष्य के सामान्य व्यवहार का वास्तविक ज्ञान की दृष्टि से अध्ययन आवश्यक इसलिए है कि हमें समाज के लिए उसकी वर्तमान मर्यादाओ और सीमाओं को मान कर सामाजिक नीति का निर्माण करना होता है। यदि मनुष्य के सामान्य व्यवहार का अध्ययन-विश्लेषण यह बताता है कि अन्य स्थितिया समान रहने पर, मनुष्य सस्ती वस्तु अधिक और महगी वस्तु कम मात्रा में खरीदता है तो इस ज्ञान के आधार पर नैतिक दृष्टि से यदि हम किसी वस्तु का उपयोग बढाना चाहते हैं तो उसे सस्ती और घटाना चाहते हैं तो उसे महगी करने की सामाजिक नीति अपनाए गे। इस एक उदाहरण से ही यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि वास्तविक विज्ञान अपने आप मे न अच्छा है और न बुरा है। उसका अच्छा बुरा उपयोग उपयोग करने वाले पर निर्भर करता है। इसीलिए आधुनिक वास्तविक अर्थशास्त्र को जब पैसे का अर्थशास्त्र, स्वार्थ का अर्थशास्त्र, और झूठा अर्थशास्त्र कहा जाता है तो मैं इसे कहने वाले की विचार-भ्रांति और कम जानकारी का सबूत मानता हूँ। पर एक बात यहा स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि वास्तविक विज्ञान की दृष्टि से अर्थ-शास्त्र की उपयोगिता को स्वीकार करने का यह अर्थ नही है कि मनुष्य का अपने आर्थिक व्यवहार को नैतिक और मानवीय बनाने पर विचार करना अनावश्यक है। इसका भी अपना महत्व है, इसमें कोई सदेह नही। अब इस बात को दुहरा कर कि गांधीजी ने अर्थशास्त्र के वास्तविक विज्ञान के निर्माण मे कोई योग नही दिया, मैं इस विषय-पक्ष को यहाँ समाप्त करता हूँ।

गांधीजी मनुष्य के आर्थिक व्यवहार को नैतिकता की मर्यादा में रखना चाहते थे, यह मैं ऊपर लिख चुका हूँ। इसलिए उनके आर्थिक विचारों को समझने के लिए नैतिकता सबंधी उनकी दृष्टि को समझना आवश्यक होगा। गांधी जी के दो मूल सिद्धान्त थे– सत्य और अहिंसा। सत्य है साध्य और अहिंसा है साधन। "सत्य ही

ईश्वर है," ऐसा गाँधीजी कहते थे। जीवन के हर व्यवहार में इस सत्य का दर्शन करना मानव जीवन का लक्ष्य है। इसके लिए मनुष्य को अहिंसा अपनानी चाहिये—यह गाँधीजी का मानना था। अहिंसा मन की वृति है जो इसके प्रति प्रेम भाव से उत्पन्न होती है। असत्य अज्ञान और मोह का परिणाम होता है और अहिंसा के मार्ग से अज्ञान और मोह को हटाकर सत्य के दर्शन करना मनुष्य का कर्तव्य है। इसी से गाँधीजी का सत्याग्रह निकला जिसका परिणाम है हृदय परिवर्तन। इसमें न कोई विजयी होता और न विजेता। दोनों पक्ष एक साथ सत्य का दर्शन करते हैं और आपस का विरोध समाप्त हो जाता है। गाँधीजी की संपूर्ण नैतिकता का यही दार्शनिक आधार था। इसी में से मनुष्य और मनुष्य के बीच में भावगत् समानता और प्रत्येक को इस समानता के अनुसार व्यवहार करने की स्वतंत्रता का उदय हुआ। इसी ने गाँधीजी को अन्याय, अत्याचार और शोषण से आजीवन संघर्ष करने की प्रेरणा दी। स्वभाविक था कि वे उस आर्थिक व्यवहार और आर्थिक संगठन के समर्थक थे जो मनुष्य को मनुष्य द्वारा किये जाने वाले अन्याय, अत्याचार और शोषण से सुरक्षित रखकर उसकी आत्मिक उन्नति में सहायक हो। क्योंकि गाँधीजी मानव जीवन का लक्ष्य आत्मिक उन्नति मानते थे और जीवन का हर व्यापार इसमें सहायक हो ऐसा वे चाहते थे। संपूर्ण आर्थिक व्यवहार और आर्थिक संगठन के पीछे भी उनकी यही दृष्टि थी। गाँधीजी के आर्थिक विचार मानव की आध्यात्मिक उन्नति का लक्ष्य सामने रखकर बने थे। मानव कल्याण को भौतिक, अभौतिक में बांटना उनकी समग्र और समन्वित दृष्टि को अस्वीकार था। मानव व्यवहार जैसा 'है' उसपर उनकी दृष्टि नहीं थी, बल्कि जैसा 'होना चाहिये' उसपर उनकी दृष्टि थी। वे सही अर्थ में सुधारक और क्रान्ति द्रष्टा थे। इसी पृष्ठभूमि में गाँधीजी के विचारों को देखा जाना चाहिये। अन्य किसी पृष्ठभूमि में उनके विचारों को देखना सही नहीं होगा।

गाँधीजी के आर्थिक विचारों को समझने के लिये सबसे पहले मनुष्य की आवश्यकताओं के संबंध में उनकी दृष्टि का हमें ध्यान रखना चाहिये। आज का युग आवश्यकताओं की उत्तरोत्तर वृद्धि को सभ्यता का विकास मानता है। आधुनिक अर्थशास्त्र इस तथ्य को मानकर चलता है। गाँधीजी का विचार दूसरा था वे मानव जीवन

का लक्ष्य उसकी नैतिक और आध्यात्मिक उन्नति मानते थे। भौतिक आवश्यकताओं मे अपने आपको उलझाने के पक्ष मे गांधीजी नही थे। इसलिए उनका आदर्श था सादा, स्वस्थ और सयत जीवन। उनके द्वारा प्रतिपादित अर्थव्यवस्था के पीछे एक दृष्टि यह थी।

दूसरी दृष्टि यह थी कि मनुष्य की एक व्यक्ति के नाते स्वतंत्रता अक्षुण्ण रहे। व्यक्ति के व्यक्तित्व की गरिमा को किसी प्रकार आच न पहुँचे। गांधीजी इस बारे में अत्यत सावधान थे। जहा केन्द्रीयकरण है वही स्वतन्त्रता को खतरा है यह गांधीजी मानते थे। इसी लिए गांधीजी की अर्थव्यवस्था मे विकेन्द्रीकरण और स्वावलवन को महत्व दिया गया था। इसी कारण गांधीजी राज्य के हाथ मे यथासंभव कम से कम कार्य देना चाहते थे क्योकि उसका अर्थ राज्य के हाथ में केन्द्रीकरण करने का होगा। फिर भी जहा समाज हित में आवश्यक ही हो वहा वे राष्ट्रीयकरण को स्वीकार करते थे। मशीन के प्रति भी उनकी दृष्टि इसी बात से प्रभावित थी। विज्ञान उनके लिए मानव हित का साधन था, अपने आप में कोई साध्य न था इस मर्यादा मे विज्ञान के उपयोग के वे समर्थक थे और इसके बाहर वे उसके समर्थक नही थे।

गाधीजी समानता और न्याय के भी समर्थक थे। आर्थिक असमानता को वे कम से कम रखना चाहते थे। इसलिए वे अपनी रोटी के लिए 'श्रम' के सिद्धान्त को मानते थे। शरीर श्रम करने वालों और बौद्धिक काम करने वालों में असमानता का मानसिक भाव पैदा न हो, आर्थिक स्थिति में अनुचित असमानता उत्पन्न न और धन तथा आय का वितरण न्यायपूर्ण हो इसके लिए 'अपनी रोटी के लिए श्रम' का सिद्धान्त अत्यन्त महत्वपूर्ण है। क्योकि दो मनुष्यों के बीच शारीरिक क्षमता में उतना अन्तर नही हो सकता जितना बौद्धिक क्षमता में हो सकता है। इसलिए गांधीजी बौद्धिक क्षमता को आय तथा जीविका का आधार नही बनाना चाहते थे, केवल शरीरश्रम को ही जीविका का साधन बनाने के वे पक्ष मे थे।

आज के आर्थिक जीवन का चक्र द्रव्य की धुरी पर घूमता है। अर्थशास्त्र का प्रत्येक विद्यार्थी द्रव्य के महत्व को जानता है। द्रव्य के जो दोष हैं उनसे भी वह परिचित है। पर उसके सामने कोई विकल्प

नहीं है। जब जो समस्या उठती है उसका वह हल ढूंढ़ने का प्रयत्न करता है। वास्तव में समस्या का हल नहीं निकलता क्योंकि समस्या का निराकरण समस्या की जड़ तक नहीं जाता। आज दुनिया में जो अन्तर्राष्ट्रीय तरलता (इन्टरनेशनल लिक्विडिटी) की समस्या विद्यमान है और उसका जो हल निकाला जा रहा है वह इस तात्कालिक दृष्टि का एक ताज़ा उदाहरण है। गांधीजी की दृष्टि समस्या के मूल तक जाती थी। वे सही अर्थ में क्रान्तिकारी थे। वे समझते थे कि अर्थ-व्यवस्था के आधुनिक रूप में, जिसमें केन्द्रीकरण और जटिलता अनावश्यक हद तक पाई जाती है और जो मानव की वास्तविक हित की वहस में पड़े विना उसके वतमान व्यवहार की सीमाओं में अपने आप को वांधकर चलने में ही अपनी जड़ वैज्ञानिकता को प्रमाणित करना चाहती है, द्रव्य के वर्तमान महत्व और उसके दोषों से नहीं वचा जा सकता। आर्थिक जोवन मे वे द्रव्य की नहीं श्रम की प्रधानता के पक्ष में थे। श्रम को वे सापेक्षिक मूल्य का मापदण्ड वनाना चाहते थे, द्रव्य को नहीं। मार्क्स के मूल्य के श्रम सिद्धान्त को आजका अर्थशास्त्री स्वीकार करता है। पर वह यह भूल जाता है कि आज की अर्थ-व्यवस्था की मर्यादा में ही उसका विचार सही है। तात्विक दृष्टि से, न्याय और समानता के जीवन-मूल्यों की दृष्टि से, यदि हम विचार करें तो मूल्य का श्रम सिद्धान्त सर्वथा सही है। आज के इस वैज्ञानिक युग का एक वड़ा कुप्रभाव यह पड़ा है कि हम विज्ञान के वड़े अन्ध-भक्त हो गए हैं। मुझे नहीं मालूम हमारे वैज्ञानिक समाजशास्त्री इस वात को समझते भी हैं या नहीं कि जड़ प्रकृति के वारे में जो वैज्ञानिक दृष्टि हो सकती है ठीक उसी वैज्ञानिक दृष्टि तक हर स्थिति में चेतन मानव को सीमित रखना महान अवैज्ञानिकता है। गाधीजी आर्थिक जीवन में द्रव्य की प्रधानता नहीं चाहते थे। इसलिए वे वर्तमान अर्थव्यवस्था को भी नहीं चाहते थे। विकेन्द्रित, स्वावलम्बी और मानव के नैतिक तथा आध्यात्मिक जीवन के लिए मार्ग प्रशस्त करने वाली अर्थव्यवस्था में ही द्रव्य का स्थान आज की अपेक्षा गौण हो सकता है।

जो वात द्रव्य की है वही व्यापार की। आज का अर्थशास्त्री व्यापार का क्षेत्र अधिकाधिक व्यापक करना चाहता हैं। इसी में उसे अर्थव्यवस्था का स्वास्थ्य मालूम पड़ता है। और इससे राष्ट्र के अन्दर और राष्ट्रों के बीच में जो व्यापार और तटकर नीति की

समस्याएं उत्पन्न होती हैं उनके फिर हल तलाश किये जाते हैं। आज के इस विषम युग में मनुष्य पहले अपनी मूर्खतावश समस्याएं उत्पन्न करता है और फिर उनके समाधान तलाश करने मे अपनी बुद्धि और प्रतिभा के प्रमाण देता है। गाधीजी इसमें मनुष्य की बुद्धिमत्ता नही मानते थे। आज के युग के अनावश्यक विस्तृत व्यापार के भी वे पक्ष में नही थे और उनकी विकेन्द्रित और स्वावलम्बी अर्थव्यवस्था में इसकी आवश्यकता भी नही रहती।

गाधीजी के आर्थिक विचारो का एक सक्षिप्त विवरण उपरोक्त पंक्तियो में दिया गया है। सक्षेप मे, गाधीजी के विचारो का सम्बन्ध आर्थिक व्यवस्था और आर्थिक व्यवहार से है किसी वास्तविक अर्थशास्त्र के निर्माण करने से नही। गांधीजी पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के समर्थक तो नही थे। वे समाजवाद मे भी मानव के वास्तविक कल्याण की अपेक्षा नहो रखते थे क्योंकि उसमे केन्द्रीकरण और हिंसा के लिए पूंजीवाद जैसा ही स्थान था यद्यपि पूंजीवाद के कुछ दोषो से वह मुक्त माना जा सकता है। समाज के आर्थिक जीवन मे राज्य का जितना वर्चस्व समाजवादी अर्थव्यवस्था में देखने को मिलता है उससे भी गांधीजी खुश नही थे। इसलिए गांधी द्वारा प्रतिपादित सर्वोदयी अर्थव्यवस्था विकेन्द्रीकरण-स्वावलम्बन-शरीरश्रम प्रधान है जो मनुष्य के ऐसे स्वस्थ, सादा और सयत जीवन के अनुरूप है जो उसकी नैतिक और आध्यात्मिक प्रगति के मार्ग मे बाधक नही, सहायक होगी।

दूसरा प्रश्न गांधीजी की अर्थव्यवस्था के बारे में यह उठता है कि वर्तमान अर्थव्यवस्था को उनकी कल्पना की अर्थव्यवस्था में बदलने का उन्होने क्या साधन बताया। दूसरे शब्दो मे उनकी आर्थिक क्रांति की प्रक्रिया क्या थी? इतना तो हम देख ही चुके हैं कि उस प्रक्रिया में हिंसा को स्थान नही हो सकता। वह प्रक्रिया अहिंसक ही होगी। इस सिलसिले मे गाधीजी मनुष्य का विचार परिवर्तन करना चाहते थे। विचार परिवर्तन के लिए उन्होने बुनियादी शिक्षा और लोक शिक्षण के साधन प्रस्तुत किये। सभवत उनकी यह अपेक्षा थी कि मानव अपने नैतिक और आध्यात्मिक तत्व को समझ कर अपने विचारो मे अनुकूल परिवर्तन करेगा, उसका आर्थिक व्यवहार उसी आधार पर चल सकेगा, और उस आर्थिक व्यवहार के आधार पर विकेन्द्रित और स्वावलम्बी अर्थव्यवस्था का निर्माण हो सकेगा। आज के सम्पन्न और पूंजीपति वर्ग से भी जो पूंजीवादी

अर्थव्यवस्था का पोषक और समर्थक है, उन्हें इस प्रकार के विचार परिवर्तन की अपेक्षा की थी। उनका 'ट्रस्टीशिप' (संरक्षण) का सिद्धान्त इसी अपेक्षा को रख कर बना था। पर उन्होंने यह भी कहा कि 'ट्रस्टीशिप' के सिद्धान्त को पूंजीपति वर्ग अगर समझाने-बुझाने से स्वीकार नहीं करता है तो अहिंसक असहयोग या सत्याग्रह के शस्त्र का उसके विरुद्ध उपयोग करना पड़ेगा। वैसे यह भी नहीं भूलना चाहिए कि गांधीजी का 'ट्रस्टीशिप' का सिद्धान्त केवल पूंजी-पतियों और सम्पन्न लोगों के लिए ही नहीं था, वह अमीर गरीब, सभी के लिये था। उसका मूल सिद्धान्त यह है कि हर व्यक्ति यह समझे कि उसके पास गुण, कुशलता, धन, प्रतिभा आदि किसी भी रूप में जो कुछ है वह उसकी व्यक्तिगत चीज नहीं, वह तो भगवान (या समाज) की दी हुई देन है और इसलिये उसे चाहिये कि पहले तो वह अपनी कही जाने वाली इस समस्त उपलब्धि को भगवान (या समाज) को समर्पित करे और फिर उसमें से अपनी वास्तविक आवश्यकता के अनुसार अपने उपभोग के लिये ग्रहण करे और शेष का अपने अ पको समाजहित में उपयोग करने के लिए 'ट्रस्टी' मात्र समझे। 'ट्रस्टीशिप' के सिद्धान्त का वास्तविक संबन्ध 'स्वामित्व' से उतना नहीं है जितना स्वामित्व चाहने की वृत्ति (लोभवृत्ति) से है, ऐसा गांधीजी का कहना था।

उपरोक्त पंक्तियों में गांधीजी के आर्थिक विचारों का संक्षेप में विवेचन किया गया है। अब इन विचारों के विषय में दो बातों का उल्लेख और करना ठीक होगा। जैसा कि प्रारम्भ में ही जिक्र किया जा चुका है, एक तो यह कि आज के युग के लिए गांधीजी के विचारों की उपयुक्तता कितनी है, अथवा है भी या नहीं। गाँधी जन्म शताब्दी के इस वर्ष में इस प्रश्न को लेकर बहुत विचार-विनिमय हुआ है, बड़ी और छोटी गोष्ठियाँ हुई हैं। दूसरी बात यह है कि मान लें गांधीजी के विचार उपयुक्त भी हैं तो वे व्यवहार्य हैं या नहीं। ये दोनों ही प्रश्न अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। बहुत संक्षेप में इन दोनों ही प्रश्नों पर यहाँ विचार किया जाएगा।

पहले उपयुक्तता की बात लें। उपयुक्तता अनुपयुक्तता का फैसला आवश्यकता को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। आज के युग की क्या आवश्यकता है? इस प्रश्न का उत्तर व्यक्ति की मानव जीवन दृष्टि से बहुत कुछ प्रभावित होगा। जीवन दृष्टि का प्रश्न

अन्ततोगत्वा केवल तर्क के आधार पर तय नही हो सकता। मनुष्य की मान्यता का, मूल्यो का प्रश्न आए बिना नही रह सकता। आवश्यकताएं भी विभिन्न स्तरो से अलग अलग होगी। प्रत्येक समाज और देश में गरीबी और बेकारी का अन्त प्रत्येक व्यक्ति के लिए आर्थिक स्तर पर होना चाहिए। आज के युग की इस आवश्यकता से किसी का मतभेद नही हो सकता। स्वयं गाधीजी भी इस पक्ष में थे कि मनुष्य को सुविधादायक जीवन स्तर मिले। मनुष्य की दूसरी आवश्यकता, जिसका मार्ग आर्थिक आवश्यकता की पूर्ति से प्रशस्त होना चाहिये,

स्वतन्त्रता की है। यह आवश्यकता राजनैतिक, नैतिक और अध्यात्मिक सभी स्तर की है। स्वतन्त्रता के साथ ऐहिक स्तर पर न्याय की बात आती है। न्याय असमानता नही चाहता। इसलिए भी समानता का महत्व है और मानव व्यक्तित्व की गरिमा, जो एक नैतिक और आध्यात्मिक विचार है, भी समानता चाहती है। साथ ही साथ मनुष्य को उच्चतर प्रवृत्तियो मे लगाने के लिए अवकाश भी चाहिए। इस प्रकार मनुष्य को आर्थिक सुरक्षा, स्वतन्त्रता, न्याय, समानता और अवकाश चाहिए। क्या आज का युग और एक मात्र आज का विज्ञान मनुष्य को यह सब दे सकता है? पूंजीवादी अर्थव्यवस्था मे ये सब उपलब्ध नही होते, इसमें मतभेद मुश्किल से होगा। साम्यवादी अर्थव्यवस्था-समाजवादी अर्थव्यवस्था मे इन सब सुविधायो के उपलब्ध होने की कितनी अपेक्षा रखी जाए यह थोड़ा विवाद का विषय हो सकता है। रूस, चीन और युगोस्लाविया जैसे साम्यवादी देशो में भी

स्वतंत्रता, न्याय और समानता की किस हद तक प्रतिष्ठा है मेरी राय में यह विवाद का विषय नही हैं। यह जीवनमूल्य साम्यवादी देशों में उपलब्ध और प्रतिष्ठित नही हैं। समाजवाद मे भी जिस हद तक राजसत्ता और अर्थसत्ता का केन्द्रीकरण और अर्थव्यवस्था में विषमता है स्वतन्त्रता और न्याय तथा समानता को खतरा रहने ही वाला है। अवकाश के लिए दो बातो की जरूरत है—मनुष्य की आवश्यकताएं, स्वस्थ, सादा और सयत जीवन के अनुरूप हो और उत्पादन विधि में विकसित 'तकनीक' का प्रयोग हो जिससे उत्पादन कुशलता बढ़े। आधुनिक तकनीक ने उत्पादन कुशलता को बढ़ाया पर जीवन की भौतिक दृष्टि ने मनुष्य की आवश्यकतायो पर से स्वस्थ नियंत्रण समाप्त कर दिया। इसलिए जो लोग जीवन में आध्यात्मिक मूल्य को प्रतिष्ठित करना चाहते हैं उनके सामने आज के युग की सबसे बड़ी

आवश्यकता भौतिक तृप्ति और आध्यात्मिक वृत्ति में समन्वय और संतुलन करने की है। आज यह समन्वय और संतुलन बिगड़ा हुआ है। उस समन्वय और संतुलन को स्थापित करना ही आज के युग की सबसे बड़ी आवश्यकता है। पूंजीवादी, साम्यवादी और समाजवादी-भौतिक दृष्टि प्रधान अर्थव्यवस्थाएं यह समन्वय और संतुलन स्थापित नहीं कर सकतीं यह मेरी मान्यता है। इसके लिए तो गांधीजी की दृष्टि से प्रभावित अर्थव्यवस्था की ही आवश्यकता होगी। इसलिए मेरा अपना निष्कर्ष यह है कि आज के युग के लिए गांधीजी के आर्थिक (और दूसरे) विचारों का अत्यन्त महत्त्व है पर उनके महत्त्व और उपयुक्तता का मैं यह अर्थ कदापि नहीं मानता कि उनके विचारों को हम जड़ बुद्धि से स्वीकार करें और उनका अन्धानुकरण करें या अनुभव और परिस्थिति के आधार पर उनमें संशोधन न करें। गांधीजी स्वयं यह नहीं चाहते थे कि उनके विचारों का इस प्रकार कोई दास बने। पर गांधीजी ने विचार करने की एक दिशा प्रस्तुत की और बाद में आनेवालों का कर्त्तव्य है कि उस दिशा में वे आगे बढ़ें। जो व्यक्ति जीवन के आध्यात्मिक दृष्टिकोण को अस्वीकार करते हों, उनके लिए गांधीजी के विचार अवश्य अनुपयुक्त हैं।

जीवन की कौनसी दृष्टि सही है और कौन सी गलत इसका निर्णय एकमात्र तर्क से होना सम्भव नहीं। फिर भी जिस हद तक मेरा तर्क मुझे ले जा सकता है उसका संक्षिप्त विवेचन मैं करना चाहूंगा। मनुष्य सुख चाहता है, शान्ति चाहता है। जहाँ अभाव है वहां न सुख हो सकता और न शान्ति। अभाव की अनुभूति मन की वृत्ति (आंतरिक) और बाह्य उपलब्धि दोनों का परिणाम है। पर अन्ततोगत्वा यह मन की वृत्ति पर निर्भर करती है। धनी से धनी व्यक्ति भी अभाव की अनुभूति करता हुआ देखा जाता है और गरीब से गरीब भी संतोष अनुभव कर सकता है। आवश्यकताएं अनन्त इसीलिए मानी जाती हैं कि केवल बाह्य उपलब्धि में वृद्धि करके मनुष्य अपनी आवश्यकता और अपने अभाव की तृप्ति नहीं कर सकता। इस से यह निष्कर्ष निकलता है कि तृप्ति का सम्बन्ध अन्ततोगत्वा मन की वृत्ति से ही आता है। और तृप्ति के बिना सुख और शान्ति नहीं। इसलिए यदि मनुष्य जीवन में सुख और शान्ति चाहता है तो उसे अपनी मन की वृत्ति अनुकूलित करनी होगी। यह अनुकूलन शून्य में नहीं हो सकता। एक दिशा से हटना तभी सम्भव है जब

दूसरी दिशा सामने हो। यह दूसरी दिशा ही आध्यात्मिकता की है जिसमें मनुष्य अपना सतोप, सुख और अपनी शान्ति अपने अन्तर में ही ढूंढता है। जहाँ तक तर्क का सवाल है मैं आध्यात्मिक दृष्टि को स्वीकार करने के लिए इतना ही तर्क उपस्थित कर सकता हूँ। और मुझे यह तर्क पर्याप्त लगता है। इससे आगे या तो आन्तरिक अनुभूति जा सकती है, या श्रद्धा और जीवन मूल्यों के बारे मे स्वीकार्य दृष्टि या वृत्ति।

एक बात और मेरे ध्यान में आ रही है। जीवन की आध्यात्मिक दृष्टि को ऐतिहासिक दृष्टि वाले अपने ऐतिहासिक तर्क से असगत मानते हैं। इस तर्क का सबसे उग्र रूप मार्क्स की द्वन्द्वात्मक भौतिकता में देखने को मिलता है। द्वन्द्वात्मकता भौतिकता का विपरीतीकरण हैगल के विचार की द्वन्द्वात्मकता मे मिलता है जो अनऐतिहासिक दृष्टि मानी जाती है। इस विवाद के सम्बन्ध मे मेरा मन्तव्य कुछ अलग है। विकास, चाहे विचार के स्तर पर हो और चाहे वस्तु के स्तर पर, चाहे आन्तरिक हो चाहे बाह्य, द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया के माध्यम से ही होता है। विचार और वस्तु मे या आन्तरिक और बाह्य मे से किसी एक को आधार और दूसरे को उस आधार की अभिव्यक्ति मात्र मानना अपूर्ण दृष्टि है। पूर्णता में दोनो के लिए स्थान है। बिना भौतिक तृप्ति से आध्यात्मिक उन्नति की बात दार्शनिको और सतो ने की पर सामान्य मनुष्य की क्षमता के वह बाहर की चीज रही। मार्क्स ने आध्यात्मिक पक्ष को अस्वीकार करके केवल भौतिक प्रगति की बात की। पर उससे भी मानव को सुख और शान्ति नहीं मिल पा रही है और वह सारे विज्ञान और भौतिक सम्पन्नता के बाद भी अपने आप को कुछ खोया हुआ और अभावग्रस्त ही पाता है। भविष्य की माँग है कि आध्यात्मिकता और भौतिकता का स्वस्थ समन्वय हो। इसी मे इतिहास के नियम की सच्ची पूर्ति है, ऐसा मेरा विचार है। इस लिए गांधीजी के विचारो मे समाज के विकास की ऐतिहासिक दृष्टि का मुझे समावेश लगता है; उस दृष्टि को अनऐतिहासिक कहना भूल होगी। सक्षेप मे मेरा अपना निष्कर्ष यह है कि गाधीजी के विचार आज के युग के लिए अनुपयुक्त नही सर्वथा उपयुक्त हैं। मानव इतिहास आज जिस समन्वय (आध्यात्मिकता तथा भौतिकता मे) की सम्भावना उपस्थित करता है वह गाधीजी के विचारो मे ही हमें मिलती है।

दूसरा प्रश्न यह है कि गांधीजी के आर्थिक विचारों को अगर आज के युग के उपयुक्त मान भी लिया जाये तो वे इस युग में कहाँ तक व्यवहार्य हैं। पहली बात है आर्थिक व्यवहार को नैतिकता की मर्यादा में बांधने की। हम इस बात को भूल जाते हैं कि इस विचार में आखिरकार कोई ऐसी सवर्था नयी बात नहीं है। आधुनिक अर्थ-शास्त्र आर्थिक व्यवहार को कानून की मर्यादा में रखता है। कानून विरोधी व्यवहार अर्थशास्त्र के अध्ययन क्षेत्र के बाहर माना जाता है। गांधीजी ने इस मर्यादा को और अधिक व्यापक बना कर नैतिकता की सीमा तक उसे ले जाना चाहा। आज भी हमारी अनेक आर्थिक नीतियों के पीछे प्रेरक शक्ति नैतिक भावना ही रहती है। आर्थिक न्याय इस नैतिक वृति की उपज नहीं तो और क्या है? इसलिए गांधीजी के आर्थिक व्यवहार को नैतिक आधार देने के आग्रह को अव्यवहार्य मानने का कोई कारण नहीं। परिमाणात्मक अर्थशास्त्र (क्वान्टिटेटिव अर्थशास्त्र) को अवश्य इस मर्यादा से मुक्त कर किसी बाह्य मापदण्ड से बांधना आवश्यक है। पर परिमाणात्मक अर्थ-शास्त्र के साथ साथ गुणात्मक अथशास्त्र (क्वालिटेटिव अर्थशास्त्र) का भी अपना महत्व और स्थान है।

गांधीजी के आर्थिक विचारों के प्रति व्यवहार के स्तर पर दूसरी आपत्ति यह उठायी जाती है कि उनके स्वावलम्बन और विकेन्द्रीकरण के विचार आज के युग में नहीं चल सकते। विकेन्द्रीकरण के बिना स्वावलंबन संभव नहीं। इसलिये पहले विकेन्द्रीकरण के विषय में हम विचार करेंगे। इस सम्बन्ध में सबसे पहला और आवश्यक स्पष्टीकरण यह है कि गांधीजी ने विकेन्द्रित कुटीर और ग्राम उद्योगों को केवल भावना के आधार पर ही चलाना चाहा। पर मनुष्य स्वभाव का अध्ययन और अब तक का हमारा अनुभव यह बतलाता है कि कोरी भावना के आधार पर दुनियाँ का आर्थिक (दूसरा भी) व्यवहार नहीं चल सकता। इसलिए यदि समाज का हित विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था चाहता है तो उस विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था के लिए राजकीय नीति को अपनाने में कोई अनौचित्य नहीं है। जो अर्थशास्त्री, व्यापारी और व्यवसायी इस तरह के राजकीय समर्थन का आर्थिक तर्क की शरण लेकर विरोध करते हैं वे इस बात को भूल जाते हैं कि तटकर, संरक्षण, वित्तीय और द्रव्य नीति का सदा ही उन आर्थिक व्यवहारों को समर्थन देने के

लिए उपयोग हुआ है जो समाज के हित में इन नीतियो के निर्माताओं की दृष्टि में रहे हैं। आज के विकासमान देश विकसित देशों से जिस अन्तर्राष्ट्रीय सहायता को अधिकार पूर्वक मांग करते हैं उसके पीछे क्या विचार है? अन्तर्राष्ट्रीय तरलता की समस्या को सुलझाने के लिए जो 'स्पेशल ड्राइंग राइट्स' की योजना अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष स्वीकार कर चुका है और जो शीघ्र ही व्यवहार में लायी जाने वाली है उसके पीछे कौन-सा भिन्न तर्क है। सक्षेप में समझने की बात केवल यह है कि आज भी जब सामाजिक नीति से निर्वाधित आर्थिक व्यवहार कोई सामाजिक समस्या और सकट (आर्थिक रूप में ही सही) उत्पन्न करते हैं तो उसका समाधान करने के लिए सामाजिक नीति अपनायी जाती है और उस स्वतन्त्र आर्थिक व्यवहार को निर्वाध रूप से काम नही करने दिया जाता जिसके कारण ही वह समस्या पैदा हुई। इसलिए विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था को राजकीय नीति से समर्थन और सरक्षण देने में कोई अनौचित्य नही माना जा सकता। और जो इस अनौचित्य की बात करते हैं वे या तो अपने निहित स्वार्थवश ऐसा करते हैं या अपनी विचार तथा तर्क शक्ति की अक्षमता मात्र प्रगट करते हैं। पर साथ साथ यह भी आवश्यक है कि केवल राजकीय नीति पर भी निर्भर न रहा जाए और हमारी विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था से स्वयं अपने पांव पर खड़े होने की क्षमता आये। यह तभी सभव है जब विकेन्द्रित अर्थ-व्यवस्था की तकनीकी और आर्थिक कुशलता बढे। आर्थिक कुशलता तो विभिन्न उत्पादन साधनो के उचित मात्रा में किये गये संयोग पर निर्भर करती है जिसका निर्णय उत्पादक को करना होता है। पर तकनीकी कुशलता आधुनिकतम तकनीक का उपयोग करने पर निर्भर करती है। अब तक तकनीकी विकास ऐसा हुआ है जो प्रायः बडे पैमाने के उत्पादन में ही काम में आ सकता है। आधुनिक यांत्रिकता ने आर्थिक जीवन मे बड़े पैमाने के उत्पादन और केन्द्रीकरण को ही प्रोत्साहन दिया है। ऐसा अमुक ऐतिहासिक परिस्थितियो के परिणामस्वरूप ही हुआ है। यदि हम समाज में विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था को लाना चाहते हैं तो हमें विकेन्द्रित तकनीक के विकास की ओर भी ध्यान देना होगा। यह कार्य भी मुख्यतः राजकीय नीति के समर्थन से ही सभव है। बड़े दु ख की बात है कि अब तक हमारी सरकार ने इस ओर ध्यान करीब करीब नही ही

दिया है। यह स्पष्ट है कि बिना तकनीकी आधार के अर्थ व्यवस्था के किसी भी स्वरूप को स्थायित्व नहीं दिया जा सकता। यहाँ एक बात और ध्यान में रखने की है कि विकेन्द्रीकरण की जिस रूप में अपने समय में गांधीजी ने कल्पना की थी ठीक उसी रूप में जड़वत् बुद्धि से बंधा रहना संभव नहीं है। यर्वदा चर्खे से आखिर अम्बर चर्खा आया ही। और यह भी मानना होगा कि यांत्रिकता और बिजली आदि की यंत्र चालक शक्ति के बहिष्कार करने से भी काम नहीं चलेगा। इसलिए हमारी विकेन्द्रित अर्थ व्यवस्था युग प्रवाह के प्रतिकूल नहीं वरन् अन्ततोगत्वा उसके अनुकूल और उससे सामंजस्य रखने वाली ही होगी। विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध में एक भ्रम और देखा जाता है—वह यह कि इस अर्थव्यवस्था में केन्द्रित उत्पादन होगा ही नहीं। बात ऐसी नहीं है। जो उत्पादन समाज की आवश्यकता के लिये होना चाहिए वह यदि केन्द्रित आधार पर ही हो सकता है तो वह केन्द्रित आधार पर होगा। गांधीजी ने इस स्थिति को अस्वीकार नहीं किया। आखिर हमें तारतम्य बुद्धिसे तो काम लेना ही होगा। कुछ मान्यताएं, कुछ नियम, कुछ विचारधाराएं कभी भी मनुष्य के विवेक का स्थान नहीं ले सकतीं।

उनके स्वावलंबन के सिद्धांत को लेकर भी गांधी जी के आर्थिक विचार अव्यवहारिक ठहराये जाते हैं। इस दृष्टि से भी विचार करना आवश्यक है। गांधी जी के स्वावलंबन के सिद्धांत के बारे में कुछ स्पष्टीकरण आवश्यक है। गांधी जी के स्वावलंबन का अर्थ स्वावलंबन की इकाई (जैसे गाँव) का शेष समाज से असम्बद्ध (आइसोलेट) होना नहीं था। उन्होंने स्वयं लिखा है "पर याद रखना स्वावलंबन का मेरा विचार कोई संकीर्ण विचार नहीं है। मेरे स्वावलंबन में स्वार्थभाव और अहंभाव के लिए कोई स्थान नहीं है। मैं एकान्तिकता (आइसोलेशन) का उपदेश नहीं दे रहा हूँ। ......हमें जनता के साथ जैसे शकर दूध में घुल जाती है उसी तरह मिल जाना है।" इस उद्धरण से स्पष्ट है कि स्वावलंबन का अर्थ क्या लगाया जाना चाहिए। व्यक्ति की स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण रखने के लिए, केन्द्रीकरण से उत्पन्न शोषण और हिंसा से बचने के लिए, और आर्थिक संगठन को अनावश्यक रूप से अस्वाभाविक और पेचीदा बनने से बचने के लिए स्वावलंबन का महत्त्व है। आखिर इस बात का विरोध क्यों हो

कि जहा की प्रकृति अपनी भूमि के निवासियों के लिए उनकी शक्ति का उपयोग करके जितना अन्न, वस्त्र, निवास, काम और मनोरजन, शिक्षा और स्वास्थ्य की व्यवस्था कर सकती है वह उनके लिए करे और ऐसी उल्टी गगा न बहे कि हमारा भोजन वस्त्र इग्लैंड और अमेरिका से आए और उनका भोजन वस्त्र यहा से या अन्य कही से जाए। अर्थ-शास्त्र के विद्यार्थियो को यह बात याद रखनी चाहिए कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आर्थिक सिद्धात केवल द्रव्य मे मापे जाने वाले संतोष को अमुक मान्यताओं के आधार पर अधिकतम करने वाला सिद्धात है। पर कोई समाजनीति केवल द्रव्य में नापे जाने वाले सतोष को लक्ष्य मान कर तय नही की जा सकती और यदि मान्य आधार ही वास्तविक जीवन में न पाये जाते हों तो वह वास्तविक जीवन की अवहेलना नही कर सकती और न ही आर्थिक के अलावा दूसरे सामाजिक पक्षो और मानवीय मूल्यो के प्रति उदासीन रह सकती है। इन मर्यादाओ को मानते हुए अर्थव्यवस्था को स्वावलवन की दिशा में मोड़ना और दुराग्रह रखे बिना स्वावलवन की इकाइयो को तय करना और परिस्थिति अनुसार स्वावलंवन की अर्थव्यवस्था में संशोधन होते रहने देना मेरी राय में किसी प्रकार की अव्यवहारिकता नही होगी। बात अव्यवहारिक उस समय लगती है जब वह अत्यत जड़ रूप में प्रस्तुत की जाती है। यहाँ दो बातें और ध्यान देने योग्य हैं। गाधीजी सादा जीवन के हिमायती थे। इस पृष्ठभूमि में उनके स्वावलंबन की बात को देखें और यह भी याद रखें कि जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं के लिए ही उनके स्वावलवन की दृष्टि का अधिक जोर था, तो गाधी जी को स्वावलवी अर्थव्यवस्था उतनी अव्यवहारिक नही लगेगी। और जिस विकेन्द्रित तकनीक के विकास का हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं उसको भी यदि हम याद रखें तो इस स्वावलम्बी अर्थव्यस्था की अव्यावहारिकता और भी कम लगने लगेगी। इसी प्रसग में एक बात और याद रखने को है। भारत जैसे देश में श्रम की बाहुल्यता और पूंजी का अभाव है। इस दृष्टि से भी श्रम-प्रधान, जिसका अर्थ तकनीकी अकुशलता और अक्षमता से लगाना गलत है, अर्थव्यवस्था भारत जैसे देश के लिए अधिक उपयुक्त है और अपने समस्त काम करने वालो को काम देने की योजना राष्ट्र भर को एक इकाई मानकर बनाना बहुत कठिन है र स्वावलबी इकाइयो में इस दायित्व को बाटना अधिक व्यवहारिक होगा। यह भी स्वाव-

लंबी इकाई की व्यावहारिकता के पक्ष में एक तर्क है। स्वावलंबी इकाई के विपक्ष में एक तर्क यह उपस्थित किया जा सकता है कि इसके लिए हर इकाई को अपने आर्थिक जीवन को किन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपनी इच्छानुसार चलाने का अधिकार होना चाहिए, और इस प्रकार का अधिकार आज के अन्तर्राष्ट्रीयता के युग में एक युग विरोधी बात है। यह एक संकीर्ण स्थानीयवाद, (लोकेलिज्म) का उदाहरण है। इस बारे में मेरा कहना यह है कि आज के तथाकथित वैज्ञानिक और बुद्धिप्रधान युग में भी मनुष्य अपने स्वभाववश किन्हीं विचारगत अन्धविश्वासों (कन्सेप्चुअल सुपरस्टीशन्स) में फंसा हुआ है। अन्तर्राष्ट्रीयता का यह विचार भी उसकी अनेक अभिव्यक्तियों में मुझे इस प्रकार के अन्धविश्वास का एक उदाहरण लगता है। मानलो यदि कोई इकाई, गाँव, गाँवसमूह और प्रदेश, अपने समाज के वाजिब हित में किन्हीं आर्थिक प्रतिबन्धों को लगाना चाहता है तो उसमें आपत्ति क्यों हो? स्वदेश भावना का आधार तत्व और दर्शन इसी में है कि स्थान विशेष को प्रकृति और मानव शक्ति पर पहला उचित अधिकार वहां के निवासियों का ही होना चाहिए। आखिर राष्ट्र की सीमा में इस मर्यादा को आज माना ही जाता है। तो फिर राष्ट्र के अन्दर की दूसरी इकाइयों को भी इस प्रकार की यथोचित स्वतन्त्रता को अनुचित मानने का क्या कारण है? पूर्व मध्यकाल से आधुनिक युग तक जो आर्थिक इकाई का गाँव से राष्ट्र तक विस्तार हुआ वह विस्तार जिस प्रकार हुआ वह एक निहित स्वार्थ वाले (व्यापारी, व्यवसायी, पूंजीपति) वर्ग के हित में अविवेक पूर्वक हुआ है। स्वतन्त्रता और समानता के युग में राष्ट्रीयता और फिर अन्तर्राष्ट्रीयता के स्वरूप में आवश्यक विवेक लागू करना और विभिन्न इकाइयों के हित में स्वस्थ सामंजस्य बिठाना होगा। गांधी जी के स्वावलंबी अर्थव्यवस्था के विचार को भी इसी दृष्टि से देखना चाहिए। और तब यह हमें ऐसा अव्यावहारिक नहीं लगेगा।

गांधी जी के आर्थिक विचारों की अव्यवहारिकता के संबंध में एक अन्तिम बात उनके सादा जीवन की मान्यता को लेकर कही जाती है। मेरे एक विनोदी अर्थशास्त्री भाई को कई बार मैंने यह उदाहरण देते सुना कि एक बार हिमालय पर्वत के एक सुनसान स्थान में जब उन्होंने किसी एक्ट्रेस की (नाम मैं भूल गया) मधुर आवाज

सुनी तो उन्हे आश्चर्य हुआ, और थोड़ी देर बाद उन्होने देखा एक साधु लगोटी बांधे पर गले में ट्रांजिस्टर लटकाए जा रहा है। कहना वह यह चाहते हैं कि आज के युग मे आवश्यकताओं को सीमित रखने की बात करना, और फिर भारत जैसे गरीब पर विकासमान देश में, सर्वथा अव्यवहारिक है। इस विचार मे जो तथ्य है उसे मै समझता हूँ। आज के युग की जो प्रवृति है वह भी हम सब जानते ही हैं। पर व्यवहारिकता की जब हम बात करें तो हमें थोड़ा गहराई से सोचना चाहिए। मनुष्य का बहुत सारा व्यवहार पशु के समान उसकी अन्तरजात प्रवृति (इन्स्टिंक्ट) के अनुसार होता है, बहुत सा व्यवहार तत्काल सुविधा से प्रेरित होता है। पर मनुष्य की मनुष्यता इसमे है कि वह विवेक, विचार और दीर्घ दृष्टि से अपने व्यवहार को अधिकाधिक नियन्त्रित करे और अपनी जीवन दृष्टि और जीवन मूल्यो के अनुसार व्यवहार करे। अज्ञानियों और ज्ञानियों की व्यवहारिकता का मापदण्ड समान नही हो सकता, स्थूलदृष्टि और सूक्ष्मदृष्टि का मापदण्ड एक नही हो सकता, अल्प दृष्टि और दीर्घ-दृष्टि का एक नही हो सकता, संकल्पहीन और दृढ़संकल्पी का एक नही हो सकता। विज्ञान और इतिहास का सबक भी यही है कि कल की अव्यवहारिक और अनहोनी बात आज व्यवहारिक और सभाव्य हो गयी है। मनुष्य चन्द्रमा पर पहुँच ही गया। इसलिए विवेक और विचार तथा वर्तमान प्रवृति दोनो मे यदि विरोध मालूम पड़े तो दूर-दर्शी, प्रगतिशील, सुधारक, क्रान्तिकारी कभी भी वर्तमान से अविभूत नही हुआ। उसने हमेशा ही वर्तमान को चीर कर भविष्य की झलक देखने का साहस किया और अन्ततोगत्वा उसकी विजय हुई। इसलिए जो अल्पदर्शी, प्रगति विरोधी, स्थितिपालक और क्रान्तिविरोधी होते हैं, जो साहस और दृढसंकल्प की अनुभूति नहीं कर पाते वही वर्तमान से आविभूंत होते हैं। गाधीजी के विचारो को अव्यावहारिक बताने से पहले उनके विचार और व्यवहार के इस युगदृष्टि पक्ष को याद रखने की आवश्यकता है।

गांधी जी के आर्थिक विचारो और उनकी उपयुक्तता और व्यवहारिकता के बारे मे जो कुछ ऊपर लिखा गया है उसका सार यह है कि सत्यात्म दृष्टि, मानवहित, दृढ संकल्प और कर्तव्य तथा सेवाभाव से यदि गाधी जी के विचारो को अपनाया जाएगा तो वे न

आज के युग के अनुपयुक्त मालूम पड़ेंगे और न अव्यवहारिक क्योंकि मनुष्य के सच्चे कल्याण की दिशा में हमें आगे ले जाने वाली दिशा के वे सूचक हैं। गांधी जी के विचार किसी भविष्यवक्ता के विचार नहीं हैं। उनमें एक प्रकार की वैज्ञानिक तार्किकता है, कारण-परिणाम के अमुक संबंध की उनमें अभिव्यक्ति है और अपने आप को वैज्ञानिक कहने वाले आज के मानव की वैज्ञानिकता को चुनौती है। मनुष्य यदि सच्चे अर्थ में अपने आपको अपने भाग्य का निर्माता मानता है तो उसे शुद्ध विवेक बुद्धि से अपना भविष्य चुन लेना चाहिए और दृढ़ संकल्प के साथ उस भविष्य के निर्माण में लग जाना चाहिए। ऐसा करने पर अकर्मण्य और निराशावादी की अनुपयुक्तता और अव्यावहारिकता कर्मण्य और आशावादी की उपयुक्तता और व्यवहारिकता में वदल जाएगी और मनुष्य का अन्धकारमय भविष्य उज्जवल वन जाएगा।

स्वावलम्वन और आत्म-निर्भरता की तरह परस्परावलम्वन भी मनुष्य का आदर्श है और होना चाहिए। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज के साथ आन्तर-सम्वन्व स्थापित किए विना वह सारे विश्व के साथ एकरूपता अनुभव नहीं कर सकता या अपने अहंकार को दवा नहीं सकता।

यंग इण्डिया

२१-३-२९

वह

संसार

है

तू

कृष्ण बिहारी सहल

आज हमारे देश में कौनसी ऐसी भाषा है जिसमें गांधीजी को लेकर न लिखा गया हो। भारतवर्ष की सभी भाषाओं मे गांधीजी से सम्बन्धित अनेक लेख और अनेक कविताएं लिखी गई हैं। गुजराती, बंगला, मराठी, हिन्दी, संस्कृत, कन्नड, राजस्थानी भाषाओं मे गाधीजी से सम्बन्धित बडी सुन्दर कविताएं लिखी गई हैं। यहां तक कि चीनी और अंग्रेजी भाषा में भी गाधीजी के गुणगान हुए हैं। यही एक ऐसा महामानव हुआ जिसे केवल भारत ही नही वरन् ससार के सभी प्राणी आदर व श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। उर्दू काव्य साहित्य में गाधीजी का क्या स्थान मिला है–यहा पर लेखक उसी का विवेचन कर रहा है।

न जाने गांधीजी में कौनसा ऐसा गुण था जिसके कारण वे सभी लोगों के श्रद्धा से युक्त स्नेह के पात्र बने। गांधीजी ने हमेशा दूसरे के हृदय को जीतने को चेष्टा की और समय आया जब वे सबके मन पर छा गए। इसी विशेषता को लेकर उर्दू के प्रसिद्ध कवि श्री 'सीमाव' अकबराबादी लिखते हैं:—

"तसर्रुफ सारी दुनियां के दिलों पर कर लिया तूने,
जमाने को मोहब्बत से मुसख्खर कर लिया तूने।
किया तहलील यूं तुझको तेरी फितरी लताफत ने।
कि आंखों से गुजर कर रूह में घर कर लिया तूने।"

गांधीजी के पास कोई शस्त्र नहीं था, न आधुनिक विज्ञान का ही कोई चमत्कार था और न ही कोई विशाल सेना थी। उनके पास तो एक ही शस्त्र था और वह था अहिंसा शस्त्र। इसी शस्त्र के द्वारा गांधीजी ने विशाल एवं शक्तिशाली अंग्रेजी साम्राज्य से लोहा लिया था, यही वह शस्त्र था जिसके द्वारा अंग्रेजों के दांत खट्टे किये गए थे, और इसी शस्त्र के द्वारा भारत को स्वतन्त्रता का मुंह दिखा था। यही वह शस्त्र था जिसने संसार को नैतिक आदर्श का पाठ पढ़ाया। गांधी के इस शस्त्र को लेकर ही अबूसईद वज्मी एम० ए० 'महात्मा' नामक कविता में लिखते हैं:—

"यों तो जहां में और भी आये महातमा,
जिनके कमालो फैज ने दुनियां को दी जिला।
पर तूने जो चिराग जलाया जहान में,
उसके शुआये फैज से जग जगमगा उठा।
मजलूम को बता के अहिंसा की ताकतें,
चिड़ियों को तूने बाज से जाकर लड़ा दिया।
............तेरी फरोतनी में है रुई तनों का जोर,
पोशीदा खामोशी में तेरी आंधियों का शोर।"

श्री अबूसईद वज्मी ने "चिड़ियों को तूने बाज से जाकर लड़ा दिया" जैसी पंक्ति लिख कर गांधीजी को महान शक्तिशाली व्यक्ति के रूप में देखा है। और वास्तव में गांधीजी के पास वह शक्ति थी जिसमें समाज की आवाज थी, हर नर नारी का जोश था, और लेखक तो यहां तक कह सकता है कि गांधीजी के पास जो शक्ति थी उसमें समाज के हर जीव-जन्तु की शक्ति थी।

गांधीजी ही ऐसे व्यक्ति हुए जिन्होने हमेशा ताकत को सच्चाई पर आंका। वे शराफत के द्वारा, प्रेम के द्वारा ही समस्या का समाधान किया करते थे। गांधीजी आमतौर पर क्या कहा करते थे इसको 'ताजदारे वतन–गाधी' नामक कविता में श्री रामलाल वर्मा लिखते हैं:—

"तूने बतलाया सियासत और सिदाकत एक है,
तूने दिखलाया कि ताकत और शराफत एक है।
तूने समझाया जहाने रजो राहत एक है,
तूने परचाया कि बस राहे तरीकत एक है।"

गांधीजी के प्रति श्री गोपीनाथ 'अमन' की कही गई निम्न पक्तियां बडी विचारपूर्ण एव महत्त्वपूर्ण हैं:—

"जोशे अलम के साथ मोहब्बत सिखाई है
दुश्मन से भी सुलूक—ए उलफत सिखाई,
......"लडते हैं और हाथ मे तलवार भी नहीं।"

हा यह भी एक जंग है और लाजवाब है,
यक सब्र जिसमे लाख सितम का जवाब है।"

गाधीजी जैसो विराट आत्मा आज देखने को भी नहीं मिलती। वह हर धर्म को एक समझता था, अपने मरने का भी जीना ही समझता था, ऐसा महामानव सचमुच कोई ईश्वर का ही अवतार था। "बादशाहे वतन" नामक कविता मे श्री अमरोहवी ने ठीक ही लिखा है:—

" अनोखा है उसकी तरक्की का जीना
कि मरने को अपना समझता है जीना
सियासत का उसकी निराला करीना
वो हँस दे तो दुश्मन को आये पसीना
कयामत हो—बरपा जो आंसू बहादे
जो सोने को ताने तो हलचल मचा दे।
वो भारत के हर मर्दोजन का दुलारा
गरीबों व फकीरों की आंखों का तारा
हमारी जमीं का चमकता सितारा,
वतन की है आजादियों का सहारा,

जमाने में ऐसे हैं कम नेक इनसां
जो धर्म उसका पूछो तो है एक इनसां।"

गांधीजी का जीता जागता चित्रण हमें इस कविता में देखने को मिलता है। "जो धर्म उसका पूछो तो है एक इनसां" जैसी पंक्तियां गांधीजी के व्यापक दृष्टिकोण को ही नहीं वरन् उनके 'मानव प्रेम' को भी दर्शाती है।

श्री व्रजकृष्ण गंजूर 'फिदा' की निम्न पंक्तियाँ कितनी मार्मिक हैं जो वास्तविकता से परे नहीं, सूर्य के प्रकाश की भांति सत्य हैं:—

" जो देखा तिशना लब तुझको तो पत्थर हो गये पानी,
बिछाया कौम नें आंखों का अपनी फर्श नूरानी।"

उपरोक्त पंक्तियों को देखते ही सहसा श्रीमती स्व० सुभद्रा कुमारी चौहान की निम्न पंक्तियाँ मेरे मानस-पटल पर अंकित हो जाती हैं:—

"........विज्ञान की है परम सिद्धि जग को लोहे से भर देना
है हँसी खेल तुमको बापू ! लोहे को पानी कर देना।"

गांधीजी ने कभी किसी कार्य को कठिन नहीं समझा और यही कारण था कि वे असम्भव कार्य को भी सम्भव करके ही रहते थे। उपरोक्त पंक्तियां गांधीजी के आत्म-विश्वास पर प्रकाश डालती हैं। गांधीजी के स्वभाव में ही यह नहीं था कि वे किसी को दुखी अवस्था में देखें। वे चाहते थे कि समस्त ससार सुख की वंशी बजाए।

श्री बिस्मिल की निम्न पंक्तियां उपरोक्त बात को पुष्टी करती हैं:—

" भलाई सबकी हो जिससे, वो काम उसका है,
जहां भी जाओ वही एहतराम उसका है।
........किसी को देख ही सकता नहीं है मुशकिल में,
ये बात क्यों हैं कि रखता—है—दर्द वह दिल में।"

कितना सत्य लिखा गया है। गांधीजी दूसरों की अवस्था को अच्छी तरह से पहचानते थे। इसलिए हमेशा उन्होंने दूसरों के दुख दर्द को दूर करने का प्रयत्न किया था और वास्तव में श्री बिस्मिलजी ने यह यथार्थ ही लिखा है कि " भलाई सब की हो जिससे वो काम उसका है।"

गाधीजी को लेकर कवियों ने कल्पना की ऊँची ऊँची उड़ाने ली हैं। किसी ने गाधीजी को भगवान का अवतार माना है तो किसी ने भारत का सूर्य माना है। कुछ ने उसे देव रूप दिया है। श्री मोहनलाल 'कमल' ने भारत को पुष्प माना है तो गाधोजी को उसकी खुश्बू कहा है :—

भारत है अगर फूल तो यह उसकी है खुश्बू
है कौम अगर जिस्म तो फिर जान है गाधी।
ऐ अहले वतन कम नहीं कुछ शान हमारी
अफसाना—ए तहजीब का उनवान है गाधी।

'मेरा गाधी' नामक कविता मे श्री अवध किशोर प्रसाद 'कुश्ता' ने गांधीजी को एक विराट रूप में देखा है। श्री अवधजी को गाधीजी की हर एक चीज महान और विराट रूप मे लगती है। इसीलिए लिखा गया है:—

सुदर्शन चक्र सा जब अपना चरखा वो चलाता है,
जमाना क्या जमीं क्या चर्ख भी चक्कर मे आता है।
इसी ने मुल्क में सोराज का डका बजाया है,
जमाने की नजर मे देश का रुतबा बढाया है।
अहिंसक सत्याग्रही हिन्दवासी को बनाया है,
वतन की आबरु पर कौम को मरना सिखाया है।
है कहना "बुजदिली है तोप से गोली से डर जाना,
वतन के वास्ते जिन्दादिली है हँसते मर जाना।"

नि:सन्देह श्री मनोहरलाल 'शवनम' द्वारा कहे गये निम्न पद गाँधीजी के लिए कितने सत्य हैं :—

"आज ससार मे आई है गजब की आधी
किश्ती मझधार मे है और है तू माझी
हाथ में सत्य अहिंसा का है पतवार तेरे
जुल्म की लहरें कदम चूमेगी हर बार तेरे
.... गाव वालो को सही राह बताई तूने
दस्तकारी की जड़ें फिर से जमाई तूने।"

उपरोक्त कविता मे श्री शवनम ने गाँधीजी के सत्य, अहिंसा पर जोर दिया है साथ ही उसे ग्रामों का निर्माता भी माना है। श्री जगेश्वरप्रसाद 'खलिश' ने मानो अपनी कविता मे गाधीजी का

जीवन सार ही निश्चित कर दिया है। श्री खलिशजी गांधीजी की महत्ता को बताते हुए लिखते हैं :—

'सर झुकाये हुए दुनियाँ है वह सरदार है तू,
जिसमें सब लोग समां जाये वह संसार हैं तू,
कोई ऊँचां नजर आता है न नीचा तुझको
सेज कांटों की है फूलों का गलीचा तुझको।
शान झुक जाये तेरे सामने वह शान है तू,
देश मुर्दा है अगर जीती हुई जान है तू।"

'जिसमें सब लोग समा जाये वह संसार है तू' जैसी श्री खलिश की पंक्तियाँ कितनी हृदयस्पर्शी, मार्मिक एवं प्रभावशाली हैं।

उर्दू कवियों ने जिस जोश और उमंग से गांधीजी के प्रति अपने भाव प्रकट किये हैं वे वास्तव में बड़े ही मर्मस्पर्शी एवं प्रभावशाली हैं। गांधीजी का समस्त जीवन इन कविताओं में सूर्य के प्रकाश की भांति झलक रहा है। कवियों ने इन कविताओं में गांधीजी का अच्छा रूप निखारा है। गांधी जी सचमुच एक महान व्यक्ति थे। कवियों ने गांधीजी को वर्ग से हटकर देखा है और यही कारण है कि गांधीजी का वास्तविक रूप इन कविताओं में मिलता है। आने वाली पीढ़ियों के लिये ये कविताएं इतिहास बन कर रहेंगी। धन्य है वे सब ज्ञात और अज्ञात कवि जिन्होंने गांधीजी का गुणगान किया है। ऐसे महान व्यक्ति के प्रति जितना लिखा जाय उतना ही कम है। धन्य है भारत माँ, जिसको ऐसा सपूत मिला।

गांधी-स्मरण

गुलजारीलाल नन्दा

भारत की लम्बी कहानी का एक महत्वपूर्ण युग १९४८ में इस अभागे दिन (३० जनवरी) समाप्त हो गया। इस पवित्र देश में गांधीजी का मिशन तीन उज्जवल दशाब्दियों तक चालू रहा। यह काल भारत के आधुनिक इतिहास का सबसे अधिक गौरवमय और प्रभावशाली काल रहा है। गांधीजी के प्रेरक सस्पर्श से भारत के कोटि-कोटि नागरिकों के मन में नयी आस्था और नये साहस की ज्योति जग उठी थी। उन्होंने साधारण-सी मिट्टी में से वीरों की सृष्टि की और अपनी पीढ़ी के शव में एक नया जीवन फूंक दिया। स्वतन्त्रता आ गई थी और एक नया समाज बन रहा था; उसी समय नियति के

क्रूर हाथों ने उन दुष्ट शक्तियों के साथ षडयन्त्र करके गांधीजी के जीवन को समाप्त कर दिया जिनके विरुद्ध वे जीवन भर संघर्ष करते रहे थे। शायद महाकाल हमारी उन उपलब्धियों के प्रति ईर्ष्यालु हो उठा था जो हमने गांधीजी के मार्गदर्शन में की थी। उस अवसर पर नेहरु जी के ये शब्द— 'ज्योति बुझ गई है'—भारत तथा संसार के अन्य देशों के अरबों लोगों के हाहाकार बन गये।

गांधीजी तो चले गये मगर लोगों को यह सोचकर थोड़ा ढ़ाढस बंधा कि गांधीजी हमें स्वराज्य की मंजिल तक पहुंचा गये हैं और वे अपने पीछे स्वतन्त्रता—संग्राम के सेनानियों का एक भरा-पूरा जत्था छोड़ कर गये हैं जो उनके रिक्त स्थान की पूर्ति करेगा। लोगों के मन में यह आशा थी कि गांधीयुग के क्रांतिकारी प्रयोजनों की सिद्धि के लिए चेष्टा की जाएगी तथा उनकी महान परम्परा को नये युग के विहान में गति प्राप्त होगी। जनता का यह विश्वास बहुत सीमा तक सही निकला और नेहरुजी तथा उन के साथियों ने इस नयी चुनौती का सामना आश्चर्यजनक आत्मविश्वास, साहस और कुशलता के साथ किया।

लेकिन, गांधीजी के जाने के बाद जल्दी ही लोगों को ऐसा महसूस होने लगा कि एक ऐसा अभाव हमारे राष्ट्रीय जीवन में उत्पन्न हो गया है जिसे गांधीजी के हाथ ही भर सकते थे। दूरदर्शी लोग तो उस समय ही समझ गये थे पर आज तो वह बात सभी के सामने जाहिर है कि गांधीजी इस देश को एक अपूर्ण क्रांति की अवस्था में छोड़ गये। स्वतंत्र भारत की नयी योजनाओं और उसके कानूनों से वह क्रांति पूर्ण नहीं हो सकती थी। गांधी जी ने मनुष्यों और संस्थाओं के पुनर्निर्माण का जो कार्य आरम्भ किया था उसको आगे बढ़ाने की आवश्यकता थी जिससे कि वास्तविक लोकतंत्र की स्थापना और एक नयी समाज व्यवस्था के अभ्युदय के लिए अनिवार्य बुनियादी सामाजिक क्रांति सम्पन्न की जा सके।

महात्मा गांधी ने जो कुछ भी सोचा और किया उस सब के पीछे यह भूल भावना निहित थी कि देश के समस्त लोगों का भौतिक, आर्थिक और सामाजिक हित सधना चाहिए। सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से जो व्यक्ति जितना पिछड़ा हुआ है, हमारे चिन्तन और साधनों पर उसका उतना ही अधिक अधिकार है। गांधीजी की दृष्टि अन्त्योदय पर लगी थी। यही उनका सर्वोदय है। संसार में कोई

भी समाजवादी व्यवस्था ऐसी नही है जो सर्वोदय के समान समतावादी सामाजिक-सगठन का निर्माण कर सके। गाधीजी चाहते थे कि जनता स्वयं अपने अभिक्रम और आत्मनिर्भर-प्रयास से अपनी स्थिति को सुधारे तथा उस मे आवश्यक परिवर्तन करे। वे सोचते थे कि सरकार का गौण कार्य करना होगा, यानि यह कि जनता जिन भावनाओ को स्वीकार कर ले उन्हे सरकार कानून बनाकर क्रियान्वित करे। गाधी जी सत्ता और अधिकारो के केन्द्रीकरण को शका की निगाह से देखते थे, चाहे यह केन्द्रीकरण कितने ही थोड़े से लोगो के हाथो मे हो अथवा उसका स्वरुप कितना ही आकर्षक क्यो न हो वे उसे नापसद करते थे। ऐसा मानते थे कि सत्ता का प्राय. दुरुपयोग होने लगता है। आर्थिक और राजनैतिक दोनो ही क्षेत्रो मे उनके चिंतन का मूल आधार यही विचार था।

राजनीतिज्ञ तथा सभी स्तरो के सरकारी कार्यकर्ता जनता के सेवक हैं। उनको सेवक की तरह आचरण करना चाहिए। उन को जो वेतन मिलता है और जो सुविधायें दो जाती हैं उन सबका औचित्य केवल यही हो सकता हैं कि वे अपने-अपने कार्य को कुशलतापूर्वक करें। जिन लोगो के पास आम आदमी की अपेक्षा अधिक दौलत और प्रभाव हैं उन्हें उसका उपयोग जन-साधारण के ट्रस्टी की हैसियत से उनके हितो के लिए ही करना चाहिए। ट्रस्टीशिप के सिद्धांत के पीछे यह भावना निहित है कि जो लोग ट्रस्ट का उल्लघन करें यानी जनता की धरोहर का दुरुपयोग करें उनको दंड मिलना चाहिए। राष्ट्र के प्रत्येक कार्य और उसकी प्रत्येक नीति के निर्धारण मे जनता-उसकी प्रतिष्ठा, उसके हित और सरक्षण-को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। वे इस तरह सोचते थे कि स्वास्थ्य और कार्यकुशलता की दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति को पर्याप्त भौतिक-साधन उपलब्ध होने चाहिए, उसका उन पर अधिकार है। लेकिन गांधी जी की लोकहित की धारणा भौतिक-जीवन के परे तक जाती है और उसमें मानसिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक धरातल पर सब प्रकार की सच्ची-प्रसन्नता का समावेश होता है।

गाधी जी ने बहुत व्यापक पैमाने पर प्रयोग किये; वे अपने विचारो का परीक्षण अपने ही जीवन को प्रयोगशाला में करते थे। उन्हे जो कुछ भी अच्छा लगता वे उसे अपने देशवासियो के साथ बांट लेते। वे सदा सीखते रहे किन्तु वे एक महान गुरु भी थे। वे जीवन भर शारीरिक-स्वास्थ्य, मानसिक-क्षमता, बाल-शिक्षण, व्यक्ति और

समाज के नैतिक स्वास्थ्य और मनुष्य के आंतरिक-आध्यात्मिक-कल्याण की शिक्षा देते रहे।

गांधी जी द्रष्टा थे जिसके कारण वे केवल नेता नहीं रह गए थे। उन्हें यह बोध हो गया था कि मानवीय गुणों के विकास के सिवाय और कोई भी साधन समाज को उन्नत स्तरों तक नहीं ले जा सकता। गांधी जी सम्पूर्ण मनुष्य का चिंतन करते थे। वे मानवीय जीवन के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक—सभी पक्षों में अन्तर्निहित एकता के सूत्र को पहचानते थे। वे राष्ट्रीय कार्यक्रम का दर्शन राष्ट्र के समूचे जीवन के सदर्भ में करते थे।

उनके मन में यह आशंका थी कि यदि स्वराज्य के कुछ अनिवार्य पक्षों की उपेक्षा की गई तो वह सफल नहीं हो सकेगा। गांधीजी जिस स्वतन्त्रता को खोज रहे थे उसमें भारतीय जनता के हाथों में राजनीतिक-सत्ता का हस्तांतरण केवल एक पहलू था। वे यह चाहते थे कि नयी व्यवस्था प्रत्येक भारतीय नागरिक की मानवीय गरिमा और प्रतिष्ठा को समान एवं पूर्ण संरक्षण प्रदान करे। आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार परिवर्तित की जाये कि समाज से सब प्रकार का शोषण मिट सके, सबको न्याय मिले और प्रत्येक परिवार को सम्मानपूर्ण आजीविका। शिक्षा ऐसी हो जिससे कि नये भारत के प्रत्येक बालक और बालिका की समस्त शक्तियों का समुचित प्रशिक्षण और विकास हो सके और वे सच्चे स्त्री-पुरुष के रूप में विकसित होकर राष्ट्र के उत्तरदायी नागरिक बन सकें। क्या हमारे यहाँ यह सब हो सका है?

गांधीजी का लोकतन्त्र इन बुनियादी आधारों पर खड़ा किया जाना था। वे ऐसा मानते थे कि सत्ता चाहे जिस व्यक्ति के पास भी हो, उसका प्रयोग प्रामाणिकता, समर्पण-वृत्ति और त्याग की भावना के साथ करना चाहिए। गांधीजी स्वातंत्र्योत्तर काल में विकसित हमारी औद्योगिक-प्रगति से नाराज न होते मगर वे देश के भीतर बढ़ती हुई व्यापक बेरोजगारी पर अवश्य चिंता व्यक्त करते। जब उनके सामने इस बात के ढेर सारे प्रमाण रखे जाते कि एक ओर तो करोड़ों लोग कठिनाई और गरीबी का जीवन व्यतीत कर रहे हैं और दूसरी ओर कुछ लोग अवैधानिक साधनों का उपयोग कर के पल भर में लखपति बन जाते हैं तो निश्चय ही उनको बहुत गहरी वेदना होती। गांधीजी सोचते थे—स्वतन्त्र भारत में मद्य-निषेध के कार्यक्रम को प्राथमिकता मिलेगी। उन्हें मद्यनिषेध न होने पर

इतना कष्ट न होता जितना यह देख कर कि मद्यनिषेध को टालने के लिए किस तरह के ओछे हथकन्डे इस्तेमाल किये जा रहे हैं। भारत के संविधान में देश की जनता की ओर से बहुत श्रेष्ठ भावनायें व्यक्त की गई हैं परन्तु दुर्भाग्यवश हमारी वर्तमान व्यवस्था गाधीजी की कल्पना के स्वराज्य के विपरीत है। इस तथ्य से हमें एक राष्ट्र के रूप में अपने पतन और पिछड़ेपन का बोध हो सकता है। हमारे कल्याण का एक ही मार्ग है कि हम अपने इस पतन को महसूस करें तथा हम उस मार्ग पर लौट जायें जो गाधीजी ने भारत के प्रति महान् प्रेम और चिंतावश हमारे सामने रखा था। आज हम गाधीजी के जीवन, कार्य और उनकी मृत्यु की महत्ता से आलोकित ज्योतिर्पथ की ओर मुड़े; वह मार्ग हमारा आवाहन कर रहा है। हम में से प्रत्येक व्यक्ति को आज के दिन यह प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि गाधी जी ने जिस क्रांति का सूत्रपात किया था और जिस को सम्पन्न करते-करते वे हत्यारे की गोली का शिकार बन गए, हम उस क्रांति को आगे ले जायेंगे। वह क्रान्ति हमारे जीवन का प्रमुख ध्येय होगी और हम अपनी पीढी के जमाने में ही उस क्रान्ति को परिपूर्ण करेंगे।

●

जो राष्ट्र अमर्यादित त्याग और बलिदान करने की क्षमता रखता है, वही अमर्यादित ऊंचाई तक उठने की क्षमता रखता है। बलिदान जितना शुद्ध होगा, प्रगति उतनी ही अधिक तेज होगी।

—यंग इण्डिया

२५-८-२०
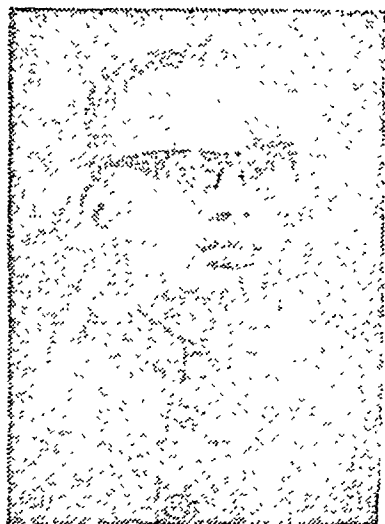
भोलानाथ मास्टर

गांधीजी के प्रेरणा-दायक पत्र

महात्मा जी के सम्बन्ध में जितना भी लिखा जाय थोड़ा है। क्योंकि वह एक ऐसी विलक्षण शक्ति थे, जिनकी अब कल्पना मात्र रह गई है। यद्यपि उनके जीवन काल में ही फ्रांस के प्रसिद्ध दार्शनिक श्री रोम्यां रोलां यह लिख चुके थे कि कुछ समय बाद लोग इस बात में विश्वास नहीं करेंगे कि हाड़-मांस का एक चलता फिरता पुतला यानी महात्मा गांधी जैसा इन्सान इस पृथ्वी पर पैदा हुआ था। आज यह बात सच प्रतीत होती है। महात्मा गांधी के चमत्कारिक कार्य व सिद्धान्त सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह के अमल में लोगों को अभी कठिनाई

आ रही है। स्वय कांग्रेस मैन भी उससे दूर हो रहे हैं। फिर आने वाली पीढियाँ कैसे विश्वास करेंगी कि इन सिद्धान्तो पर अमल करने वाला व्यक्ति इस ससार में अवतरित हुआ था।

मैं इतना छोटा कार्यकर्ता हूँ कि महात्मा जी के सम्बन्ध मे कुछ लिख सकने में अपने को असमर्थ पाता हूँ। मैं मानता हूँ कि सार्वजनिक जीवन मे कार्य करने की जो कुछ भी स्फूर्ति व शक्ति मै आज पाता हूँ, वह सब महात्मा जी के निकट सम्पर्क मे आने के कारण तथा उन्होने जो मुझे प्ररणा-दायक पत्र लिखे हैं, उन्ही से है। मैं इस सम्बन्ध में एक पत्र का हवाला देना चाहता हूँ, जो पूज्य महात्मा जी ने मुझे सेवा ग्राम से अपने स्वय के हाथ से ता० ३-११-४० को लिखा था। यह पत्र उन्होने उस समय लिखा था, जब कि तत्कालीन अलवर राज्य मे युद्ध कोप के लिए मारपीट कर चन्दा इकट्ठा किया जा रहा था। राज्य के समस्त कर्मचारी इसी कार्य मे लगे हुए थे। प्रजा-जन बहुत दुःखी थे। लोग रोजाना प्रजामंडल में शिकायत करने आते थे। पुलिस वाले भी चन्दा वसूली के लिए खूब पिटाई करते थे।

ऐसी दुखित अवस्था के समय मैंने महात्मा जी को पत्र लिखा कि हम लोग क्या करें? महात्मा जी उन्ही दिनो ऐसी शिकायतों को लेकर वाईसराय से मिलने जा रहे थे। मैंने अपने पत्र द्वारा उनसे निवेदन किया कि आप अलवर का उदाहरण भी वाईसराय के सामने रखें कि अलवर में युद्ध कोप के लिए धन-संग्रह करने में बडी ज्याद-तियां हो रही हैं। यद्यपि अलवर दिल्ली के पास है, फिर भी राज्य कर्मचारियों को कोई भय नही है।

भाई भोलानाथ,

इस पर मुझे उपरोक्त तारीख का निम्नलिखित पत्र मिला :—

आपका पत्र मिला। वहा की उपाधि मैं जानता हूँ। मैं नहीं जानता क्या हो सकता है? तजवीज तो कर रहा हू, लेकिन फल की कम आशा है। लोगों मे विरोध करने की शक्ति है तो विरोध अवश्य करें। ऐसा न समझा जाय कि ऐसी ज्यादतियों को वरदाश्त करने की मैं सलाह दे सकता हूं। लोग भले ही टूट जाय लेकिन बलात्कार के वश कभी न हों।

—वापू के आशीर्वाद

पत्र छोटा है लेकिन गूढ़ मंत्रों से भरपूर है। सत्याग्रह के लिए मूल-मंत्र है। बलात्कार के विरोध के लिए सक्रिय आह्वान है। कमजोरी को दूर करने के लिए शक्ति बटोरने की सलाह है।

आखिर हुआ भी ऐसा ही। महात्मा जी वाईसराय से मिलें। युद्ध के लिए सख्ती से चन्दा वसूल करने का उन्होंने विरोध किया। सख्तियाँ कम नहीं हुई। हमने अलवर में ऐसी सख्तियों का विरोध किया। मेरी अन्य साथियों के साथ भारत रक्षा कानून के मातहत गिरफ्तारी हुई। हथकड़ियाँ डालकर बाजार में घुमाया।

इस गिरफ्तारी का असर हुआ। पं० जवाहरलाल जी ने भी विरोध में तत्कालीन अलवर के मुख्य मंत्री को जो एक अंग्रेज थे पत्र लिखा, और युद्ध कोष के इकट्ठा करने में जो ज्यादती की जा रही थी वह बन्द हो गई।

जब शैतान स्वतन्त्रता, सभ्यता, संस्कृति और इसी प्रकार की अन्य शुभ वस्तुओं के संरक्षक का जामा पहन कर सामने आता है, तब वह अपने आपको इतना बलवान और विश्वसनीय बना लेता है कि उसका विरोध करना लगभग असंभव हो जाता है।

—यंग इण्डिया

११-७-२६

गांधी यहाँ है, इनकी निगाहों में
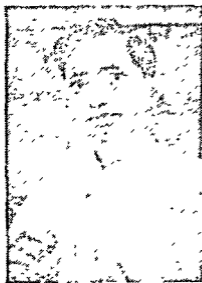
रामचन्द्र राही

छोटी छोटी बातो से भी मेरा मन प्रभावित होता है। कभी-कभी ऐसा लगता है कि मेरे अन्दर उदासी का कुहरा भर गया है, जैसे पहाड़ों पर बने मकानो में खिड़की खुलने पर भर जाता है। शायद इसीलिए मेरे मित्र मुझे भावुक और अव्यवहारिक बताते हैं। घर वाले तो यहाँ तक कह डालते हैं कि तुमको नाहक भगवान ने इस दुनिया मे भेज दिया। तुमको तो किसी और ही लोक में पैदा होना चाहिये था। कुछ समझदार माने जाने वाले लोग मौका मिलने पर सदुपदेश भी मुफ्त ही दे जाते हैं—'सारी दुनिया की चिन्ता करके

अपनी जिन्दगी क्यों बरवाद कर रहे हो ? होनहार युवक हो, दुनिया में रुपए पैसे की कमी नहीं है, कमी है सिर्फ उसे कमाने वाले बुद्धिमान लोगों की। भगवान की कृपा से अच्छी सेहत के साथ ही तेज बुद्धि भी मिली है, जमकर कमाओ, डटकर खाओ, दुनिया के मजे लूटो। यह जिन्दगी वार-वार नहीं मिलने वाली है।'

लेकिन इन सदुपदेशों को न जाने क्यों मेरा दिल कबूल नहीं कर पाता। सोचता हूँ, आदमी अपने लिये ही जिया, अपने सुख के लिए किया, तो क्या जिया और क्या किया ? और सुख भी क्या दुनिया में आज जो दर्द का दरिया उफन रहा है, उससे बचा रह सकेगा।

अव यही हड़ताल वाली वात ! मुझे शुरू में बहुत सहानुभूति थी इन हड़ताल करने वालों से। लेकिन जब से मिस्टर राजन के यहाँ से लौटा हूँ, तव से न जाने कहां से मन में यह सवाल कांटे की तरह चुभ गया है कि क्या यह देश उन्हीं का है जो अपनी मांगों के लिए देश की जिन्दगी को छिन्न-भिन्न कर सकते हैं ? अपनी मांग पूरी कराने के लिये हड़तालें करा सकते हैं, ईंट-पत्थर चलवा सकते हैं। उन करोड़ों-करोड़ गूंगे लोगों का भी इस देश में कोई स्थान है या नहीं, जो सदियों से इस धरती को अपने खून का पसीना बना कर सींचते आये हैं ? शासकों, सैनिकों और सभ्य माने जाने वाले समाज का पेट भरते आये हैं। जो आज भी गूंगे हैं, और रोज-रोज की बढ़ती हुई इन मांगों का वोझ स्वीकारते और ढोते चले जा रहे हैं। काश ! ये करोड़ों गूंगे लोग भी कभी एक साथ अपनी आवाज लगाते, देश के सामने अपनी मांगें रखते ! तव, शायद उस आवाज से देश का तिनका-तिनका सिहर उठता। लेकिन ऐसा कभी होगा ? कौन इन गूंगे लोगों को वाणी देगा ?

'हलो..........कहाँ जा रहे हो यार खोये-खोये से ? दिल्ली की सड़कों पर इस तरह दीवाना बनकर चलना ठीक नहीं, मेरे दोस्त ! कहीं टकरा गये तो मुश्किल होगी।' साइकिल की घण्टी की टन......टन और कृष्णकान्त की वेतकल्लुफ आवाज सुनकर मैं कुछ चौंक-सा जाता हूँ।

"अरे कृष्णकान्त ! कहाँ जा रहे हो इस जर्जर साइकिल को घसीटते हुए ?" मैं कुछ हल्का होकर पूछता हूँ।

'भई, आजकल एक नये हकीमजी के यहाँ चूरन बनाने की नौकरी कर रहा हूँ।'

'हकीम और चूरन? पागल तो नही हो गये? तुम्हे इससे क्या लेना देना...? वैसे कलाकार आधा पागल तो...।' कृष्णकान्त की बात पर मुझे हँसी आती है।

'बात कुछ पागलो वाली ही है दोस्त! लेकिन यहाँ फुटपाथ पर खड़े होकर नही ··चलो, चाय पिलाओ, यहाँ सामने वाले रेस्तराँ में बैठकर बताऊँगा।'

कृष्णकान्त की हमेशा की यही आदत है जब भी मिलेगा, उसकी एक ही फरमाइश होगी, 'यार चलो चाय पिलाओ।'

हम रेस्तरां में बैठ जाते हैं। चाय का आर्डर देने के बाद मैं कृष्णकान्त की ओर रुख करता हूँ।

'हाँ, तो जरा अपने नये हकीम और चूरन-चटनी वाली चटपटी बात तो बताओ, यह कौन-सा नया धंधा ढूंढ निकाला है?' मैं पूछता हूँ।

'बुरा न मानना यार, छोटा आदमी हूँ, बड़ों के बारे में कह रहा हूँ। लेकिन दिल मे जो पक रहा है उसे कहीं-न-कहीं तो उगलना ही पड़ेगा न?' कृष्णकान्त के चेहरे पर कुछ परेशानी के भाव दिखाई देते हैं।

कृष्णकान्त एक लोकप्रिय कलाकार है। उसके बनाये चित्र लोग बहुत पसन्द करते हैं। लेकिन चित्र बनाने के धन्धे से पूरे परिवार का पेट नही भरता। इसलिए एक अखबार में कार्टून बनाने की चार घंटे वाली नौकरी के बाद फुटकर काम तलाशता रहता है। बड़ी मिहनत से गृहस्थी की गाडी खीच पाता है।

'बात तो सुनाओ, कि पहेली बुझाते रहोगे?' मूल बात को जानने के लिए मैं जरा उतावला हो जाता हूँ।

'तुम जानते हो न, सन् १९६९ में देश-विदेश में गांधी-जन्म-शताब्दी मनाने की तैयारियाँ हो रही हैं।'

'हाँ, हो रही हैं। तो?

'मुझे विदेशो का नही पता, लेकिन इस देश में तो गांधी की हड्डियों को कूट-पीसकर, घिस-घिसाकर, भून-भानकर, चूरन-चटनी

की तरह बेच डालने की कोशिश चल रही है, अमरेश। बहुत तकलीफ हो रही है यह सब देखकर।'

'कृष्णकान्त, लगता है तुम अबतक आधे पागल थे, अब पूरे पागल हो गये हो। नहीं तो जो बात तुम कह रहे हो, भला एक सही दिमाग का आदमी उसे सोच भी सकता है ?'

'मुझ पर क्यों बिगड़ रहे हो, यार, जानते हो मिस्टर 'क' को ? है कोई वास्ता उनको जिन्दगी का गांधी से ? लेकिन आजकल वे गांधीजी की ही नीद सोते-जागते हैं। उनके लिए गांधी जन्म-शताब्दी का अर्थ है–सिर्फ एक लाख रुपये। समझे ?'

'और उसमें तुम्हें भी कुछ जूठन चाटने-चूटने को मिल जायेगा, इसीलिए इस धन्धे में तुम भी शरीक हो गये हो, है न ?'

'यही तो मेरी बेचेनी हैं, अमरेश कि पेट के लिए यह भी करना पड़ रहा है।' कृष्णकान्त दुखी होकर कहता है।

'लेकिन किसी एक व्यक्ति को लेकर तुम पूरे जन्म-शताब्दी के काम पर कीचड़ उछालो, यह तो ठीक नहीं है। और फिर आदमी बदलता भी तो है, कौन जाने मिस्टर 'क' के जीवन में एक नया मोड़ आ रहा हो, और गांधीजी का प्रभाव उन पर पड़ रहा हो। यह क्यों नहीं सोचते कि एक गलत आदमो सुधर रहा है, गाँधीजो के विचारों का प्रचार करने में जुटा है। मैं कृष्णकान्त को समझाने की कोशिश करता हूं।

जिन मिस्टर 'क' की बात कृष्णकान्त कर रहा है, उन सज्जन से मैं भी परिचित हूँ। चालू किस्म के आदमी हैं। अवसर कभी चूकते नहीं, हर हालत में कुछ व्यापारिक लाभ उठा ही लेते हैं। उनके लिये यह कठिन नहीं है कि गाँधीजी को जन्मशताब्दी मनाये जाने वाले अवसर का भी कुछ सदुपयोग कर लें। लेकिन यह कृष्णकान्त जरा जल्दी हो किसो के बारे में राय बना लेता है। और एक बार जब राय बना लेता है तो नीचे से नीचे स्तर तक जाने में उसे देर नहीं लगती, इसलिए मैं उसकी बातों को बहुत महत्व नहीं देता हूं।

'गांधीजी के विचार-प्रचार में नहीं जुटा है। वह जुटा है गाँधी जी की भावना का व्यापार करने में। गाँधी छाप कैलैण्डर बनाओ और बाँटो, कागज दबाने वाले पत्थर और शीशे (पेपरवेट) पर गांधी जी का चित्र बना कर बेचो, कलम और पेंसिल पर गांधीजी का नाम

लिख कर बेचो, गाधी छाप दियासलाई का कारखाना खोलो, यह सब धधे हैं उसके आजकल। क्या इसी से गाधीजी का विचार फलेगा, गाधीजी की आत्मा अमर रहेगी? मेरी सिखावन पर कृष्णकान्त झल्ला उठता है।

चाय हमारी धरी-धरी ठडी हो गई है। बातों की गर्मी कुछ बढ गयी है।

"अमरेश, गुलाम भारत ने आजादी की भोर में एक नई जिंदगी का, नए समाज का, नए देश का सपना देखा था। सरल हृदय वाले लोगों ने मान लिया था कि भोर का देखा हुआ सपना सच होता है। लेकिन क्या तुम नही देखते कि वह सपना टूट गया··· सच नही हो सका? गुलामी की अधेरी रातो में चांद बनकर जिस गाधी जी ने रोशनी दिखायी थी, वह चला गया। अब कौन है जो वह रोशनी दे और उस रोशनी के साथ एक नई चेतना पैदा करने वाली शीतलता दे?" कृष्णकात बहुत भावुक हो उठा है। उसकी आखो से उसके दिल का दर्द झांक रहा है।

"ठीक कहते हो अमरेश, गाधीजी ने इस देश का एक बड़ा आकार सबकी आखो के सामने सजीव रूप में खड़ा कर दिया था। देश का एक-एक आदमी इस बड़े देश की महान आत्मा का अंश बन गया था। लगता था कि सबके सब महान हो गये हैं, लेकिन आज ऐसा नहीं रहा। इस देश के नेता और समझदार कहे जाने वाले नागरिक बौने हो गए हैं। देश के बडे और विशाल भवन को छोड़ कर अपने-अपने घरोंदो में सिमट गए हैं। संकुचित स्वार्थों के हमारे ये घरौंदे आपस मे टकरा रहे हैं और टूट-टूट कर लगातार छोटे होते जा रहे हैं। पूरे देश के जीवन में टूटने का ही सिलसिला चल रहा है। ऐसा लगता है कि भारतवासी अब आपस मे जुडना सदा-सदा के लिए भूल ही जायेंगे। सच है कि ऐसी घड़ी में गांधी जी की प्रतिमा नहीं, गांधी की आत्मा की जरूरत है। उनके विचारों की दिशा में आगे बढ कर नए मनुष्य, नए समाज और नए देश को बनाने की बुनियाद डालने की जरूरत है।······ लेकिन यह कैसे होगा? कौन कर सकता है उसे?"

... ...

पत्रकारों की जिन्दगी हवा पर डोलती फिरती है। उसमे कही स्थिरता नही होती। इस क्षण यहाँ, तो उस क्षण वहाँ। खबरों के

पीछे भागने-फिरने में एक विशेष प्रकार का मजा आता है, यह बात सही है, लेकिन कभी-कभी जब तबियत थक जाती है तो इस जिन्दगी से ऊब भी होने लगती है।

उठते ही दफ्तर से साहब का फोन आया कि विहार के पूर्णिया जिले में नक्सलवाड़ी जैसी कुछ हरकतें अब भी हो रहीं है। वहाँ जाकर रिपोर्ट लानी है। मुझे जरा भी इच्छा नहीं थी कि यात्रा में निकलूं, लेकिन नौकरी करता हूं, तो चाहे-अनचाहे साहब का हुक्म तो मानना फर्ज है। इसलिए निकल पड़ा, असम मेल छूटने में सिर्फ ४५ मिनट की देर थी। टैक्सी वाले को और जल्दी, और तेज गाड़ी चलाने के लिए लगातार कहता जा रहा था। अचानक चाँदनी चौक के चौराहे पर आकर गाड़ी झटके से रुक गई। टैक्सी-ड्राईवर सरदार रास्ते पर खड़ी भीड़ को एक भद्दी-सी गाली देते हुए उतर पड़े। भीड़ में से किसी के फूट-फूट कर रोने की आवाज सुनाई पड़ी। सरदार जी को पुकारना चाहता हूँ कि कहीं गाड़ी न छूट जाय। लेकिन रुलाई की आवाज में इतना दर्द है कि मैं खुद भी उतर पड़ता हूँ। भीड़ में घुस कर देखता हूँ—"तीस पेंतीस साल की एक औरत लगभग 'नंगी' बैठी है। तन पर चिथड़ा झूल रहा है। लेकिन उसमें तन ढकने की सामर्थ्य बिल्कुल नहीं है। दोनों घुटनों को अपनी कम-जोर-सी बाहों में कसे हुए है और घुटनों में ही अपना मुंह भी गड़ाये हुए है। छाती से अलमूनियम का एक अध टूटा उजला-काला कटोरा चिपकाये है। धूल सने उलझे बाल बेतरतीबी से बिखरे हुए हैं। लगता है कि उसके रोम-रोम से पसीना नहीं आंसू बह रहा है। रह-रहकर उसका पूरा तन कांप उठता है।

उसकी रुलाई की करुण आवाज और सामने का वह दृश्य मेरे तन-मन में एक सिहरन पैदा कर देते हैं। सोचता हूं कि इस मामले की कुछ जानकारी लूं या कम-से-कम एक फोटो ही……कि तभी सरदार जी की आवाज सुनाई देती है :

"आइए बाबूजी, नहीं तो गाड़ी छूट जायेगी।" और मैं भाग कर टैक्सी में बैठ जाता हूं। टैक्सी तेजी से दौड़ पड़ती है। स्टेशन पहुँच कर किसी प्रकार आसाम मेल पकड़ लेता हूं। गाड़ी का डीजल इंजन थर्राती आवाज में और कभी-कभी तीखी आवाज में चीखता हुआ बहुत ही तेज गति से भाग रहा है। गाड़ी में सवार होकर म महसूस करता हूं कि दिल्ली पीछे छूट रही है, चांदनी चौक पहले ही

पीछे छूट चुका है। ऐसा लगता है कि उस औरत की रुलाई अब भी मेरा पीछा कर रही है। टैक्सी की तेज गति उस दर्द-भरी आवाज को पीछे नहीं छोड सकी। असम मेल की टैक्सी से भी तेज रफ्तार उस रुलाई से अपना पीछा नहीं छुड़ा पा रही है.......।

× × ×

मेरे पूर्णिया आने का कारण जानकर अविनाश कहता है :

"यार, ये नक्सलवाडी बातें तो बासी पड गयी, चलो तुम्हें एक नई चीज दिखाता हूं।" अविनाश मेरा विद्यार्थी जीवन का साथी है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय मे हम दोनो एक ही साथ पाच साल तक छात्रावास में रहे हैं। वह पूर्णिया के एक अच्छे जमींदार का लडका है, एल० एल० बी० करने के बाद पैसे को जगह प्रतिष्ठा कमाने पर तुला है। इसीलिए उसे समाज सेवा की धुन लगी है। यह खबर मुझे काफी पहले ही मिल चुकी थी, लेकिन कटिहार में उससे इस तरह अचानक मुलाकात हो जायेगी, यह आशा न थी।

मैं अविनाश के साथ चल पड़ता हूँ कटिहार से भवानीपुर तक पक्की सड़क है। यहां तक जीप से आते हैं। भवानीपुर से पांच मील बैलगाडी पर और उसके बाद तीन-चार मील पैदल।

"ये भी भारत है।" अविनाश कहता है।

"तो मैं कहता हूँ कि चीन है लेकिन इस घोर देहात में मुझे घसीटने से तुम्हें क्या मिला? मेरी तो पाव की नसें तन गयी हैं, अब चला नही जाता।" मैं थककर और उससे भी अधिक ऊबकर जवाब देता हूँ। कहाँ दिल्ली की भागती भीड़ और कहाँ इस घोर देहात का जकड़ता हुआ स्तब्ध सूनापन।

"इसी बूते पर पत्रकारिता करने चले हो, और ऊपर से नयेपन का दावा भी करते हो! जनाब, दिल्ली इन्ही गावो से रस खीचकर जी रही है। ये गाँव न रहें तुम्हारी दिल्ली तो भीगी बिल्ली बन जाय।"

अविनाश कुछ मजाक और व्यग करके थकान मिटाने की कोशिश करता है।

हम गाव के करीब पहुँच रहे हैं। एक बुढिया माथे पर पटसन का बोझ लिए गांव की ओर जा रही है। अविनाश को देखते ही कहती है, 'परनाम सरकार।' इधर 'परनाम सरकार' 'परनाम हजूर'

'परनाम मालिक' कहने का रिवाज है। जवाब में लोग 'परनाम परनाम' दो बार बोलते हैं।

अविनाश बुढ़िया से पूछता है :

"रामउजागर चौधरी गांव पर हैं ?

" जी हाँ, मालिक हैं। " बुढ़िया धीमी आवाज में कहती है और हमारे साथ हो लेती है।

हम लोग गाँव के करीब आ गये हैं। 'डग-डग डम-डम डग-डग......डम-डम......' जैसी आवाज सुनाई पड़ती है।

"क्या गाँव में कोई नाच तमाशा हो रहा है ? यह वाजा कैसा वज रहा है ?" मैं जिज्ञासा से पूछता हूँ। बुढ़िया हंस पड़ती है।

"नाच तमाशा नैं मालिक, पंचैती के डुग्गी बजै छी। " बुढ़िया अपनी बोली में कहती है, जिसे अविनाश मुझे खड़ी बोली में समझाता है-'नाच-तमाशा नहीं मालिक, पंचायत की डुग्गी वज रही है।'

"कैसी पंचायत ?" मेरे इस प्रश्न का जवाब देते हुए अविनाश कहता है :

"अव जव गांव में पहुँच ही रहे हो, तो धीरे-धीरे सव मालूम हो जायेगा, होगी गांव की सभा किसी समस्या पर विचार करने के लिए। वहुत सी वड़ी वड़ी और वड़े वड़े लोगों की सभाओं में रिपोर्ट लेने गये हो, आज इस छोटे से गांव की एक छोटी सी सभा भी देख लो। भारत की संसद के अधिवेशनों में चोटी के नेताओं के भाषण सुने हो, देश और दुनिया के सवालों पर उनकी वहसें और झड़पें देख सुन चुके हो, आज इन निपट गंवार लोगों की ग्राम संसद (Village Parliament) भी देख लो।"

हम रामउजागर चौधरी के दरवाजे पर पहुँच गये हैं। वांस और घास फूस के वने झोपड़ों का ही यह पूरा गाँव है। अविनाश ने ठीक ही वताया था कि पूर्णिया के गांवों में आमतौर पर घास-फूस के ही मकान वनते हैं।

दरवाजे पर वांस की वनी एक मचान पर हम जाकर वैठ जाते हैं। हवा में नमी है। थक्कर चूर हो गया हूँ। इस लिए थोड़ी देर वैठने के वाद लेट जाता हूँ झपकी-सी आने लगती है।

" भूख न जाने बासी भात, नींद न जाने टूटी खाट।" अविनाश शायद मुझे झपकी लेते देखकर कहता है।

कुछ देर में झोपडे से एक अधेड़ सज्जन बाहर आते हैं। 'परनाम परनाम' का अभिवादन होता है। जरा देर बैठकर कुशल समाचार पूछते है, और फिर झोपडे के अन्दर चले जाते हैं।

मचान पर लेटे-लेटे मुझको याद आता है मजदूर नेता मिस्टर राजन् के ड्राईंग रूम का सोफासेट, जिसकी मुलायमियत मे आदमी बैठते ही धस जाता है। और यहा मैं एक भूमि के मालिक, वोट के मालिक और नेताओं के भाषणो के अनुसार "देश के मालिक" किसान के दरवाजे पर लेटा हूँ। जहा मचान मे लगे बास के फट्टे मेरी पीठ में धसते जा रहे हैं।

"लीजिए, जलखै कर लीजिए।" रामउजागर चौधरी कासे के एक कटोरे मे चूडा गुड लाकर रखते हैं, पीतल के चमकते लोटे मे जल भी है। अविनाश ने शायद मेरे बारे मे बता दिया है कि मैं दिल्ली से आया हू।

"धन्न भाग सुदामा के घर सिरी किशुन जी पधारे। हम गरीब लोग का पास अउर का है कि स्वागत करें श्रीमान जी का। चाह वाह तो यहा मिलती नही। थोडी देर मे भैंस दहेगी तो थोड़ा गरम-गरम दूध...... !" बहुत ही सकोच के साथ चौधरी जी अपनी भावना जाहिर करते हैं।

अचानक मैं महसूस करता हूं कि मेरी आँखें गीली हो गई हैं। कोई पहले का परिचय नही, कोई रिश्ता-नाता नही गाव में आये तो भावना का सागर उमड़ पड़ा। भारत के पिछडे हुए एक गाँव का गवार है यह, भारत की भावना का निर्मल प्रवाह। कहां दिल्ली के पैसे वाले रिश्ते नाते और कहाँ यह हृदय का प्रेमभाव।

मेरी इच्छा होती है यह कहने की कि—"हम कृष्ण नही, राह भटके कौरव हैं मेरे भाई।" लेकिन कह नही पाता। उठ कर हाथ-मुंह धोता हूं, और चूडा चबाने लगता हूं।

+ + +

रात को कलोथान के नीचे पंचैती होती है। थोडा-सा धान का पुआल बिखेर दिया है। एक लालटेन नीम के पेड की निचली

टहनी में लटका दी गयी है, जिससे वहुत ही मद्धिम रोशनी फैल रही है।

"पंचैती' की चर्चा का विषय है कि हाल ही में विधवा हुई निपूतीन अभागिन रधिया का दाना-पानी कैसे चले ? मरद जंदा था तो कमाकर खिलाता था, अब उसको सहारा कौन देगा ? रधिया के दोनों पाँव में गठिया है, इसलिए चल-फिर कर कमाई नहीं कर सकती है।

वहुत देर तक तर्क-वितर्क होता है, और अन्त में सव लोग मिल-कर तय करते है कि रधिया इस गांव की वेवा है, अभागिन है तो क्या हुआ, गांव की इज्जत है। इसलिए गांव उसकी जिम्मेदारी लेगा। 'ग्रामकोष' से उसे खोराकी दो जायगो। मुझे याद आती है। चांदनी चौक के चौराहे वाली नंगी औरत, उसकी रुलाई, और तमाशा देखने वाली भीड़।

+ × ×

"यह ग्रामकोष क्या है ?" मैं अविनाश से पूछता हूं।

"अभी तक तो तुमको इस गांव के वारे में कुछ वताया ही नहीं था, अमरेश लेकिन अव वह मौका आ गया है, कि तुम्हें यहाँ लाने का असल मकसद वताऊं।"

"तो क्या इसके पीछे कोई राज छिपा हुआ है ?" मैं पूछता हूं।

"वात यह है कि यह गाँव ग्रामदानी है। मै तुम्हें इसीलिए लाया हूं कि आंखों से देखो और तव दिमाग से समझो। मैं जानता हूं कि वुद्धिवालों को सुनकर इस वात पर यकीन नहीं होता कि जो यहाँ चल रहा है, वह वास्तविक है।

"ग्रामदानी यानी क्या ? तुम्हें इन लोगों ने अपने गांव का दान कर दिया है ?"

"मेरे भोले भाई, यही तुम्हारे लिए राज है। दिल्ली वाले गांव के दिल को क्या समझेंगे ? ग्रामदान एक नया गांव वनाने का आंदो-लन है, जिसे गांधी के शिष्य विनोवा जी चला रहे हैं।

"तुम हैरत में पड़ जाओगे अमरेश यह सुनकर कि इस गांव के सव लोगों ने गैर-सरकारी ग्राम सभा वना कर उसे अपनी-अपनी जमीन की मिल्कियत सौंप दी है। हर जमीन वाले ने अपनी जमीन

का ५ प्रतिशत भाग वेजमीन वालो को बाँट दिया है। हर किसान अपनी फसल में से चालीसवा और, हर मजदूर अपनी मजदूरी मे से तीसवां हिस्सा निकाल कर एक जगह जमा करते हैं, जिसे ग्रामकोष कहते हैं। रधिया को 'खोराकी' देने की जो व्यवस्था हुई, वह इसी ग्रामकोष में से।" अविनाश पूरी बात समझाता है।

मुझे बहुत ही कौतूहल हो रहा है। क्या यह सच है? मैं गाव वालो से तरह-तरह के सवाल पूछता हू।

एक नवजवान मेरे एक सवाल का जवाब देते हुए कहता है:

"गाव की मालिकी न बनायें तो अलग-अलग रह कर भिखारी बनें?" अलग-अलग मालिकी रखने पर सारी जमीन तो साहूकार हड़प लेता है, कर्ज के सूद मे ही। सुना है कि कम्युनिस्टो का राज होगा तो सारी जमीन सरकार छीन लेगी। इस सबसे ता अच्छा है कि जमीन का मालिक गाव-समाज ही रहे, उसमें तो आखिर हम ही लोग हैं न?"

"सब काम एक राय होकर करोगे? झगड़े नहीं होगे?"

"होंगे नहीं तो क्या हम सब देवता बन गए हैं, लेकिन जब साथ-मरना जीना है, तो मिलकर रहने और सबकी राय से काम करने मे ही तो सबकी भलाई है।" एक अधेड़ आदमी मेरे दूसरे सवाल का जवाब देता है।

"आप लोग अपनी जरूरतो को पूरी करने के लिए सरकार के सामने अपनी माँग क्यो नहीं रखते?"

"सरकार के भरोसे बैठे-बैठे बहुत झक मार लिया गया साहब! नेता लोगो को कहाँ फुर्सत है अपने लड़ाई झगड़े से। अब तो हमने तय कर लिया है कि : "कर बहियाँ बल आपनो, छाडि बिरानी आस।" रामउजागर चौधरी जवाब देते हैं।

समाजवाद के नारे बहुत सुन चुका हूं, लोकतन्त्र की गाथा गाते-गाते मैं खुद ही नही अघाता। लेकिन सब हवाई बातें लगती हैं यहाँ आकर।

यह तय है कि जो कुछ आँखों के सामने से गुजर रहा है, वह नही गुजरा होता तो अविनाश की इस बात को मै गप्प कह कर उड़ा देता, लेकिन बुद्धि जिसे सम्भव मानने को तैयार नही होती, आँखें उसे तथ्य मानने को मजबूर कर रही हैं। लगता है कि भारतीय

समाजवाद और वास्तविक लोकतन्त्र की शुरूआत तो यहीं से होगी, गाँवों से·······नेताओं से नहीं, दिल्ली से नहीं।

\+ + +

पंचैती समाप्त हो गई है। लोग अपने-अपने घर जाकर खा-पीकर शायद सो गए हैं। मैं और अविनाशी उसी मकान पर सोये हुये हैं।

मुझे याद आती है दिल्ली की केन्द्रीय कर्मचारियों की हड़ताल ······उनको कम से कम २०० रुपए माहवारी तनख्वाह की माँग··· मजदूर नेता का जीवन-स्तर वाली बात····· गांधीजी की भावना का व्यापार और चाँदनी चौक की रोती कलपती नंगी देह। कितने जीवन-स्तर हैं इस देश में ? कहाँ से शुरू होगी उसमें तरक्की ? ··· चाँदनी चौक वाली नंगी औरत के स्तर से·········इस गाँव की वेवा औरत राधिया के और गरीब ग्रामीणों के स्तर से या केन्द्रीय सरकार के बाबुओं के स्तर से ? शायद गांधी ने इसे समझा था। शायद उसकी लंगोटी के पीछे यही राज है कि इस देश के जीवन स्तर को ऊपर उठाना है। तो शुरूआत यहाँ से करनी होगी, भारत के इन गाँवों से।

पंचैती में मैंने एक वूढ़े सज्जन से पूछा कि आपने गांधीजी का नाम सुना है।

"दर्शन किया है, भाषण सुना है। दो साल पहले ही तो भवानीपुर आये।" उसने जवाब दिया था।

"दो साल पहले।" मैं चौंक उठा था। तब अविनाश ने समझाया था कि "दो साल पहले विनोवा आये थे" गाँव के अधिकतर लोग उन्हें ही गाँधी समझते हैं।

ये गाँव वाले विनोवा को गाँधी के ही रूप में देखते हैं, मैं तो इन गाँव वालों में ही गांधी का दर्शन कर रहा हूं।

आकाश में तारे झिलमिला रहे हैं। लगता है इस धरती पर विखरी हुए सत्ता, सम्पत्ति और आज की सभ्यता के पैमाने के अनुसार पिछड़े हुए सीधे-सरल लोगों में गाँधी का अंश इन सितारों की तरह चमक रहा है। गाँधी के विचारों की वुनियाद पर इन गाँवों में भारत का भविष्य गढ़ा जा रहा है।

मेरे जीवन विकास में गांधीजी का योग
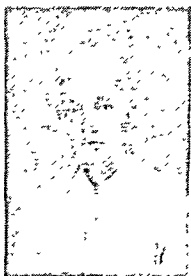
मूलचन्द अग्रवाल

मैं मध्य-भारत के सरकारी स्कूल मे शिक्षक का काम कर रहा था। इसी अर्से में मैंने हिन्दी 'नवजीवन' पढना प्रारम्भ किया। गाधीजी के लेखो को पढने से मेरे मन मे सरकारी नौकरी से विरक्ति उत्पन्न हुई और राजनीतिक क्षेत्र में काम करने की इच्छा जाग्रत हुई। मैं हरिभाऊजी उपाध्याय से मिला। उस समय वह राजस्थान में चरखा संघ का काम करते थे। मेरी इच्छा राष्ट्रीय शिक्षा के क्षेत्र में काम करने की थी। किन्तु इसके लिए उपयुक्त क्षेत्र नजर न आया।

हरिभाऊजी ने सुझाया कि मैं खादी का काम करते हुए भी शिक्षा का काम कर सकूँगा। अतः मैं राजकीय नौकरी से त्यागपत्र देकर सन् १९२६ के अन्त में राजस्थान चरखा संघ में चला आया और खादी का काम प्रारम्भ कर दिया। जब मैंने अपने इस निश्चय की सूचना बापूजी को पत्र द्वारा दी तो उन्होंने मुझे लिखा कि खादी को अपना केन्द्र बना कर विद्यादान भी उसी के मारफत देने का मेरा निश्चय उन्हें बहुत ही प्रिय है।

कुछ महीने राजस्थान चरखा संघ के अमरसर और गोविन्दगढ़ उत्पत्ति केन्द्रों पर काम करने के बाद मैंने गांधीजी को लिखा कि अगर चरखा संघ पर्याप्त रकम और उत्पादित खादी की बिक्री की व्यवस्था कर सके तो राजस्थान में खादी का बड़े पैमाने पर उत्पादन हो सकता है। गाँधीजी ने अपने १८-५-२७ के पत्र द्वारा मुझे इस बात के लिये धन्यवाद दिया कि मैंने खादी का काम प्रारंभ कर दिया है। उस समय गांधीजी बीमार थे और नन्दीदुर्ग (मैसूर) में थे। जमनालालजी उस समय चरखा संघ का काम देखते थे। गांधीजी ने लिखा कि राजस्थान में खादी कार्य की सम्भावनाओं के बारे में मेरा पत्र वह जमनालालजी को दे देंगे।

मैंने जनवरी सन् १९२८ के शुरू में गांधीजी को एक पत्र लिखा कि राजपूताना में जहां खादी का कार्य चल रहा है, वहाँ ग्राम संगठन की दृष्टि से शिक्षा प्रसार, सामाजिक कुरीति-निवारण, अस्पृश्यता-निवारण और ऊँच-नीच के भावों को मिटाने का काम भी करना चाहते हैं। मैंने उसी पत्र में गांधीजी से यह भी पूछा था कि यदि इन कामों में राज्य की ओर से रुकावट डाली जाय तो कार्यकर्ताओं को क्या करना चाहिये। गांधीजी ने अपने ७ जनवरी १९२८ के पत्र में मुझे सूचित किया कि चरखा संघ में कार्य करने में उनकी दृष्टि से कोई हानि नहीं है। उन्होंने यह भी आशा प्रकट की थी कि सामाजिक काम करने में देशी राज्य बाधा नहीं डालेंगे। किन्तु यदि डालें तो उस समय की परिस्थिति में उन सामाजिक कामों को छोड़ना पड़ सकता है।

राजस्थान चरखा संघ की ओर से रींगस में वस्त्र स्वावलम्बन का केन्द्र स्थापित किया गया और मुझे उस केन्द्र का संचालक नियुक्त किया गया। इस केन्द्र के द्वारा हम लोगों से घर में सूत कात कर

अपनी आवश्यकता के लायक कपड़ा बुनवाने को कहते थे। आस-पास के गावो मे पाठशालायें खोल कर उनमें कताई, पिंजाई की भी शिक्षा देते थे। रींगस के आसपास तीन-तीन कोस तक हमारा कार्य क्षेत्र था। एक बात मुझे चुभ रही थी। मैंने गाधीजी को लिखा कि यदि कोई व्यक्ति एक ऐसे व्यक्ति के अधीन काम करने को रख दिया जाय जिससे वह योग्यता, अनुभव, अवस्था और कार्य करने की शक्ति मे किसी भी प्रकार कम न हो, तो उसे क्या करना चाहिये। इस बारे मे गाधीजी ने मुझे लिखा कि जो दूसरों के अधीन काम करता है वह यदि सचमुच अपने वरिष्ठ अधिकारी से ज्यादा योग्य है, तो वरिष्ठ अधिकारी उसकी योग्यता को पहचान लेगा। गाधीजी ने सलाह दी कि अधीन व्यक्ति मे पूर्ण नम्रता और धैर्य होना चाहिए।

× × × ×

मैंने, एक बार गाधीजी के सम्मुख अपनी एक दुविधा उपस्थित की और यह जानना चाहा कि शारीरिक श्रम मे जबान और कलम के काम का भी समावेश हो सकता है अथवा नही। मैं यह मानता था कि लेख लिखने और भाषण देने से अधिक उपयोगी लोकसेवा हो सकती है। इस संबंध मे गाधीजी ने मुझे यह उत्तर दिया था:—

"जबान और कलम के काम को शारीरिक श्रम न माना जाय, शारीरिक श्रम से हाथ-पाव की मेहनत अधिक अभिप्रेत है। लोग काश्तकारी न करें और भूखो मरें, तब दिमाग क्या करेगा? उस समय तो जो थोडी-सी भी खेती करेगा वही अन्नदाता बनेगा। जब घर जलता है तब व्याख्यान क्या करेगा? उस समय तो पानी खींच कर आग बुझाना होगा। इसका मतलब यह नही कि दिमागी काम का उपयोग ही नही है। दिमागी काम भी उसी का सिद्ध होगा जो शारीरिक यज्ञ की महिमा जानता और करता है। दोनों साथ-साथ चलना चाहिये। मोटा सिद्धान्त यह है कि आजीविका शरीर-श्रम से पैदा करें और दिमाग केवल सेवा के लिए खर्च करें। आश्रम की स्थापना इसी हेतु से हुई है।"

× × × ×

मैं जब-तब अपनी कठिनाइयां गांधीजी के सामने लिखता रहता था। मैंने उनसे पूछा कि क्रोध को कैसे कम करना चाहिये इस पर गांधी जी ने मुझे सलाह दी कि क्रोध को मारने के लिये नित्य

राम-नाम जपना चाहिये और क्रोध आवे ऐसे स्थान से हट जाना चाहिये ।

× × × ×

मै जयपुर रियासत के रींगस कस्वे में जव खादी कार्य कर रहा था तव सीकर ठिकाने के खुडी ग्राम में जाटों व राजपूतों में झगड़ा हो गया । झगड़े का कारण यह था कि राजपूतों ने एक विवाह के अवसर पर एक जाट दूल्हे के घोड़े पर सवार होने पर आपत्ति की थी । सामाजिक कार्यकर्ता होने के नाते मैं इस घटना की जांच के लिये घटनास्थल पर गया । इस पर चिढ़ कर जयपुर रियासत की प्रशासनिक कौन्सिल ने ११-४-३५ को जयपुर राज्य से मुझे कुछ अन्य मित्रों के साथ निर्वासित कर दिया । मैंने इस वारे में पत्र लिखकर गांधीजी से मार्ग-दर्शन चाहा । उस समय गांधीजी हिन्दी साहित्य सम्मेलन में भाग लेने इन्दौर आये हुये थे । उन्होंने मुझे सलाह दी कि फिलहाल निर्वासन आज्ञा को वर्दाश्त करना होगा । हां, रियासत को न्याय करने के लिये लिखने की सलाह भी उन्होंने दी । सेठ जमनालालजी वजाज ने भी रियासत के इन्स्पैक्टर जनरल पुलिस मिस्टर यंग से पत्र व्यवहार किया और अन्त में फरवरी सन् १९३६ में मेरे विषय में निर्वासन की आज्ञा रद्द करदी गई ।

× × × ×

मैंने अपनी कौटुम्बिक समस्या गाँधीजी के सामने प्रस्तुत की । यह समस्या मेरे तथा पत्नी के विचारों में साम्य नहीं होने के कारण उठ खड़ी हुई थी । इस संबंध में गांधीजी ने मुझे लिखा "तुम्हारा किस्सा करुण है, लेकिन उसी को धर्मवर्द्धक वना सकते हो । करुणा धर्म की पोषक है । धर्म की परीक्षा भी कठिन समय में ही हो सकती है । पत्नी जव पति की अनुगामिनी नहीं रहती है,तव सहधर्मिणी तो कहाँ रह सकती है । विधर्मिणी वनने का उसको अधिकार है, जैसा पति को है । लेकिन जव पत्नी विधर्मिणी वनती है तव पति के सहयोग अथवा सहवास की आशा नहीं रख सकती । पति की तरफ से पोषण प्राप्त करने का उसे पूर्ण अधिकार है । जो पति अपनी पत्नी के प्रति निर्विकार रह सकता है और अन्य स्त्रियों के प्रति निर्विकार रहा है, और भविष्य में रह सकता है, उसको अपनी

पत्नी का सहवास छोड़ने का ऐसे अवसर पर अधिकार है। इसमें रोष का स्थान नहीं है।"

× × × ×

रीगस में हमने वस्त्र-स्वावलम्बन की दृष्टि से एक सम्मेलन आयोजित किया, उसकी सफलता के लिए गाधीजी ने लखनऊ से एक तार-सदेश भेजा। उसमें उन्होने लिखा था कि हाथ-कताई से स्वराज्य मिल सकता है। इसी प्रकार रीगस में ही सन् १९३४ के आखिर में हम लोगों ने एक छोटा-सा युवक सम्मेलन किया। कलकत्ता के एक समाज सुधारक श्री बसन्त लाल मुरारका उस सम्मेलन के अध्यक्ष थे। सम्मेलन में जाति-पाति का कोई भेद-भाव नही रखा गया। सवर्ण लोगो ने इस सम्मेलन का वहिष्कार किया। जब इस बारे मे मैंने गाधीजी का ध्यान आकर्षित किया तो उन्होंने सलाह दी कि वहिष्कार को मिटाने का एक इलाज है और वह यह कि वहिष्कार से दुःख न माना जाय।

सन् १९४१ मे मेरे पुत्र चि० रचनाकर का विवाह उज्जैन मे हुआ। इस विवाह में पर्दा रहने वाला था और मेरी यह प्रतिज्ञा थी कि पर्दा वाले विवाह में सम्मिलित नहीं होऊंगा। मेरे सामने धर्म-संकट था कि मैं अपने पुत्र के विवाह मे शामिल होऊं या नही। अन्त में मैं इस विवाह मे शामिल नही हुआ। ईश्वर ने मुझे अपनी प्रतिज्ञा पालन करने की शक्ति दी। बापू ने वर-वधू के लिये आशीर्वाद भेजा और मुझे प्रतिज्ञा-पालन के लिये धन्यवाद दिया।

मेरी पुत्री सावित्री का विवाह हुआ। वर-वधु दोनों खादीधारी थे, और विवाह भी पर्दा तोड कर किया गया था। बापू ने वर-वधू के लिये अपने आशीर्वाद भेजे और आशा प्रकट की कि वे सेवाभावी रहेंगे।

× × × ×

मेरा छोटा लड़का प्रह्लाद सन् १९४२ में 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के सिलसिले में लेटर बक्स जलाने के अपराध में गिरफ्तार हुआ। उसे एक महीने की सख्त कैद और दो सौ रुपये जुर्माने की सजा हुई। मुकदमा काफी समय तक चलता रहा, इसलिये उसे जमानत पर छुडा लिया और स्कूल में भर्ती करा दिया। उसकी पढाई में हर्ज नही होने के लिये जमाने की राशि अदालत में जमा करा दी गई।

मैंने गांधीज़ी को पत्र लिख कर पूछा कि यदि जुर्माना जमा कराने में मेरी गलती हुई हो तो मुझे क्या प्रायश्चित्त करना चाहिये। इस पर गांधीजी ने मुझे जुहु (बम्बई) से दि: २३-५-४४ को लिखा कि इस मामले में जो कुछ हुआ उसमें वह कुछ शिकायत का कारण नहीं पाते। प्रत्येक मनुष्य अपनी शक्ति के अनुसार ही चल सकता है।

\+ \+ × ×

सन् १९२७ में बापूजी गुरुकुल कांगड़ी के जलसे में गये। मैं उन्हीं के कैम्प में ठहरा। प्रातः करीब ५ बजे एक सनातनी साधु उनसे गौ रक्षा के विषय में बात करने के लिये आये। गांधीजी ने अपना दृष्टिकोण समझाने का बहुत प्रयत्न किया, परन्तु साधु ने अपनी जिद न छोड़ी। अन्त में गांधीजी को कहना ही पड़ा "समझ लो कि म मूढ़ हूं।"

× × × +

नये मिलने वाले व्यक्ति को गांधीजी एक ही नजर में देख कर भांप लेते थे। जनवरी सन् १९२८ में जब मैं साबरमती आश्रम देखनें गया, तब श्री हरिभाऊ उपाध्याय ने मेरा परिचय करवाया। बापू ने मुझे ऊपर से नीचे तक एक नजर से देखा। मेरी धोती गन्दी थी। उन्होंने तो मुझे एक शब्द भी नहीं कहा परन्तु मैं सहम गया।

दूसरे दिन गांधीजी के साथ घूमने जाने की बात तय हुई। वह प्रार्थना के बाद करीब ५।। बजे घूमने जाया करते थे। परन्तु उस दिन सुबह मेरी नींद नहीं खुली, ६ बजे खुली। साबरमती जेल की तरफ से वह घूम कर आ रहे थे। मैं भी जल्दी से उधर गया। मैंने प्रणाम किया। वह बोले: "मैं तो तुम्हारी राह ही देखता रहा। भारतवर्ष में जल्दी ब्रह्म-मुहुर्त में उठना चाहिये। यदि जल्दी उठने की आदत नहीं है तो खादी कार्य कैसे करोगे?" मैं बहुत शरमाया और तुरन्त अहमदाबाद जाकर अलार्म टाइम-पीस ले आया और साल भर तक सुबह जल्दी उठने की साधना करता रहा।

\+ \+ \+ \+

सन् २६ से अन्त तक मेरा गांधीजी से सम्पर्क रहा। मैं इसे अपना सौभाग्य समझता हूं कि मेरे जैसे एक साधारण कार्य कर्त्ता को गांधीजी ने अपना लिया। मैं जब तब उनकी व्यस्तता के बावजूद

अपने कार्य के सम्बन्ध में तथा शकाओ के निवारण के लिये उनसे पत्र व्यवहार करके परेशान करता रहता था। किन्तु वह मेरे प्रायः सभी पत्रों का उत्तर देते थे और जरूरी होने पर मेरे द्वारा उठाये प्रश्नो पर अपने पत्र 'नवजीवन' और 'हरिजन सेवक' में चर्चा भी करते थे। गांधीजी के विचारों का मेरे सारे परिवार पर असर पड़ा। मैं और मेरी पत्नी स्वतन्त्रता आन्दोलन मे जेल भी गये। खादी और रचनात्मक व अन्य कार्यों में मेरी रुचि गाधीजी के कारण बराबर बनी रही और उनकी प्रेरणा से मैं अपने जीवन का एक बडा भाग सार्वजनिक सेवा में लगा सका। मेरे जीवन विकास में गांधीजी जैसे पुरुष का सबसे बड़ा योग रहा है।

अगर भारत को ऐसे सर्वनाश और बरबादी से बचना हो, तो उसे अमेरिका और दूसरे पश्चिमी देशो की उत्तम बातों का अनुकरण करना चाहिए और उनकी ऊपर से आकर्षक दिखाई देने वाली परन्तु वास्तव में नाशकारी आर्थिक नीतियो से अलग रहना चाहिए। इसलिए भारत की दृष्टि से सच्ची योजना यह होगी कि उसकी सम्पूर्ण मानव-शक्ति का उत्तम उपयोग किया जाय और भारत के कच्चे माल को विदेशो में भेजने के बजाय उसके असंख्य गाँवो मे ही बाटा जाय; क्योकि कच्चा माल विदेशो मे भेजने का अर्थ होगा उससे बनी तैयार चीजों को भारी दाम चुका कर खरीदना।

हरिजन

२३-३-४७

गांधी ही हमारा धर्म-देश

स्वर्गीय डा० जाकिर हुसैन

गांधी जी ने हमें आजादी किस लिए दिलाई थी ? इसलिये कि हमारे इरादे आजाद हों, हम जो वन सकते हैं, वह वनें। अच्छे आदमी वन सकें, अच्छा समाज वना सकें। अच्छे आदमी वनने और अच्छा समाज वनाने का जो रास्ता उन्होंने वताया है, वह मैं समझता हूं कि तीन लफ्जों में वयान हो सकता है—अहिंसा, विज्ञान और काम।

अहिंसा और विज्ञान खयाली वातें भी होकर रह जा सकती हैं। कितावी चीजें वन जा सकती हैं और वहुतों के लिए हैं भी। गाँधीजी की अहिंसा और गांधीजी का विज्ञान खयाली और कितावी

न था। इसलिए उन्होने एक तीसरा रास्ता बताया था। वह काम का रास्ता है। अहिंसा को भी जीवन में बरतना और विज्ञान को भी जीवन के लिए काम में लाना। उन्होंने अपने जीते-जी यह करके दिखलाया और आखिरी उम्र मे बुनियादी शिक्षा की योजना मे इसी खयाल को पेश किया।

यानी आदमी का आदमी से निबाह। स्वयं मिलजुल कर काम करने की आदत और वह जिम्मेदारी, जिसमें समाज का हर काम हर एक का अपना काम बन जाता है।

गाधी जी काम बता गए हैं, आगे चलने के रास्ते दिखा गए हैं, मगर काम खत्म करके नहीं गए हैं। उस काम को करना हमारा फर्ज है।

हमारे एक नादान भाई ने ही गाधी जी की जान को खत्म किया था। हम अपने खून के एक-एक कतरे में, अपनी बेगरज सेवा की, मशक्कत के पसीने की, हर-हर बूंद में उनको जिन्दा रखेंगे, अपनी मुहब्बतो में, अपनी मेहनतो मे, उन्हें जिन्दा रखेंगे। अपने विचारो और अपने कामो मे उन्हे जिन्दा रखेंगे। हम अपनी जिन्दगी को और अपने समाज की जिन्दगी को ऐसा बनायेंगे और उसके अन्दर गाधी जी के विचारो और उनको राह को ऐसा रंगायेंगे, कि हमारी जिंदगी और हमारे देश की जिन्दगी खुद गाधी जी की जिन्दगी बन जाए, इसका पत्ता-पत्ता, बूटा-बूटा उनके रंग में रंगा हुआ हो। यह देश गाधीजी के जीवन की तफसीर, टीका या भाष्य बन जाय, गाधी हमारा देश हो जाए।

●

भूली

बिसरी

यादें

खान अब्दुल गफ्फार खां

गांधीजी के साथ मेरे जैसे स्नेह पूर्ण और हार्दिक सम्बन्ध रहे, वैसे केवल जवाहरलाल नेहरू और राजेन्द्र प्रसाद के साथ रहे।

मैंने गांधीजी को सबसे पहले १९२० में दिल्ली में खिलाफत सम्मेलन में देखा था। उनके साथ जवाहरलाल नेहरू, मौलाना आजाद और अन्य लोग भी थे। मुझे उनसे मिलने का अवसर नहीं मिला, लेकिन मैंने यह अनुभव किया कि यही लोग देश की स्वतंत्रता और सुख समृद्धि के लिए तन मन धन से काम करेंगे।

दूसरी बार मैं गांधीजी से १९२८ में कलकत्ता में मिला, जब कांग्रेस और खिलाफत सम्मेलन के अधिवेशन में हम गांधीजी का

भापण सुन रहे थे। इतने में गुस्से से भरा एक नौजवान मंच पर चढ आया और गाधीजी को टोकते हुए बोला, 'महात्माजी, आप कायर हैं, कायर। गाधीजी उसकी बात पर खूब हसे पर उन्होंने अपना भापण जारी रखा। मैं गाधीजी का शान्त स्वभाव देखकर आश्चर्य-चकित रह गया। यह उनकी महानता का द्योतक है।

अगस्त, १६३४ में हजारीबाग जेल से छूटने के बाद मैं पंजाब और उत्तर पश्चिम सीमाप्रान्त को छोड़ कर कही भी जा सकता था। मुझे गाधीजी ने तार भेज कर अपने पास वर्धा बुलाया और मैं वर्धा चला गया। मै प्राय गाधीजी की प्रार्थनाओ मे भाग लेता था। एक दिन गाधीजी मुझसे बोले आप जानते हैं कि शौकत अली और मोहम्मद अली के साथ मेरे अत्यधिक हार्दिक सम्बन्ध थे। लेकिन फिर क्या हुआ, मैं नही जानता। वे मुझसे नाराज होकर अलग हो गए। इस बारे मे आपकी क्या प्रतिक्रिया है? आप मेरे साथ कैसा व्यवहार करेंगे? मै बोला प्रश्न स्नेह का है। दो व्यक्तियों के बीच सम्बन्धो का बना रहना उनके विचारो और दृष्टिकोण पर निर्भर है। आपका जो दृष्टिकोण या विचार है, वही मेरा भी है। आपका ध्येय सेवा, मानव-प्रेम और इन्सान की खुशहाली है। मैं भी यही चाहता हूँ। जब तक हमारा और आपका यही दृष्टिकोण रहेगा, हम में झगड़ा नही होगा। मतभेद की स्थिति मे ही लोग एक दूसरे से अलग होते हैं।

वर्धा में मै इस बात से बहुत प्रभावित हुआ कि गाधीजी हर काम समय पर करते थे। भोजन, करने, सोने और प्रार्थना का उनका समय निर्धारित था।

रूढिवादी से दूर

गाधीजी का दृष्टिकोण रूढिवादी और कट्टरपंथी नहीं था। मुझे एक उदाहरण याद है। वर्धा में जब मैं गाधीजी से मिलने जाता था, तो मेरे बच्चे भी मेरे साथ जाते थे। एक दिन गाधीजी का जन्म दिन पडा। जब हम गाधीजी के साथ भोजन करने लगे, तो मेरे पुत्र गनी ने गाधीजी से कहा मुझे बहुत खुशी है कि मैं यहां आया। मैंने सोचा था कि आपके जन्म दिन पर हमें मिठाई, पुलाव और मुर्गा आदि मिलेगा। लेकिन आज भी यहां रोज की तरह कद्दू बना है। यह सुनकर गाधीजी बहुत हंसे और मुझसे बोले देखो, ये बच्चे हैं और हमें इन्हें वही खाने को देना चाहिये, जो ये चाहते हैं। हमें इनके लिए

मांस और अण्डों का प्रबन्ध करना चाहिए। मैंने कहा ये केवल मजाक कर रहे हैं। हम जहाँ भी जाते हैं, वहाँ वही खाते हैं, जो मेजबान परोसते हैं और स्वयं खाते हैं। यदि आप इनसे और कुछ खाने को कहेंगे, तो ये नहीं खाएंगे। इसलिए मै और मेरे बच्चे गांधीजी से सहमत नहीं हुए। लेकिन गांधीजी लोगों को उनकी इच्छा के अनुसार खाना देने को तैयार थे।

विनोदी स्वभाव

मै गांधीजी के विनोदी स्वभाव से भी बहुत प्रभावित था। वह लड़के लड़कियों और बूढ़े जवान सभी के साथ हंसते थे। वह काफी विनोद प्रिय थे।

एक दिन ऐसा हुआ कि वर्धा का भंगी अपना काम छोड़कर भाग गया। जब गांधीजी को इसकी सूचना दी गई तो वह बोले हमें बाल्टी झाड़ू लेकर स्वयं सफाई करनी चाहिये। और हम सबने मिल-कर सफाई की।

जब गांधीजी १९३८ में दूसरी बार सीमा प्रांत के दौरे पर आए, तो हमने रात के समय उनके विश्राम के स्थान पर हथियारबन्द संतरी तैनात किये। यह एक सुरक्षात्मक कार्रवाई थी। जब गांधीजी ने इन्हें देखा तो बोले इनकी क्या आवश्यकता है? मैंने उनसे कहा बापू, ये अनधिकृत व्यक्तियों को अन्दर आने से रोकने के लिए रखे गए हैं। लेकिन गांधीजी इससे सहमत नहीं थे और बोले मुझे इनकी जरूरत नहीं है। इस घटना का हम पर गहरा प्रभाव पड़ा।

अहिंसा का सन्देश

सीमा प्रान्त में पहले हिंसा की अनेक घटनाएं होती थीं। अहिंसा का सन्देश वहाँ बाद में पहुँचा। हिंसा के बाद अंग्रेजों का दमन-चक्र चलता था, जिसने बहादुर लोगों को भी कायर बना दिया। लेकिन जब अहिंसा का शुभागमन हुआ, तो कायर से कायर पठान भी बहादुर बन गए। इससे पहले पठान, सिपाहियों और जेल से इतने डरते थे कि उनमें सिपाहियों से बातचीत करने का भी साहस नहीं था। लेकिन अहिंसा ने उनमें साहस, वीरता और भाई-चारे की भावना को जन्म दिया और बच्चे भी हँसी-खुशी जेल जाना पसन्द करने लगे।

मैं जब १९४५ में जेल से छूटा तो अस्वस्थ था। गाधीजी उन दिनो बम्बई में बिडला भवन मे ठहरे हुए थे। उन्होने मुझे बम्बई बुलाया। एक दिन उनसे देश में हिसा की स्थिति पर चर्चा हुई। मैंने गाधीजी से कहा आप लोगों को अहिसा की शिक्षा देते हैं। आपके पास अनेक सवक हैं। ये धनी लोग हैं और आपको रुपये पैसे की काफी मदद दे सकते हैं। इसके बावजूद देश के अधिकाश भागो मे हिसा फली हुई है। हमारे प्रान्त में भी धनी लोग हैं। वे दूसरों को पर्याप्त भोजन दे सकते हैं, लेकिन देश के लिए वे अपना पैसा खर्च नही करते। उनके पास हिसा के अनेक साधन है। लेकिन आप सीमा प्रान्त में हिसा को नही पाएगें, जबकि यहाँ इसका काफी जोर है। ऐसा क्यो है ? मेरे इस प्रश्न पर गाधीजी हंसे और बोले लोग कहते हैं कि अहिसा कायरो के लिए है। लेकिन वास्तव मे यह बहादुरो के लिए है। सीमा प्रान्त मे हिंसा नही है, क्योकि वहाँ के लोग बडे बहादुर हैं।

विभाजन के समय बिहार के दंगो मे हम गांवो का दौरा कर रहे थे। कुछ मुसलमान शरणार्थी गाधीजी के पास आए और बोले–गाधीजी हमें क्या करना चाहिए ? यहाँ इतनी अधिक हिंसा, हत्या और असुरक्षा है। गाधीजी बोले–मैं केवल बहादुरी का ही पाठ पढा सकता हूँ। आप अपने घर वापस जाएँ। उन्होने पूछा–हम यह कैसे कर सकते हैं ? हमारे जीवन की क्या गारण्टी है ? गाधीजी बोले–मैं क्या गारण्टी दे सकता हूँ। यदि आप में से कोई मारा जाता है, तो हिन्दुओ को इसका मूल्य गांधी के जीवन से चुकाना होगा मैं आपको केवल यही आश्वासन दे सकता हूँ। इससे मुसलमान शरणार्थियों को काफी भरोसा हुआ और वे अपने घरों को वापस चले गए।

गाधीजी की वाणी प्रेम और उदारता से भरी थी। उनकी सेवा, प्रेम और भक्ति से असख्य लोग प्रभावित हुए।

सच्चा मित्र

जब रेडियो से गांधीजी की हत्या का समाचार प्रसारित हुआ, उस समय मैं छोटे से गाव मे भोजन कर रहा था। यह खबर सुनते ही हम स्तब्ध रह गए और खाना छोड़ दिया। हमने बाहर आकर खुदाई खिदमतगारो को इकट्ठा किया। गाधीजी की मृत्यु से हमें

गहरा धक्का लगा और हमने अनुभव किया कि हमारा सच्चा स्नेही सहायक और मित्र हमें छोड़ गया है।

गांधीजी की हत्या अक्षम्य अपराध था। जिस व्यक्ति ने अपना समूचा जीवन मानवता के लिए अर्पित कर दिया, जेलों में गया और देश की निस्स्वार्थ सेवा की, उसकी हत्या एक क्रूरतम अपराध था। इस समय भारत को जिस कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है, उसका कारण यही हो सकता है कि खुदा ने इस जघन्य कार्य के लिए हमें माफ नहीं किया है।

गांधीजी की सबसे बड़ी देन क्या है, यह कहना मुश्किल है। उन्होंने भारतवासियों में कायरता के स्थान पर साहस की भावना का संचार किया तथा आजादी की माँग करने का साहस दिया। उन्होंने भारत को ही नहीं, बल्कि समूचे विश्व को अहिंसा का पाठ पढ़ाया। उन्हीं के ही प्रयासों से हमें आजादी मिली।

महान् पुरुष

यदि लोग गांधीजी की आलोचना करते हैं, तो करें। दुनिया की ऐसी ही रीति है। सभी महान्पुरुषों के बारे में यही होता है। हम उनकी प्रशंसा करके उन्हें अधिक उच्चता प्रदान नहीं कर सकते और न ही उनकी आलोचना करके दुनिया की नजर में उन्हें गिरा सकते हैं। गांधीजी महान थे और महान ही रहेंगे।

हम उनका सम्मान किस प्रकार कर सकते हैं? जनता को जीवन की बुनियादी जरूरतें प्रदान की जानी चाहिए, जो गांधीजी चाहते थे। यदि हम किसी ग्रामीण के सामने गांधीदर्शन की चर्चा करें, तो वह यही कहेगा—मैं भूखा हूँ। पहले मुझे खाना दो। मुझे कपड़े दो। मेरे बच्चों के लिए स्कूल नहीं है। उन्हें स्कूल दो। मैं बीमार हूँ और गांव में डाक्टर या चिकित्सा की व्यवस्था नही है।

इसलिए मेरी राय में गांधी जन्म शताब्दी मनाने का काम तभी सफल होगा, जब लोगों की जीवन की बुनियादी जरूरतें प्रदान की जाएँ।
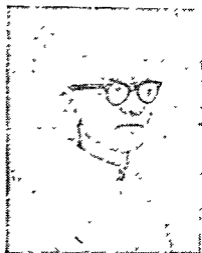
हरिभाऊ उपाध्याय

मेरे पिता, पथ-प्रदर्शक और गुरू

बापू के सहवास और सम्पर्क मे २७ वर्ष रहने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ । सबसे पहले सन् १९१५ मे लखनऊ कांग्रेस मे मैंने बापू के दर्शन किये । उनके दर्शन की लालसा मे मैंने कई बार धक्के खाये । प्रथम दर्शन ने ही मेरा हृदय खीच लिया । उनके आत्म-तेज और आत्म-विश्वास का सिक्का मेरे हृदय पर जम गया । इसके बाद बापू के दर्शन कानपुर स्टेशन पर किये । वह चम्पारन सत्याग्रह मे भाग लेने के बाद पजाब मेल से दिल्ली होते हुए गुजरात जा रहे थे । सेकण्ड क्लास के दरवाजे पर एक नगे सिर, नगे पैर वाली मूर्ति दिखाई दी । बदन पर एक मोटा कुर्ता, कमर पर मोटी, छोटी धोती । चेहरे पर दृढ निश्चय और तपस्या का तेज झलक रहा था । जब बापू ने कहा, या तो निलहे गोरो के अत्याचारों का अन्त होगा या ये

हड्डियाँ चम्पारन में गल जायेंगी, तो मेरी आँखों में आँसू भर आये। तीसरी वार इन्दौर के हिन्दी साहित्य सम्मेलन में वापू के दर्शन हुये। वह सम्मेलन के सभापति वन कर आये थे। अपनी समस्त व्यस्तताओं के वावजूद उन्हें किसी ने थकते नहीं देखा। सम्मेलन की विषय-समिति में मैंने देखा कि उनक ग्रहण शक्ति अद्भुत है। उस समय उनकी जो पैनी दृष्टि मैंने देखी, उससे मुझे उनके महापुरुष होने का निश्चय हो गया। सम्मेलन में उन्होंने जो उपसंहारात्मक भाषण दिया, उसने सवका मन हर लिया।

मैं इन्दौर से 'मालव मयूर' नामक एक मासिक पत्र निकालना चाहता था, किन्तु राज्य ने इसकी अनुमति न दी। तव खण्डवा से एक साप्ताहिक पत्र निकालने का विचार मन में आया और यह सोचा कि उसमें 'यंग इण्डिया' से लेख और टिप्पणियाँ लेकर दी जाएं। इस योजना के सिलसिले में मैं वापू के पास वम्वई पहुँचा। उस समय वह गामदेवी के मणिभवन में ठहरे हुए थे। वापू से मिलने पर यह प्रस्ताव आया कि पत्र अहमदावाद से निकालना चाहिये। इसी सिलसिले में जमनालालजी से भी मुलाकात हुई। मैंने इसे अपना सौभाग्य समझा कि मुझे वापू के आश्रम में, उनके रामराज्य में रहने का अवसर मिलेगा। मैंने भगवान से प्रार्थना की कि मेरी सव कमजोरियोंको दूर करना और इस पवित्र आश्रम में रहने योग्य वनाना। मैं वम्वई से सीधा अहमदावाद चला आया। शुरू में कुछ समय शहर में रहना पड़ा कारण प्रेस और अखवारों के कार्यालय वहीं थे। किंतु मन आश्रम की ओर दौड़ता था। आश्रम मेरे लिए उस माता के समान रहा है, जिसने न केवल नवजीवन दिया, वल्कि अपना अमृत-रस पान भी कराया। आश्रम न केवल भारत के लिए, वल्कि दुनिया भर के जिज्ञासुओं के लिये प्रेरणा का केन्द्र वना हुआ था।

'हिन्दी नव जीवन' के लिये वापू के 'यंग इण्डिया' व गुजराती 'नव जीवन' के लेखों का जो अनुवाद करना पड़ता था उससे सत्य, अहिंसा, खादी आदि के वारे में वहुत भोजन मुझे मिलने लगा। इसी समय मेरी वुद्धि ने अहिंसा धर्म सदा के लिये ग्रहण कर लिया। मै अपने को अहिंसात्मक सेवा का एक सिपाही मानने लगा। जिन दिनों 'हिन्दी नवजीवन' निकला, युवराज के स्वागत वहिष्कार का आंदोलन चल रहा था। उस समय कानून तोड़ने की वारी आ गई थी। मैंने स्वयंसेवकों में अपना नाम लिखाना चाहा। किन्तु वापू ने कहा, तुम्हें

'हिन्दी नवजीवन' का काम करते-२ पकड़े जाना है। सिपाही का काम अपनी ड्यूटी पर जमे रहना है। बापू का यह वचन सदा के लिए मेरे हृदय पर अंकित हो गया। जब 'हिन्दी नव जीवन' का पहला अंक निकला तो उसे लेकर बापू के पास गया और कहा "आपकी पसन्द के माफिक निकला है या नहीं, यह जानने आया हूं।" बापू ने उत्तर दिया "अच्छा रख जाओ, देखकर बताऊंगा।" दूसरा अंक निकलने पर उसे लेकर मैं फिर गया, "यह दूसरा अंक निकल गया। पहला आपने देख लिया होगा। आप कुछ बतायें तो।" उन्होंने हंस कर कहा, "लेकिन मैं अभी तक पहला अंक भी नहीं देख पाया हूँ। अब तो मुझे शायद ही समय मिले। लेकिन तुम अपना काम उत्साह से करते रहो। जब कोई बात सूझेगी तो बता दूंगा। तब तक तुम ऐसा समझो कि तुम्हारा काम मुझे पसन्द है।" छः सात महीने बाद बापू गिरफ्तार होकर साबरमती जेल पहुँच गये। उनको छः वर्ष की लम्बी कैद की सजा हो गई। इसके बाद 'हिन्दी नव जीवन' के सम्पादक की जगह मेरा नाम जाने लगा।

जमनालालजी मेरे काम और आचार व्यवहार से प्रभावित हुये और उन्होंने सोचा कि मुझे राजस्थान में जाकर बापू की रीति-नीति अनुसार काम करना चाहिये। मुझे भी कोरे लेख लिखते-लिखते अपनी लेखनी खोखली मालूम पड़ने लगी। प्रत्यक्ष काम करने की इच्छा मन में जागृत हुई। खादी के बारे में मैंने 'नव जीवन' मे जो लेख लिखे, उनसे चरखा संघ के मंत्री श्री शंकरलाल बैंकर ने भी सोचा कि खादी-प्रचार के लिये मैं राजस्थान में उपयोगी सिद्ध हो सकूंगा। 'नव जीवन' प्रेस के व्यवस्थापक श्री स्वामी आनन्द को मेरे अहमदाबाद छोड़ने पर आपत्ति थी, किन्तु मैंने समझा बुझा कर उन्हें राजी कर लिया। बापू की अनुमति भी मिल गई। मैं सन् १९२६ की जनवरी में अजमेर चला आया और तब से बराबर राजस्थान में अपनी योग्यता के अनुसार सेवा कार्य करता आ रहा हूँ।

मेरे राजस्थान आने से पहले सस्ता साहित्य मण्डल की स्थापना हो चुकी थी। अजमेर में उसका कार्यालय रखना स्थिर हुआ। साधारण देखभाल मेरे जिम्मे हुई। इधर चर्खा संघ की राजस्थान शाखा को अधिक संगठित करने की दृष्टि से श्री देशपाण्डे उसके मंत्री बन कर आ चुके थे। मेरी नियुक्ति इसी शाखा के प्रचार मंत्री के रूप में हुई। सन् १९२६ की बात है। बापू का एक पत्र मुझे मिला जिसमें

उन्होंने खादी केन्द्र के एक कार्यकर्त्ता के बारे में शिकायतों की जांच का काम मुझे सौंपा। शिकायतें नैतिक स्वरूप की थीं। मामला कठिन था। मैं और देशपाण्डेजी दोनों खादी केन्द्र में पहुँचे। खादी कार्यकर्त्ता से मीठे ढंग से बातचीत की। उन्होंने सब बातें सच सच बयान कर दीं। मैंने उन्हें समझाया कि खादी का काम कोरा व्यापारिक काम नहीं है और यह काम बापू के पवित्र नाम पर चलता है, हमें उसे उज्ज्वल रखना होगा, अतः आप इस केन्द्र का चार्ज देशपाण्डेजी को सौंप दीजिए, और पहले आत्मशुद्धि का उपाय कीजिए। उन्होंने मेरे समझाने पर चार्ज दे दिया। मैं इसे अहिंसात्मक कार्यशैली की विजय मानता हूँ। इस केन्द्र का जो वातावरण बिगड़ गया था, उसे ठीक करने में दो-तीन महीने लगे। खुद मुझे एक दो महीने लगातार वहाँ रहना पड़ा। इसमें भी हम लोगों की अहिंसावृत्ति बहुत काम आई। हमने महसूस किया कि गाँव वालों की भावनाओं को आघात पहुँचा है। खान-पान, आचार-विचार में उस कार्यकर्त्ता ने कोई मर्यादा नहीं रक्खी थी। गाँव वालों ने ऐलान करा दिया था कि कोई खादी वालों को कुए पर पानी न भरने दे। हमने अपना दृष्टिकोण उन्हें समझाना शुरू किया; और गीता की कथा भी शुरू की। अन्त में वातावरण हमारे अनुकूल हो गया। हरिजनों की बस्ती में एक पाठशाला भी खादी आश्रम की ओर से खोली गई, जिसमें धीरे-धीरे सवर्णों के बालक भी आने लगे। अछूत सहायक मण्डल कायम किया गया जिसके मंत्री देशपाण्डेजी और अध्यक्ष मुझे बनाया गया था। राजस्थान में अस्पृश्यता मिटाने का यह पहला संगठित प्रयास था।

इसी साल, यानि सन् १६२६ में, इन्दौर के मजदूरों ने हड़ताल कर दी। तमाम मिलों के कोई दस, बारह हजार मजदूर हड़ताल पर थे। बोनस के सवाल को लेकर हड़ताल शुरू हुई। बाद में काम के घन्टों का सवाल भी जोड़ दिया गया। मजदूरों को १३-१४ घण्टे प्रतिदिन काम करना पड़ता था। मजदूरों के कुछ प्रतिनिधि अहमदाबाद पहुँचे। मजदूर महाजन संघ की अध्यक्षा श्रीमती अनुसूया बहन से मिले। उन्होंने और श्री शंकरलाल बैंकर ने बापू से परामर्श किया और मुझे उनके हवाले से लिखा कि मैं इन्दौर जाकर मजदूरों की मदद करूं। बापू की हिदायत थी कि मैं पहले राज्य के प्रधान मन्त्री से मिलूंगा और फिर मजदूरों में काम करूं। मैं इन्दौर पहुँचा तो

देखा कि वातावरण उत्तेजनापूर्ण बना हुआ है। व्यापारी लूट-पाट की आशंका से आतंकित थे और राज्य के अधिकारी भी परेशान थे। कुछ मजदूर मिल मालिक सर हुक्मचन्द के यहां गाली-गुफ्ता कर आये थे और उनके घर के कांच तोड-फोड आये थे। मैं सबसे पहले प्रधान मन्त्री से मिला और उनकी सद्भावना प्राप्त की। मजदूरो को समझाया कि उन्हें शाति का वातावरण उत्पन्न करना चाहिए। मेरी प्रेरणा पर मजदूर नेताओं ने सर हुक्मचन्द के पास जाकर उनसे क्षमा याचना की। इस सबका असर पडा। लूट-पाट की आशका नही रही। राज्य ने काम के दस घण्टे निश्चित कर दिये। बोनस का प्रश्न भी हल हो गया। किन्तु मालिकों ने एक नया सवाल खडा कर दिया कि काम के घण्टे कम होते हैं तो मजदूरी भी घटाई जानी चाहिये। इस प्रश्न को पंच फैसले से निपटाने का प्रस्ताव किया गया, किन्तु मालिको ने इसे ठुकरा दिया। एक मित्र ने सुझाया कि अगर मिल-मालिक सर हुक्मचन्द को पंच बना दिया जाये तो यह मामला निपट सकता है। मैं इस सुझाव पर परामर्श लेने के लिए बापू के पास गया। उन्हें भी यह सुझाव अटपटा लगा, किन्तु उन्होने कहा कि अगर मजदूर इसके लिये राजी हो तो उस पर अमल किया जा सकता है। श्री गुलजारीलाल नन्दा भी मेरे साथ इन्दौर आये। हम लोगो ने सर हुक्मचन्द की मनोभूमिका जानने का प्रयत्न किया। उन्होंने हमें यकीन दिलाया कि वह मजदूरो के साथ न्याय करेंगे। हमने मजदूरो को यह प्रस्ताव मान लेने के लिये राजी कर लिया। हुक्मीचन्द ग्रुप के लिये सर हुक्मचन्द व मालवा मिल के लिये श्री द्रविड, पंच नियत किये गये। दोनो पचों ने दो महीने बाद यह फैसला दिया कि मजदूरो की मजदूरी मे कोई कटौती न की जाय। इस प्रकार मजदूरो की तीनो मांगें मान ली गईं। मजदूर संघ भी कायम हो गया। मजदूरो की यह एक सफल हडताल रही। इससे सिद्ध हुआ कि बापू की रीति-नीति के अनुसार सगठन, एकता, अनुशासन और अहिंसा के द्वारा मजदूर विजय प्राप्त कर सकते हैं।

जयपुर राज्य मे खादी उत्पत्ति का कार्य होता था। किन्तु बिक्री प्राय बाहर बम्बई, गुजरात, आदि में होती थी। अतः राजस्थान मे खादी बिक्री बढाने के प्रयत्न किये गये। बिजोलिया (मेवाड राज्य) मे श्री जेठालाल भाई ने वस्त्र-स्वावलम्बन का काम चर्खा संघ की ओर से शुरु किया था। सन् १९२७ में राज्य ने बिजोलियां मे

कुछ कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार कर लिया। उनमें दो खादी कार्यकर्ता भी थे। चर्खा संघ की ओर से राज्य को यह आश्वासन दिया गया था कि उसके कार्यकर्ता राजनीति में नहीं पड़ेंगे। सेठ जमनालाल जी वजाज चर्खा संघ के अध्यक्ष थे। उन्हें इस मामले में हस्तक्षेप करना पड़ा। वह अधिकारियों से मिलने के बाद बिजोलियां गये। मैं भी उनके साथ गया था। उस यात्रा में बिजोलियां में वस्त्र-स्वावलम्वन का जो कार्य मैंने देखा तो उस पर मुग्ध हो गया। मैने वस्त्र-स्वावलम्वन बनाम उत्पत्ति बिक्री नामक एक लेख तैयार करके वापू को भेजा। उसमें वस्त्र स्वावलम्वन की महत्ता और उत्पत्ति-बिक्री वाली खादी की कमियां वतलाई गई थीं। वापू ने कहा, वस्त्र-स्वावलम्वन की महत्ता वाला भाग छापना मुनासिव होगा, उत्पत्ति बिक्री की कमियों वाला छापने से हानि होगी। लोग वस्त्रःस्वावलम्वन को अपनायेंगे नहीं, उत्पत्ति-विक्रि से अलवत्ता पराङ्मुख हो जायेंगे। आगे चल कर वापू कहने लगे कि उत्पत्ति-बिक्री वन्द हो जाए तो मुझे रंज गा। वस्त्र-स्वावलम्वी एक भी व्यक्ति होगा तो मैं उसे लेकर नाचूंगा।

बिजोलियां की एक समस्या और थी। बिजोलियां उदयपुर राज्य का एक ठिकाना था। १५ हजार के लगभग उसकी आवादी रही होगी जिसमें १० हजार से ऊपर किसान थे। ठिकाना किसानों से लगान के अलावा ८० तरह की लागें वसूल करता था। किसान अर्से से अपनी तकलीफें मिटाने की कोशिशें कर रहे थे किन्तु जव पथिकजी बिजोलियां पहुँचे तो उन्होंने किसानों को संगठित किया। राजस्थान ही नहीं शायद सारे भारत में किसानों को इस प्रकार संगठित करने का यह पहला प्रयास था। चार वर्ष तक किसानों ने लगान नहीं दिया और आन्दोलन तो इससे भी अधिक चला। अन्त में राजपूताना के ए० जी० जी० की मध्यस्थता से फरवरी १९२२ में किसानों और ठिकाने में समझौता हुआ और वहुत सी लाग-वेगार रद्द करदी गई। इस समझौते के अनुसार बिजोलियां में वन्दोवस्त हुआ। किसानों को शिकायत हुई कि नये वन्दोवस्त में बिना सिंचाई की जमीन पर लगान वढ़ा दिया गया है। किसानों को इसके अलावा कुछ दूसरी शिकायतें भी थीं। जव उनकी सुनवाई नहीं हुई तो किसानों ने विरोध-स्वरुप पथिकजी की सलाह पर माल जमीन का इस्तीफा दे दिया। माल जमीन कुल ८० हजार बीघा थी। उसमें से ६० हजार बीघा

जमीन का इस्तीफा दिया गया और इस्तीफा देने वाले किसानों की संख्या ३८६५ थी। राज्य ने इस्तीफे मन्जूर कर लिये और बहुत सी जमीन दूसरो को पट्टे, पर दे दी। इस पर किसानो में वड़ा असन्तोष था।

एक ओर राज्य के तत्कालीन रेवेन्यु मेम्वर मि० ट्रेंच ने जमनालालजी से अनुरोध किया कि वह इस झगड़े में दिलचस्पी लेकर उसे निपटा दें। उधर किसानो ने भी उनकी सहायता मागी। ५थिकजी ने पचायत के सलाहकार पद से इस्तीफा दे दिया। जमनालालजी की सलाह पर पंचायत ने मुझे अपना सलाहकार नियुक्त किया। तब मैंने जमनालालजी के पथ-प्रदर्शन मे समझौते के प्रयत्न शुरु किये। मैं रेवेन्यु मिनिस्टर मि० ट्रेंच से मिला और समझौते की वातचीत चलाई। अन्त मे एक समझौता हुआ, जिसमें और वातों के अलावा यह तय पाया कि इस्तीफा शुदा जो जमीन राज्य के कब्जे मे है वह किसानो को तुरन्त लौटा दी जाएगी और जो जमीन पट्टे पर दी जा चुकी है, उसे पट्टेदारो को खानगी तौर पर समझा बुझा कर किसानो को दिलवा दिया जएगा। इस शर्त को पूरा करने की जिम्मेदारी मि० ट्रेंच ने ली थी। किन्तु यह मामला लम्वा चला। किसानो को उनकी जमीने नहीं मिली। अत. उन्होने निराश होकर सन् १६३१ में सत्याग्रह का आश्रय लिया। किसानों ने अक्षय तृतीया को उस जमीन पर हल चला दिए जो उनकी पुश्तैनी थी और जिसका पट्टा राज्य ने दूसरों को दे दिया था। राज्य की ओर से घोर दमन हुआ। माणिकलालजी सहित कई कार्यकर्ता और किसान जेलो मे वन्द किए गए थे तथा कार्यकर्त्ताओ और किसानो को वुरी तरह मारा पीटा और सताया गया। भाई शोभालालजी और अचलेश्वरजी जैसे प्रतिष्ठित कार्यकर्ताओ को भी मार सहनी पड़ी। जव सत्याग्रह चल रहा था तो वापू के पास वारडोली पहुँचा और सारी स्थिति उनके सामने रखी। वापू ने सलाह दी कि फिलहाल सत्याग्रह स्थगित कर दिया जाए और वह मालवीयजी या जमनालालजी के द्वारा समझौता कराने का प्रयत्न करेंगे। तदनुसार विजोलिया का सत्याग्रह स्थगित कर दिया गया। वाद में मालवीयजो ने भी इस मामले मे काफी दिलचस्पी ली और राज्य के प्रधान सलाहकार सर सुखदेव प्रसाद और जमनालालजी के बीच एक समझौता हुआ। इस समझौते के अनुसार जिन किसानो को सत्याग्रह के सिलसिले मे सजायें हुई थी, उन्हें

अपील करने पर रिहा कर दिया गया और यह तय पाया कि कसानों को उनकी जमीनें लौटा दी जाएंगी। फिर भी जब काफी समय तक किसानों को जमीनें नहीं मिलीं, तो मैंने मन में सोचा कि मुझे इसके लिए अनशन करना चाहिए। जब जमनालालजी ने यह प्रसंग बापू के सामने उपस्थित किया तो बापू ने कहा कि अनशन करने का विचार हरिभाऊ के मन में आया यह तो मुझे अच्छा लगा परन्तु उसे यह अधिकार प्राप्त नहीं हुआ है। पहले किसानों को संगठित करके उनमें अपनी मांग की पूर्ति कराने के लिए बल पैदा करना चहिए। सत्याग्रही को जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए। अन्त में किसानों को उनकी जमीनें वापस मिल गईं। अहसा और धीरज, कष्ट-सहन और त्याग द्वारा किसानों को उनका न्यायोचित हक प्राप्त हुआ।

सन् १९३५ में इन्दौर में फिर हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन हुआ और बापू को उसका सभापति बनाया गया। इस अवसर पर एक लाख रुपये की थैली हिन्दी प्रचार के लिए बापू को भेंट करने का निश्चय हुआ। एक खादी और ग्रामोद्योग प्रदर्शनी का भी आयोजन किया गया था। अधिवेशन में कुछ लोग गड़बड़ी करना चाहते थे किन्तु उनकी कुछ नहीं चलने पाई। ग्रामोद्योग प्रदर्शनी में मेरे विरुद्ध एक पर्चा छपाकर बाँटा गया। बापू ने यह पर्चा मुझे दिया किन्तु उसके बारे में मेरे चाहने पर भी उन्होंने मुझसे कोई पूछताछ नहीं की, केवल इतना कहा कि लोग यहां भी मेरे पीछे पड़े हैं। दोनों आयोजन निर्विघ्न पूरे हुए।

अब मैं बापू के बारे में कतिपय विविध संस्मरणों का उल्लेख करूंगा।

बीकानेर के स्वर्गीय महाराजा सर गंगासिंह के समय में श्री खूबरामजी सर्राफ तथा दूसरे कुछ व्यक्तियों पर षडयन्त्र और राजद्रोह का मुकदमा चल रहा था। मेरे एक मित्र ने एक बचाव कमेटी बनाई थी। मेरी भी उसमें दिलचस्पी थी। मुकदमें ने काफी हलचल मचा रखी थी। खुद पोलिटिकल एजेन्ट ने महाराजा को इस मामले को निपटा देने की सलाह दी थी। किन्तु महाराजा ने उनकी भी दाद नहीं दी। मित्र ने सुझाया कि इस मामले में बापू की मदद लेनी चाहिए। मैं उन्हें लेकर वर्धा गया और बापू से मिला। बापू ने तुरन्त महाराजा को पत्र लिख दिया और हमें सचेत कर दिया कि यह समाचार अखबारों में न छपे। किन्तु किसी तरह मित्र की असावधानी

से यह खबर अखबार में छप गई। मुझे बापू से माफी मांगनी पड़ी। बापू मुझ पर बहुत बिगड़े। उन्होने इस भूल के लिए मुझे जिम्मेदार समझा। जब मै दुबारा उनसे वर्धा मे मिला तो उन्होने बड़े दुःखी स्वर मे मुझसे कहा, "हरिभाऊ तुम्हारे मित्र यह नही जानते कि उनका हित किसमे है। अब इस खबर के जाहिर हो जाने से बीकानेर महाराजा अभियुक्तो को छोडते होगे तो भी नही छोडेगे। तुमको पता है कि वह पोलिटिकल एजेन्ट को मना कर चुके हैं। अब जो आदमी पोलिटिकल एजेन्ट के कहने से अभियुक्तो को न छोडे, वह गांधी के कहने से छोड़ दे तो उसे गद्दी छोडनी पडे। पोलिटिकल एजेन्ट उसे खा जाएगा। अब इसका प्रायश्चित यही है कि आगे से तुम यह जानने की कोशिश न करो कि इस विषय मे मैं क्या कर रहा हूँ। तुमसे कहकर मै दुबारा जोखम नही उठाना चाहता।" मेरे लिए इससे बड़ा प्रायश्चित या दण्ड दूसरा नही हो सकता था।

× × × ×

जोधपुर के एक कार्यकर्त्ता थे। बड़े सच्चे, नेक और व्रत, संयम और श्रद्धा रखने वाले। विवाहित थे। विवाह हुए दो चार साल ही हुए होगे कि उन्होंने ब्रह्मचर्य से रहने का नियम बना लिया, पर इसमे उन्हे अपनी पत्नी का सहयोग नही मिला। उसकी बडी बुरी दशा थी। जबरदस्ती के सयम से भीतर ही भीतर उसका मन कुण्ठित रहने लगा। वह भाई बडी दुविधा मे पडे। तय पाया कि इस बारे में बापूजी का परामर्श लिया जाए। संयोग से बापू अजमेर स्टेशन से गुजरे। शायद अहमदाबाद जा रहे थे। अजमेर से ब्यावर तक गाड़ी में मैंने उस दम्पति को बापू से बातचीत का अवसर दिला दिया। मै भी मौजूद था। बापू ने उस भाई से कहा, तुम्हारा ब्रह्मचर्य मुझे कच्चा मालूम देता है। यही कारण है कि उसका असर तुम्हारी पत्नी के मन पर अभी तक नही हो पाया है। सच्चे ब्रह्मचर्य का परिणाम होना चाहिए कि जो उसके सम्पर्क में आए, उसका मन विकारो से फिर जाए। तुम्हारी पत्नी चौबीसो घण्टे तुम्हारे साथ रहती , फिर व्याकुलता से गृहस्थ जीवन चाहती है तो तुम्हें अपना आग्रह छोड़कर उसे सतोष देना चाहिए। दोनो ने यह सलाह स्वीकार कर ली।

+ + × ×

अजमेर के मेरे एक आर्यसमाजी मित्र बापू के बड़े आलोचक थे। बड़े स्पष्टवादी और मुंहफट थे। अक्सर कहा करते थे कि

महात्माजी से मेरी भेंट करा दो तो मैं उन्हें खरी-खरी सुनाऊंगा। संयोग से बापू एक दिन अहमदाबाद जाते हुए अजमेर से गुजरे और हम लोग उनके दर्शनार्थ गये। वह मित्र भी आ पहुँचे। मैंने बापू से उनका परिचय कराया और कहा कि वह आपसे कुछ कहना चाहते हैं। बापू सुनने को राजी हो गये। मित्र ने अपनी बौछार शुरू कर दी। गाड़ी के रवाना होने तक वह कहते ही रहे। उनकी बात पूरी नहीं हुई। मैं बापू के साथ आगे तक चला गया। मैंने सोचा कि बापू को बुरा लगा होगा। किन्तु बापू ने मुझसे कहा, "मुझे तो अफसोस है कि ज्यादा वक्त नहीं था, नहीं तो मैं उनकी बातें और सुनता। उन्हें पूरा समय देता।" बापू में इतना धीरज था कि वह विरोधी के विचारों को बड़ी शान्ति के साथ सुन सकते थे।

÷ ÷ ÷

जयपुर सत्याग्रह शुरू करने के पहले जमनालालजी ने, जो इसके नेता थे, भाई हीरालालजी और राज्य प्रजामण्डल की कार्यकारिणी के सदस्यों से कहा था कि यदि कार्यकारिणी के पांच-छह सदस्य भी जेल जाने को तयार हों तो वह बापू के आशीर्वाद लेने का प्रयत्न करेंगे। उन दिनों बापू का पड़ाव बारडोली में था। प्रजामण्डल के मित्रों ने जब प्रतिज्ञा की कि वह हर तरह से तयार हैं तो बापू ने सत्याग्रह के लिए अपने आशीर्वाद दे दिये और उसके संगठन आदि का भार जमनालालजी पर छोड़ दिया।

जयपुर का सत्याग्रह शुरू हुआ उसके नेता जमनलालजी और प्रजामण्डल की कार्यकारिणी के सदस्य जेल जा चुके थे। इसके अलावा कई सौ स्वयं सेवक गिरफ्तार हो चुके थे। राजकोट में भी सत्याग्रह हुआ। किन्तु उसे बापू ने स्थगित करा दिया। बापू राजकोट से दिल्ली आ रहे थे। रास्ते में हमें उनसे मिलकर जयपुर सत्याग्रह का हाल बताना था। हम सोजत स्टेशन पर उनसे मिले। हमने सुना था कि बापू ने राजकोट का सत्याग्रह इसलिए बन्द करा दिया कि उसमें सत्याग्रह के नियमों का ठीक-ठीक पालन नहीं हो रहा है। हमें डर लगा कि कहीं बापू जयपुर का सत्याग्रह भी स्थगित न करादें। बापू ने पूछा, "तुम्हारा सत्याग्रह तो ठीक ठीक चल रहा है न? कोई गड़बड़ तो नहीं है।" मैंने कहा, "बापू जी, कह तो नहीं सकते

कि सब ठीक-ठाक चल रहा है, गलतियां तो हो ही रही हैं, पर हम लोग पूरी-पूरी कोशिश कर रहे हैं कि गलतिया रुकें और आगे न होने पायें।" बापू गम्भीर हो गये और राजकोट सत्याग्रह की एक त्रुटि बताने लगे ताकि हम अपनी जिम्मेदारी अच्छी तरह समझ ले। अन्त में दिल्ली जाकर यह सलाह दी कि जयपुर-सत्याग्रह स्थगित कर दिया जावे। हमने यह आशका प्रकट की कि इससे लोगों में निरुत्साह फल जाएगा। बापू ने कहा जयपुर का मामला हल करने के लिए तो यदि अकेले जमनालालजी भी जेल मे पड़ें रहें तो काफी होगा। उनकी कुर्बानी को भी यह सरकार पचा न सकेगी। फिर बापू ने यह भी बताया कि तत्कालीन वायसराय लार्ड लिनलियगो ने उन्हें आश्वासन दिया है कि वह इस मामले को निपटा देंगे। अत उन्हे ऐसा करने के लिए कुछ समय देना चाहिए।

+ + + +

सन् १९३४-३५ में बापू हरिजन यात्रा पर निकले थे। इसी सिलसिले में अजमेर और ब्यावर भी आए। अजमेर मे एक मित्र ने प्रस्ताव रखा कि बापू अर्जुनलालजी सेठी के घर जाएं। सेठी जी अपने ढग के स्वतंत्र व्यक्ति थे। बापू के आलोचक थे। कानपुर कांग्रेस के समय बापू को काफी खरी-खोटी सुनाई थी। बापू ने मेरी राय पूछी कि सेठी जी के यहा जाना चाहिए अथवा नही। मैंने कहा कि जाने में कोई हर्ज नही, किन्तु उससे सेठी जी की वृत्ति में मेरी राय मे कोई खास फर्क नही पडेगा। बापू ने मुझ से पूछा कि तुम साथ चलोगे ? सेठी जी उस समय मुझसे खास तौर पर नाराज थे। मैंने साथ जाने की अनिच्छा प्रकट की। बापू ने कहा, सेठी जी के यहा जाना चाहिए, तुम कहते हो वैसा ही नतीजा निकले तो भी हमें शुभ कार्य करने से हिचकिचाना नही चाहिये। बापू सेठी जी के यहा गए ता सेठी जी गद्गद् हो गए। हम लोग भी आनन्द विभोर हो उठे।

× × ×

अजमेर की इस यात्रा मे बापू को अजमेर के एक पुराने मेजवान ने अपने यहा शाम के भोजन का निमन्त्रण दिया। कुछ लोग बापू को उनके यहा जाने देना नही चाहते थे। बापू को मैंने बताया कि इन मित्र के बारे मे कुछ शिकायतें सुनी हैं और लोग

आपके उनके यहां जाने का विरोध करते हैं। वा ने उस मित्र से मेरा आमना-सामना करा दिया। मैंने उन मित्र से इन शिकायतों के बारे में पहले बातचीत नहीं की थी क्यों कि मैंने शिकायत के रूप में नहीं, एक कठिन स्थिति को बचाने के उद्देश्य से उनका जिक्र बापू से किया था। इससे मैं बड़ी दुविधा में पड़ गया। बापू के सुझाव पर उन मित्र से चर्चा की और उसकी जो रिपोर्ट बापू को सुनाई, उस पर से बापू ने उस समय उन मित्र के खिलाफ फैसला नहीं दिया। उन्होंने कहा कि जब तक किसी के खिलाफ शिकायतें सच साबित नहीं हो जातीं, तब तक उसे निर्दोष मानना चाहिए। अतः मुझे उनके यहां जाना चाहिए और बापू उन मित्र के यहां गए। मुझे एक अच्छा सबक मिला।

× × × ×

सन् १९२८-२९ में हम लोगों ने कांग्रेस का चुनाव लड़ा, मतदाताओं के लिए खादी पहनने की शर्त थी। दोनों दलों ने मिलकर १४ हजार सदस्य बनाये। प्रतिपक्षियों ने थोड़े से खादी के कपड़े बनवा लिए और बारी-बारी से उन्हीं को पहनाकर लोगों से वोट दिलवाये। इस आधार पर चुनाव रद्द कर दिया गया। मैंने बापू को इसकी सूचना दी तो उन्होंने फौरन मुझसे पूछा कि तुम्हारे पक्ष वालों ने तो कोई गलती नहीं की है। मेरे साथी कुछ घबड़ा गए, क्योंकि ऐसी खबर लगी थी कि बावजूद हमारी कोशिश के लोगों ने अनियमितता कर डाली थी। जहां तक मुझे याद है अनियमितता तत्कालीन कांग्रेस के विधान या परिपाटी के अनुसार तो नहीं, पर बापू के माप दण्ड से अनुचित हो सकती थी। मैंने बापू को लिखा कि आपके स्टेण्डर्ड से हम लोग भी अवश्य कुछ दोषी हैं, कांग्रेस के स्टेण्डर्ड से नहीं गिरे हैं, हमारा सच्चे दिल से यही प्रयत्न है कि आप की परीक्षा में पास हों। बापू ने हमारी कठिनाई और परेशानी को समझ लिया। हमें लिखा: "चिन्ता करने की जरूरत नहीं, सच्चे दिल से शुद्धि का प्रयत्न करते रहो।"

× × × ×

अजमेर में हमने एक बार खादी और ग्रामोद्योग प्रदर्शनी की। उसी सिलसिले में किले की एक बुर्ज पर ऊंचा राष्ट्रीय झण्डा फहराया। तत्कालीन कमिश्नर ने प्रदर्शनी के मन्त्रियों, कृष्णगोपाल और बालकृष्ण गर्ग, के नाम आदेश भेजा कि झण्डा उतार लिया जाए। उन

दिनों सत्याग्रह आन्दोलन स्थगित था और वापू का सख्त आदेश था कि उनकी इजाजत के बिना कोई कानून न तोड़ो। हम धर्म-संकट मे पड़े। दो घन्टे के समय में वापू की इजाजत प्राप्त नही की जा सकती थी।इघर इस अपमान-जनक हुक्म को कोई मानने को तैयार नही था। अन्त मे हमने यही निर्णय किया कि झण्डा न उतारा जाए। फलस्वरूप आदेश की अवहेलना करने के जुर्म में प्रदर्शनी के मन्त्रियों को चार-चार महीना कड़ी कैद की सजा दी गई। जब मामला वापू के सामने गया तो उन्होंने कहा "तुम लोगों ने अनुशासन को तो भग किया है किन्तु तुम्हारी परिस्थिति को मैंने समझ लिया। गलती तुमने सही दिशा मे की है।" वापू ने 'हरिजन' में हमारे पक्ष का ही समर्थन किया।

वापू के और भी बहुत सस्मरण हो सकते हैं। वापू को मै पिता, गुरू और नेता, तोनों मानता था। उनसे मेरा जीवन काफी प्रभावित हुआ और जब तक वह जीवित रहे मै उनके मार्ग-दर्शन मे सेवा कार्य करता रहा। अव उनकी शिक्षायें और आदर्श मेरा मार्ग-दर्शन करते हैं।

●

मृत्यु जो शाश्वत सत्य है, उसी प्रकार एक शान्ति है जिस प्रकार जन्म और उसके वाद का जीवन एक धीमा और स्थिर विकास है। मनुष्य के विकास के लिए मृत्यु उतनी आवश्यक है जितना कि स्वय जीवन।

—यग इन्डिया
२-२-२२

बापूजी की अमर प्रेरणा

राधाकृष्ण बजाज

सन् १९२३ की बात है। गांधीजी ने हिन्दू मुस्लिम एकता के लिए दिल्ली में मौलाना मोहम्मद अली के मकान पर २१ दिन का उपवास शुरु किया हुआ था। मैं जमनालालजी और विनोबाजी के साथ दिल्ली पहुँचा। गांधीजी के निजी सचिव कृष्णदास भाई अचानक बीमार पड़ गये और देवदास भाई को उनकी सेवा में लग जाना पड़ा। अतः गांधीजी की निजी सेवा का काम मुझे सौंपा गया। मुझे दिन रात उनकी शैय्या के पास रहना पड़ता था। गांधीजी उपवास के आखिरी दिनों में काफी अशक्त हो गये थे। अपने आप करवट भी नहीं बदल सकते थे। उन्हें सहारा देकर बिठाना पड़ता था। किन्तु ऐसी दशा में भी उन्होंने नित्य चरखा कातने का नियम भंग नहीं होने दिया। मैं उनके पास चरखा रख देता और वह आधा घण्टा बराबर चरखा चलाते। मुझे आश्चर्य होता कि शारीरिक अशक्तता

की दशा में भी चरखा चलाने की शक्ति कैसे प्राप्त कर लेते थे। यह उनका संकल्प-बल ही था कि वह नियमित चरखा कातने के व्रत का उपवास के दिनो मे भी निर्वाह कर सके। उपवास के दिनो में मालवीयजी गाधीजी को श्रीमद्भागवत और पूज्य विनोबाजी गीता सुनाया करते थे। राम-नाम का जप तो चलता ही था। गाधीजी के नैतिक जीवन और आध्यात्मिक विचारो का मुझ पर गहरा असर पडा। इस प्रथम सम्पर्क के बाद गाधीजो से मेरा सम्बन्ध अधिकाधिक निकट होता गया।

जब गाधीजी वर्धा और सेवाश्रम मे आकर रहने लगे, तो उनके निकट रहने और काम करने का अवसर मिला। सन् १९३४ मे वर्धा के *महिला आश्रम मे गाधीजी ने सात दिन का उपवास किया था।* हरिजन यात्रा के दौरान जब गाधीजी अजमेर गये थे, तो कुछ लोगों ने बाबा लालनाथजी के साथ, जो विरोधी प्रदर्शन करने के लिए पहुँचे थे, मारपीट कर डाली थी। इस घटना के प्रायश्चित-स्वरूप गाधीजी ने ७ दिन का उपवास किया। इस उपवास के समय भी गाधीजी की देखभाल करने का काम मेरे जिम्मे आया। काकाजी जमनालालजी अपने कान के रोग के इलाज के लिए बम्बई चले गये। गाधीजी से मिलने वाले तो आते ही रहते थे। मैं ही उनके लिए समय निश्चित करता और मेरे सकेत पर मुलाकातें समाप्त हो जाती। गाधीजी ने उन दिनो मेरा नाम जेलर रख छोडा था। मेरी राय लिए बिना बड़े से बडे आदमी को भी मिलने का समय नही देते थे। *गांधीजी ने काका जी को वचन दिया था कि वह मेरे अनुशासन का* पूरा पालन करेंगे। उस वचन का उन्होने पूरा-पूरा पालन किया। गाधीजी ने मुझे यह प्रमाण-पत्र भी दिया कि मैंने अपने कर्तव्य का ठीक-ठीक पालन किया और जमनालालजी की अनुपस्थिति को महसूस नही होने दिया।

× × × ×

जयपुर मे प्रजा मण्डल को मान्यता दिलाने के लिए सत्याग्रह चला। काकाजी जमनालालजी उसके सचालक थे। जब वह और प्रजा मण्डल के दूसरे प्रमुख नेता गिरफ्तार कर लिए गए तो मुझे सत्याग्रह का सचालक नियुक्त किया गया और उसका कार्यालय आगरा मे स्थापित किया गया। गाधीजी सत्याग्रह मे स्वय दिलचस्पी ले रहे थे। उनकी वायसराय से भी बातचीत चल रही थी और श्री

घनश्याम दास विड़ला भी समझौते के लिये मध्यस्थता कर रहे थे। किन्तु जव सत्याग्रह स्थगित करने का प्रसंग आया तो गांधीजी ने उसके लिये मुझसे वातचीत की और मेरा पूरा समाधान होने के वाद ही सत्याग्रह वापस लेने की सलाह दी। गांधीजी ने मेरी भावनाओं का जो लिहाज रक्खा, उससे मैं वहुत प्रभावित हुआ। वह इसी तरह कार्यकर्त्ता के दिल को जीत लेते थे।

सन् १९४१ की वात है। काकाजी जमनालालजी जेल से छूट कर आये तो उनका स्वास्थ्य ठीक न था और वापूजी उन्हें दुवारा जेल भेजना नहीं चाहते थे। वापूजी हरिजन-सेवा और गो-सेवा के कामों को अत्यधिक महत्व देते थे। उन्होंने सुझाया कि जमनालालजी गौ-सेवा का काम करें। उन्होंने कहा कि कृषि, गौरक्षा और वाणिज्य, वैश्य का स्वाभाविक धर्म भी है। जमनालालजी ने गौ-सेवा कार्य अपना लिया। उन्होंने यह चाहा कि मैं भी मुख्य रूप से गौ-सेवा का काम करूँ। मै उस समय विनोवाजी की देखरेख में ग्राम सेवा मण्डल का काम करता था। वापूजी ने विनोवाजी से मुझे गौ-सेवा के लिए मुक्त कर देने की वात की, किन्तु वह सहमत नहीं हुए। वापूजी ने भी आग्रह नहीं किया। उनकी यह विशेषता थी कि वह अपना विचार किसी पर नहीं थोपते थे। किन्तु ईश्वरीय योजना कुछ अलग ही थी। कुछ ही दिनों वाद काकाजी का देहान्त हो गया। इसके वाद गौ-सेवा का काम मुझे अंगीकार करना पड़ा और विनोवाजी ने भी इसके लिए अनुमति दे दी। आज सारे भारत में, और विशेषकर राजस्थान में, सर्वोदय कार्यकर्त्ताओं द्वारा गौ-सेवा का जो काम हो रहा है, उसके मूल में पूज्य वापूजी, विनोवा जी और जमनालालजी इन तीनों महापुरुषों की प्रेरणा काम कर रही है।

+ + + +

वापूजी के वलिदान के करीव एक माह पहले उनसे आखिरी भेंट हुई थी। यह तय हुआ था कि वर्धा के निकट गोपुरी में ४ फरवरी को गौ-सेवा सम्मेलन वुलाया जाय। उसमें वह स्वयं भी उपस्थित होने वाले थे। वापूजी का एक विचार यह भी था कि रचनात्मक प्रवृत्तियों को समन्वित करने के लिये सभी रचनात्मक संस्थाओं का सम्मिलित संगठन वनाया जाए। गोपुरी सम्मेलन की सारी तैयारियां पूरी हो गई थीं। किन्तु ईश्वर को और ही कुछ मंजूर था। वापूजी ३० जनवरी को हमसे सदा के लिए विछड़ गए।